भावना के भोजपत्रों पर
ओशो

भावना के भोजपत्रों पर ओशो

विकल गौतम

डायमंड पॉकेट बुक्स

प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि.,
X-30, ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2,
नई दिल्ली-110 020.
फोन : 6386289, 6386341, 8611861
फैक्स : 011-6386124, 011-8611866
ई-मेल : mverma@nde.vsnl.net.in
वेब साइट : www.diamondpocketbooks.com
संस्करण : 2002
मूल्य : 150/-
लेजर टाइपसेटिंग : एस. डी. शर्मा एंड कं. (फोन:7442652)
मुद्रक : आदर्श प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

भावना के भोजपत्रों पर ओशो
विकल गौतम
Rs. 150/-

समर्पण
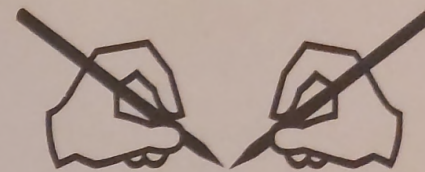
ओशो के आशीष, अहर्निश
जिन पर बरस रहे हैं
उन्हीं चेतना-संबुद्ध
चैतन्य कीर्ति को-

दो शब्द

डॉ. विकल गौतम ने आग्रह किया है कि मैं 'भावना के भोजपत्रों पर ओशो' पुस्तक के संबंध में दो शब्द लिखूं। मैं निरंतर टालता रहा हूं। इसलिए नहीं कि लिखने का भाव नहीं है। हृदय में बहुत भाव है, लेकिन जितना अधिक भाव होता है उतना ही कठिन हो जाता है उसे अभिव्यक्त करना। पहले भी मैंने काफी पुस्तकों की भूमिका लिखी है और उन्हें लिखना कभी इतना कठिन नहीं रहा है जितना कठिन है इस पुस्तक के संबंध में लिखना। मेरे लिए यह पस्तक सर्वाधिक मूल्य की है—सवर्था बहुमूल्य है। यह एक उपनिषद है जो मां-बेटे के बीच घटित हुआ—परम सामीप्य में। समय और स्थान की दूरी इसमें कोई अर्थ नहीं रखती। बेटा हज़ारों मील दूर भी हो तो वह मां के सर्वाधिक निकट होता है—उसके हृदय के भीतर होता है। और यह बेटा तो कोई सामान्य पुत्र नहीं है—बुद्ध है, संबुद्ध है।

भगवान शिव और देवी के बीच, परम अंतरंगता में, जीवन के रहस्य-सूत्र 112 विधियों में उद्घाटित हुए—जो विज्ञान भैरव तंत्र के रूप में शिव की अनूठी भेंट है। देवी पार्वती उनकी प्रेमिका हैं, पत्नी हैं—और जैसा कि स्त्री अपने आत्यंतिक स्वभाव में मां होती है—वह उन अर्थों में मां भी हो सकती है। देवी के माध्यम से यह अनूठी भेंट शिव ने पूरे विश्व को दी जो युगों-युगों तक मनुष्यों का रूपांतरण करती रहेगी—उसे ज़मीन के गड्ढों से, अंधकूपों से उठाकर हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर, कैलाश के स्वर्णोज्ज्वल शिखरों पर स्थापित करेगी।

कुछ ऐसी ही अनुभूति मुझे सदा हुई है ओशो के इन पत्रों को पढ़कर जो उन्होंने अपनी पूर्व जन्म की मां को लिखे। इन्हें मैंने सबसे पहले क्रांतिबीज पुस्तक में पढ़ा था—अनेक बार पढ़ा था। रात को सोते हुए और सुबह उठते हुए पढ़ा था—और हर बार पाया था कि हर बार पढ़ने में जीवन के नित नए अर्थ उद्घाटित होते हैं। यह मां और बेटे5 के बीच घटित हुआ क्रांति-बीज मेरे लिए भी उपनिषद हो गया था—और में जानता था कि आनेवाले समय में यह मेरे जैसे लाखों-करोड़ों शिष्यों के लिए भी उपनिषद बनेगा—समय और स्थान की दूरी से मुक्त। इसलिए जब कोई मुझ से पूछता है कि पहले कौन-सी पुस्तक पढ़ूं तो मैं उन्हें कहता रहा हूं—सबसे पहले यह क्रांति-बीज पढ़ लो। मुझे सदा एहसास होता रहा है कि इसके बाद आनेवाली ओशो की सैकड़ों पुस्तकें इन्हीं क्रांति-बीजों के खिले हुए फूल हैं। ये क्रांति-बीज ओशो की जीवन-क्रांति की आधारशिलाएं हैं। फिर हमने एक बहुत बड़ा, अति विशाल मंदिर निर्मित होते हुए देखा है—और कैसा सौभाग्य है कि उसके

पूर्व हमने उसकी आधारशिलाओं के भी दर्शन किए। इन बीजों ने हमें ऐसे ही आंदोलित-अनुप्राणित किया जैसे कोई महा संभावना वाला बीज अंधेरे में अपने आस-पास की भूमि को आंदोलित अनुप्राणित करता हो। इन बीजों का स्रोत ओशो की परम संबोधि का गर्भ है और सद्‌गुरु के रूप में ओशो स्वयं एक किसान हैं जो अपने शिष्यों की प्यासी भूमि में इन्हें रोपित करके इन्हें विकसित करते हैं।

मां और बेटे के बीच घटित हुआ यह उपनिषद आज ओशो तथा उनके लाखों करोड़ों शिष्यों के बीज उपनिषद बन गया। आप इन सूत्रों को पढ़ेंगे तो अपने हृदय में ऐसे संजो लेंगे, सहेज लेंगे—जैसे रत्नगर्भा पृथ्वी अपने भीतर संजो लेती है। और फिर अनंत फूलों के रूप में पूरे अस्तित्व को उपहार देती है।

माउंट आबू में मां आनंदमयी से 1973 में एक ओशो ध्यान शिविर में मुझे एक छोटी-सी मुलाकात का सौभाग्य मिला था। उनके साथ हुए साक्षात्कार को मैंने 'आनंदिनी' नाम की ओशो पत्रिका में प्रकाशित किया था। पत्रिका का वह अंक आज भी डॉ. विकल गौतम तथा अन्य कुछ मित्रों ने सम्हालकर रखा है। लेकिन मैंने उन क्षणों की मधुर स्मृति अपनी हृदय-मंजूषा में संजो कर रखी हुई है। डॉ. विकल गौतम के प्रति अहोभाव कि उन्होंने मुझे पुनः पुनः उन मधुर क्षणों का स्मरण करने और उन्हें जीने का एक सुअवसर प्रदान किया। मुझे आशा है कि आप सब पाठक भी इस उपनिषद के भाव-तरंग में डूबेंगे, आंदोलित होंगे, नाचेंगे और आपके जीवन में क्रांति के ये मधुर आग्नेय फूल खिलेंगे। आपकी तरह मैं भी आभारी हूं डॉ. विकल गौतम का जिन्होंने अनेक वर्षों के प्रयास से इन्हें संजो कर रखा, सम्हाले रखा और पूरे विश्व को भेंट कर दिया। इन्हें प्रकाशित करने का श्रेय और गौरव जाता है डायमंड पाकेट बुक्स के प्रकाशक श्री नरेन्द्र कुमार को जिन्होंने बहुत प्रारंभिक समय से ओशो की पुस्तकों को प्रकाशित करके उन्हें जन-जन तक पहुंचाने के लिए श्रम किया है और लाखों नए पाठकों को साधना के अमृत-पथ पर प्रशस्त करने के लिए एक सशक्त माध्यम बने हैं।

अंत में मैं नमन करता हूं मां आनंदमयी को और हमारे सद्‌गुरु ओशो को जिनकी इस अनूठी देन के लिए जो कृष्ण-अर्जुन संवाद, जनक-अष्टावक्र संवाद से कहीं अधिक आत्मीय एवं काव्यमय है।

स्वामी चैतन्य कीर्ति
संपादक : ओशो वर्ल्ड पत्रिका
सी 5/44 सफ्दरजंग डिवेलपमेंट एरिया,
नयी दिल्ली-110016

ये आनंद अक्षर....

आत्माभिव्यक्ति मानव की सहज प्रकृति है। स्वयं को प्रकट करने की पिपासा तब तक शांत नहीं होती, जब तक मानव अपने बंधु-बांधवों, मित्रों, स्वजन, परिजनों के सम्मुख अपनी भावना और विचारों को प्रस्तुत नहीं कर देता। अभिव्यक्ति की पिपासा साहित्य-सृजन की प्रेरणा बिन्दु मानी जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। पत्रों में सामान्य और विशेष दोनों ही परिस्थितियों में मानव मन की अभिव्यक्ति होती है। पत्रों को साहित्य की विधा मानने का मुद्दा अब बहस की बात नहीं रही है। पत्र लेखन नयी बात नहीं है। यह मानव सभ्यता के साथ-साथ विकसित प्राचीन कला है। किन्तु एक विधा के रूप में साहित्य से इस कला का संबंध मुख्यतः आधुनिक युग में ही स्थापित हुआ है। पत्र एक लिखित संदेश है, जो एक या अनेक व्यक्तियों की ओर से अन्यत्र उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों के पास भेजा जाता है, जिसके पास कुछ अभिव्यक्त करना होता है। यह संदेश बड़ा भी हो सकता है, और छोटा भी, किंतु जब हम साहित्य की विधा के रूख में किसी पत्र को लेंगे, तो उस समय पत्र के प्रेषक को अधिक महत्व देंगे और साथ ही उसे भी जिसके लिये पत्र लिखा गया है।

विधा के रूप में पत्र-साहित्य केवल वही स्वीकार्य है, जो किसी महत्वपूर्ण साहित्यकार से संबंधित हो। अर्थात किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा अन्य किसी बड़े प्रसिद्ध साहित्यकार के लिये लिखे गये पत्र ही साहित्य की विधा में परिगणित होते हैं, किन्तु यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। सामान्य पाठकों के पत्रों का भी साहित्यिक विधा के रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से उन पत्रों को भी पत्र-विधा में ग्रहण किया जाना चाहिए जिनका संदेश साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान हो। महान व्यक्तियों का सामान्य पत्र उनकी मानसिकता, व्यक्तित्व या रचना प्रक्रिया आदि पर प्रकाश डालता है।

पत्र, व्यक्ति निष्ठ होते हुए भी सार्वजनिक जिज्ञासा का केन्द्र होता है। हम बड़ी आतुरता से निजी पत्रों को पढ़ते हैं और उतनी ही जिज्ञासा से दूसरों के पत्रों को पढ़ना चाहते हैं। अतः दूसरों को जानने का जितना अच्छा साधन पत्र है, उतना अच्छा साधन उसका फोटो नहीं है। उसमें उसके व्यक्तित्व का उद्घाटन निष्कपटता के साथ होता है। पारस्परिक मैत्री, आत्म नैकट्य की भावना से ओत-प्रोत ऐसे पत्र हमारे लिए सदैव एक आकर्षण का केन्द्र होते हैं।

विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा लिखे गये पत्रों का महत्व स्वयंसिद्ध ही है। उनके द्वारा लिखी गई एक पंक्ति भी समाज की अमूल्य धरोहर है। ओशो आज के युग में कितने महान एवं क्रांतिकारी रहे हैं यह बताने की आवश्यकता नहीं है। संसार में अकेले एक रचयिता के साढ़े छः सौ ग्रंथों की सूची विश्व में एक 'रिकार्ड' माना जाता है। ये सभी ग्रंथ उनकी परावाणी का संकलन

हैं। इस तरह उनके ही द्वारा लिखी गई सामग्री का मूल्य और अधिक बढ़ जाता है। साठ के दशक में ओशो ने अपने अनेक स्नेही भक्तों को पत्र लिखे हैं। उनके द्वारा एक ही व्यक्ति को लगभग चार सौ पत्रों की लम्बी संख्या का एक अलग ही महत्व स्थापित होता है। मां आनंदमयी (श्रीमती मदनकुंवर पारख) एक ऐसी नारी हैं जिनके साथ ओशो का पत्राचार 1960 से लेकर 1966 तक सतत होता रहा था। ओशो का प्रारंभिक ग्रंथ 'क्रांति-बीज' मां आनंदमयी को लिखे हुए पत्रों के अंशों का ही संकलन है। पत्रों के मध्य में आई उनकी दार्शनिक बातों को ही 'क्रांतिबीज' में सम्मिलित किया गया है।

ओशो के प्रेमी और भक्तों की करोड़ों में संख्या है। वे अपने गुरु, भगवान, कल्याण मित्र ओशो के द्वारा लिखी गई हर बात को जानने के लिए जिज्ञासु रहते हैं। अतः मां आनंदमयी के पत्रों को बिना संपादित किये ज्यों के त्यों हमने यहां प्रकाशित किया है। इससे उन दोनों के जीवन की अंतरंगता को हम समझ सकते हैं। ओशो के जीवन में आई अनेक घटनाओं की मां आनंदमयी साक्षी रही हैं। ओशो के पत्रों से उनके जीवन की अनेक विचार- सारणी हमारे सामने प्रकट होती है, जिससे उनके जीवन के कई पहलू हमारे सामने खुलते जाते हैं। मां आनंदमयी के प्रति, उनका प्रेम, विश्वास और अंतरंगता के हमें दर्शन होते हैं। प्रारंभिक प्रवचनों की यात्राओं में मां का साहचर्य उनके लिए उनके जीवन का महत्वपूर्ण और अनिवार्य पहलू होता था। मेरे मित्र श्री शिवचंद्रजी नागर ने एक बार मुझसे कहा था—"जिस प्रकार कहानी कहने वाले के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा सहानुभूतिपूर्ण श्रोता का मिलना है; उसी प्रकार पत्र लिखनेवाले के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा यही है कि जिसे वह पत्र लिख रहा है उसमें उसे एक ऐसा सहानुभूतिशील मन मिल जाये जिसमें वह अपनी आवाज की प्रतिध्वनि सुन सके, अपने भावों और विचारों की प्रतिकृति देख सके और अपनी दुर्बलताओं की धरोहर विश्वासपूर्वक रख सके, जिसका व्यक्तित्व एक ऐसा दर्पण हो जो पत्र लिखनेवाले की चेतना की किरणों को कुंठित न कर दे; बल्कि उन्हें शत-सहस्रगुनी शक्तिशाली बनाकर लौटा दे।"

मां आनंदमयी के व्यक्तित्व में ओशो (रजनीश) को ऐसा ही मन और ऐसा ही व्यक्तित्व अनायास मिल गया था अतः ओशो के इन पत्रों को लिखाने का सारा श्रेय उन्हें ही है।

इन पत्रों के केन्द्र में मानव जीवन में दिव्यता की साधना ही रही है। "जो भी मेरे पास है, जो भी मैं हूं, उसे अमृत के, दिव्य के, भागवत चैतन्य के बीजों के रूप में बांट देना चाहता हूं। ज्ञान से जो पाया जाता है, प्रेम से परमात्मा हुआ जाता है। ज्ञान साधना है, प्रेम सिद्धि है।"

ओशो के इन शब्दों में उनका हृदय समाहित हैं। उनके शब्दों में उनकी आंखों में उनकी प्रत्येक श्वासों में प्रेम ही वे लुटा रहें हैं। उनका जीवन अलौकिक आनंद और सौंदर्य का आगार बन गया था और जिनके द्वारा वे चाहते हैं कि सबके जीवन में भी आलोक के पुष्प पल्लवित और सुवासित हो सकें। प्रातः, दोपहर, संध्या, रात्रि, अर्धरात्रि, ट्रेन में, प्रतीक्षालय से जब ओशो के मन में मां से मिलने की घुमड़न होती थी वे तुरन्त पत्र के द्वारा उनसे मिलने पहुंच जाते थे। दार्शनिकता के बीचों-बीच में घर परिवार संबंधी जो बातें जिन व्यक्तियों का ओशो जिक्र करते हैं उनके बारे में जानकारियां ग्रहण करते हैं यह मां के साथ उनके गहरे सामीप्य का ही परिचायक है। इनको पढ़कर पाठक निश्चय ही अभिभूत हो जाता है। अपने श्रद्धेय के जीवन के कार्यकलापों को पढ़कर एक क्षण के लिए वह ठगा सा सोचता ही रह जाता है। क्या ओशो हम जैसे ही हाड़मांस के इसी

लोक के व्यक्ति थे? क्या वे आम साधारण मानव के समान ही किसी से मिलने के लिए, उसकी गोद में सोने के लिये उतनी ही व्याकुलता से प्रतीक्षारत रहा करते थे? ऐसे अनेक लौकिक प्रश्नों का समाधान ये सारे पत्र हमें दे जाते हैं। ओशो आज एक अलौकिक व्यक्तित्व हमारे लिए बन चुके हैं। कुछ वर्षों के उपरांत लोग उन्हें राम, कृष्ण और बुद्ध जैसा ही अवतारी व्यक्ति मानने लगेंगे तब अनेकानेक चमत्कारी बातें उनके जीवन से जुड़ती चली जायेंगी। ओशो तो चमत्कारों के सदा खिलाफ रहे हैं। अपने खुद के संबंध में भी इस प्रकार की ऊल-जलूल चमत्कारी बातें वे कभी पसंद नहीं करेंगे। वे तो प्रत्येक व्यक्ति में संभावनाओं की आहट सुनते रहे हैं। प्रत्येक मानव में क्रांति की सुसंगति वे पाते रहे हैं। हर चेतना में भगवत्ता प्राप्ति के गुण छिपे हैं। अपनी चेतना को विकसित करके हम सभी वहां पहुंच सकते हैं जहां ओशो पहुंचे हैं। ये पत्र हमें बार-बार पढ़ने के लिए निमंत्रण देते रहेंगे। उन्हें इसी लोक का प्राणी बनाये रखने के लिए इन्हें प्रकाशित करना भी अनिवार्य हो गया सा लगता है।

जितना विराट व्यक्तित्व ओशो का रहा है उतनी विराटता के दर्शन हम मां आनंदमयी में भी पा सकते हैं। अपनी विराट बातों को कहने के लिए उन्होंने किसी विराट व्यक्ति को खोजा था जिसके माध्यम से प्रत्येक मानव की जीवन-धरती पर वे क्रांतिबीज बो सकें। बरखा के सृजन में पवन का कार्य सागर के वाष्पीभूत के जल को पर्वतशृंखलाओं और आकाश तक ले जाने का होता है। प्यासी धरित्री की प्यास तो अमृतमय नीर से बुझती है। इसके लिए ओशो की लेखनी और मां आनंदमयी के हम चिर ऋणी रहेंगे। ओशो की लेखनी से सर्जित सारे पत्र मोतियों के समान एक सी बुनावट के हैं। सबसे पहले उन्हें देखकर प्रत्येक शिष्य अभिभूत हो जाता है। उनके लेखन में अधिकांशतः ओशो ने काली स्याही का ही प्रयोग किया है। ओशो ने पत्र को एक बार जो लिखना शुरू किया है तो उसे अंत में 'रजनीश के प्रणाम' पर जाकर ही समाप्त किया है। भावनाओं की शृंखला कहीं भी खंडित नहीं होती। इसलिये शब्दों में कहीं काटछांट भी नहीं है।

भावना के पवित्र भोज-पत्रों में रचे गये ये वेद और उपनिषद प्रीति की अमर कहानी सुनाते प्रतीत होते हैं। मां आनंदमयी के हम चिर ऋणी रहेंगे जिन्होंने इन पत्रों को आज तक बड़े ही सहेज कर रखा है। लाखों भक्तों के हृदय के समीप ये भोज-पत्र पहुंच सकें, इसके लिए मुझे अधिकार देकर एक बहुत बड़ा उपकार किया है। पुत्र अपनी मां के दूध के लिए उसे धन्यवाद भी तो नहीं दे सकता। प्रकाशन के लिए *डायमंड पाकेट बुक्स* के प्रबंध निदेशक श्री नरेन्द्र वर्मा स्वयं आगे आए और साथ में श्री गजानन पराते एवं किशोरानंद ने समय-समय पर अपने स्नेह का जो सम्बल दिया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। आप सभी को आनंद-लोक में ले जाने के लिए भावना के ये भोजपत्र प्रस्तुत कर रहा हूं।

दिनांक : 11 दिसम्बर 2001

—विकल गौतम

मां आनंदमयी एक परिचय

अनाभिव्यक्त संबंधों को अभिव्यक्त करने के लिए लेखनी को कितनी-कितनी अग्नि परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है यह आज अनुभूत हो रहा है मुझे। मां आनंदमयी से जाने कितनी बार मैं मिला हूं। जाने कितने जन्मों में मिले और बिछुड़े हैं हम। सुशीला (मां की छोटी पुत्री) के विवाह में आचार्य रजनीश आनेवाले हैं ऐसा सुन रखा था। मुझे सुशीला ने अपनी सहेली कला के पड़ोसी मित्र के रूप में कौतूहलवश आमंत्रित कर रखा था। मां से मेरा परिचय सुशीला ने कराया...''मां सा. ये अपनी कला कपूर के पड़ोसी प्रोफेसर विकल गौतम हैं।''

मां मेरी आंखों में गहराई तक देखती रही। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उनका वरदहस्त मेरे शीश पर विवाह के उस भीड़ भड़क्के में भी कुछ क्षणों तक स्पर्शित होता रहा था।

1967 के उन दिनों भगवान रजनीश भी आए थे। सुशीला को उपहार में एक सितार भेंट की थी उन्होंने। मैं भगवान को देखने लगा और साथ ही मां को भी। मां एकटक मुझे देखे जा रही थी....वहीं पास खड़ी दुबली पतली सी लड़की कला को उसने उस भीड़ भरे माहौल में अपने पास बुलाया और मेरे पास खड़ी रहने का आदेश दिया। ''बहुत सुंदर जोड़ी बनेगी री कला! इस विकल को बांध लेना, छोड़ना मत।''

ऐसे माहौल में भी इतनी उन्मुक्तता और इतनी प्रेममयी बातों से, मैं तो अभिभूत ही हो गया। सुशीला के विवाह के एक वर्ष बाद मुझे बांध दिया गया कला के साथ और सबसे अधिक बंध गया श्रीमती मदनकुंवर पारख के साथ। फिर उस घर में मेरा आना जाना बार-बार होने लगा। कला का अपनी सहेली के घर आना जाना कम होता गया और मेरा क्रमशः बढ़ता ही चला गया। आजीविका के लिए प्राध्यापक के रूप में अमरावती जाना पड़ा, परंतु चंद्रपुर तो अक्सर ही जाना होता रहा। चंद्रपुर जाने का मेरे लिए सबसे बड़ा आकर्षण मां मदनकुंवर पारख होती थी। जबसे मुझे ज्ञात हुआ कि मां आनंदमयी ही मदनकुंवर पारख हैं तबसे हमारे संबंधों में अधिक प्रगाढ़ता और गूढ़ता का समावेश होता गया। मां और मैं घंटों-घंटों भगवान रजनीश की चर्चा में डूबे रहते। कब शाम हो गयी और कब रात आ जाती पता ही नहीं चलता। मां आनंदमयी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रारंभ से बड़ा ही गरिमामय रहा है। ओशो के, शरीर में रहते हुए उनके साथ उनके संबंधों की गहराई उनके पत्रों से हमें ज्ञात तो आगे होगी ही। लोग मां आनंदमयी को चंद्रपुर में श्रीमती मदनकुंवर पारख के नाम से जानते रहे हैं।

विक्रम संवत् 1976 को कार्तिक सुदी 12 उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र के चौथे चरण (5 नवम्बर 1919) को चंद्रपुर जिले की वरोरा नामक तहसील में उनके नाना के यहां उनका जन्म हुआ है। बचपन मुंगेली (छत्तीसगढ़) में उनकी मौसी के यहां बीता। ढाई वर्ष की उम्र की सारी बातें आज भी उन्हें ज्यों की त्यों स्मरण हैं। बचपन बड़ा ही नटखटपूर्ण रहा था उनका। हर वस्तु, हर घटना और हर व्यक्ति के व्यक्तिव की तह में जाने की जिज्ञासा ने ही उन्हें खोजी प्रवृत्ति प्रदान की थी। श्वेताम्बर जैन परिवार में उनका जन्म

हुआ था। अतः दस वर्ष की आयु से ही संत समागम के प्रति, दिनों दिन उनकी अभिरुचि बढ़ने लगी थी। नृत्य, संगीत, गायन, संस्कृत भाषा, तत्वज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद का अभ्यास बचपन से करती रहीं थीं।

दस वर्षीय मदनकुंवर की छोटी सी उम्र से उनके अचेतन मस्तिष्क में सदा एक ऐसा विचार उन्हें मथता रहता कि मेरा कोई पुत्र खो गया है जिसे उन्हें जल्दी ही खोजना है। दिन, माह, वर्ष बीतते गये। विवाह हुआ, गृहस्थी बनी, सन्तानें पैदा हुई लेकिन एक विचार सदा बना रहा कि कोई बिछुड़ा बेटा उन्हें शीघ्र ही मिलने वाला है। श्रीमती मदनकुंवर पारख चंद्रपुर रुढ़िवादी और परम्परावादी श्वेताम्बर जैन परिवार में रहकर भी विचारधारा से बड़ी ही विद्रोहिणी और सामाजिक कार्यकर्ता रही है। घर में ही लगभग 300 बच्चों की देखभाल एक अनाथालय भी कुशलता से चलाती रही हैं। इस कार्य में उनके पति श्री रेखचंदजी पारख भी उनके सहयोगी रहे हैं।

1960 में वर्धा जिला में जैन महामंडल की ओर से एक उत्सव में आचार्य रजनीश से उनकी सर्वप्रथम भेंट हुई। प्रातःकाल की स्वर्णिम बेला में रजनीश स्नानगृह से सद्यःस्नान आये ही थे कि सीढ़ियों के पास एक दूसरे से अपने हृदय में कुछ गहराईयों का अनुभव किया। दृष्टि अपलक एक दूसरे को निहारती रही। रजनीश पहचानी सी मुद्रा लेकर खड़े रहे और हृदय सागर पूरे वेग से सभी बांध तोड़कर उमड़ आया। उस प्रथम साक्षात्कार में जो भी स्थिति हुई वह रजनीश और श्रीमती मदनकुंवर के अतिरिक्त कोई कैसे जान सकता है?

फिर तो यह सिलसिला जो शुरू हुआ तो चलता ही रहा। उनके संबंधों की गरिमा को उनके पत्रों से हम समझ सकते हैं। कई वर्षों तक सतत पत्राचार चलता रहा। रजनीश को ओशो के रूपांतरण में एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ा है इस प्रक्रिया में मां आनंदमयी की प्रेरणा ने भी अपना सहयोग, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य ही पहुंचाया है।

ओशो जब रजनीश थे, तब अपने स्नेहियों को स्वयं ही अपने हाथों से पत्र लिखा करते थे। ऐसे प्रेमियों की यह संख्या हजारों में होने लगी, तब मां आनंदमयी ने उन्हें एक सर्वप्रथम टाईपराइटर उपहार में दिया था। इससे उन्हें पत्र लेखन में काफी मदद मिली। इसी प्रकार आचार्य रजनीश के प्रवचनों को सुनने की उन दिनों धूम मचने लगी थी। जो लोग नहीं सुन पाते उनके लिए पुस्तकाकार रूप में उन्हें संकलित करने की योजना रजनीश के प्रेमियों ने की थी। उनके मित्र और सहयोगी उनके प्रवचनों को सिलसिलेवार पहले स्मृति में संजोते फिर हाथों से लिखने का प्रयास करते रहते थे। फिर भी बहुत सी बातें जो अपने भाषणों में आचार्य रजनीश कहते थे इन मित्रों से छूट ही जाती थीं। इस कार्य को आधुनिक स्वरूप देने में मां आनंदमयी ने अद्भुत सहयोग दिया था। ओशो के जीवन में सबसे पहला टेप-रिकार्डर जर्मनी का 'गुरटेक' मां ने ही उन्हें उनके सहयोगियों को भेंट स्वरूप प्रदान किया था।

एक युग रहा है जब पूरे विश्व में 'रोल्स रॉयल' की संख्या रखने में ओशो की बराबरी कोई नहीं कर सकता था। गिनीज बुक में भी संभवतः रोल्स रॉयल रखने वाले व्यक्ति के रूप में उनका नाम लिखा गया होगा तो भी कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। किंतु यह भी उतना ही सच है कि अपने पुत्र के व्यस्ततम कार्यक्रमों की दौड़धूप को देखकर उन्होंने उनके कार्यक्रमों को समय से एवं निश्चित स्वरूप देने के लिए उन्हें सर्वप्रथम अपनी ओर से कार सौगात में दी थी। 5 अक्टूबर से 13 अक्टूबर 1973 में माउंट आबू में लगे ध्यान शिविर में लगभग 300 शिविरार्थियों की उपस्थिति में भगवान रजनीश ने मदनकुंवर पारख के चरणस्पर्श कर उन्हें संन्यास दिया और अपने पूर्व जन्म की मां के रूप में घोषणा की। जब भी चंद्रपुर वे आते मां आनंदमयी के साथ रात्रि के एकांत में कई विषयों पर वार्तालाप किया करते थे। मां का आदेश

उनके लिए पत्थर की लकीर होती थी। माउंट आबू के शिविर के उपरांत मां ने ओशो को परामर्श दिया—"रजनीश अब तुम खुद शिविर लेना बंद कर दो।" उसके बाद से शिविरों में खुद जाना ओशो ने छोड़ दिया। मां ने एक दिन पूछा—"मैं तुम्हें क्या सहयोग दे सकती हूं रजनीश?" तब ओशो अपने विदेशी संन्यासियों की 15-15, 20-20 टोलियों में चंद्रपुर मां के पास भेजते रहे थे। मां आनंदमयी उन विदेशी संन्यासियों को भारत की संस्कृति, रीतिरिवाज, और यहां के भोजन इत्यादि बातों से परिचित कराती रहती थी। चंद्रपुर के पास ही सावली नामक ग्राम में उनकी खेती थी वे वहां रहकर उन्हें यहां की खेती के तरीके से भी परिचय कराती रहती थी। यह कार्य 1973 से लेकर 1977 तक वे सतत करती रही थीं।

ओशो के पत्रों का उत्तर मां अक्सर कविताओं के माध्यम से ही दिया करती थी। मां का पत्र पहुंचने में भले ही देरी हो जाये परंतु ओशो मां को पत्र लिखने के लिए अत्यंत आतुर ही रहा करते थे।

प्रिय मां, सोम...मंगल...बुध और अब तो बुध भी जा चुका। बाट है और पत्र का पता नहीं है। किस काम में लगी हैं? क्या पत्र की प्रतीक्षा का आनंद देने का आपका भी मन हुआ है। पर नहीं। जानता हूं यह आप न कर सकेंगी। कोई उलझन है इससे चिंतित हूं।...एकांत रात्रि। बहुत से चित्र उभरते हैं।

वर्षा में सद्यःस्नाता आप द्वार पर आ खड़ी हुई हैं। वह चित्र भूलता नहीं। बहुत सजीव होकर मन में बैठ गया है। बार-बार लौट आता है। तीन दिन साथ था। पर चित्र का जोड़ नहीं है। बहुत सरल... बहुत पवित्र...बहुत पारदर्शी। उसमें आप पूरी की पूरी दिख आई थीं।

आज भी वैसे ही द्वार पर खड़ी हुई हैं। मधुर मुस्कुराहट फैलती जाती है और मुझे घेर लेती है। फिर सोचता हूं...पत्र न सही....आप तो हैं।

मैं प्रसन्न हूं...शांत और स्वस्थ। प्रभु की अनंत अनुकम्पा है और कृतज्ञता का भी पार नहीं है। कृतज्ञता का यह बोध ही जीवन के कांटों भरे रास्तों को फूलों से भर देता है।

मेरा रास्ता फूलों और गीतों से भर गया है।

आशीर्वाद की प्रतीक्षा में
आपका ही
रजनीश

ओशो ने मां को प्रातः, दोपहर, संध्या, रात्रि, अर्धरात्रि, स्टेशन, विश्रामालय, ट्रेन यात्रा से, ऐसे अनेक स्थानों से पत्र लिखे हैं। उनकी यात्रा कहां है, और कब किस स्थान पर मां को आना है, इत्यादि सारी बातें वे सूक्ष्म लिखकर भेजते रहे थे अपने पत्रों में।

मां का संक्षिप्त परिचय मैंने देने का प्रयास किया है। परन्तु उनका यथार्थ परिचय तो ओशो के पत्रों के माध्यम से ही होगा। इसीलिए उन पत्रों को प्रकाशित करने का यह उपयुक्त अवसर हमने चुना है।

—डॉ. विकल गौतम

"भावना के भोजपत्रों पर जन्म-जन्मान्तर के आनंद अक्षर"

मां आनंदमयी से एक भेंट वार्ता

शरीर प्रवासी बना बस में हिचकोले भरता अपने गंतव्य पर पहुंचने को आतुर था। चांदा (चंद्रपुर) प्रवास मेरे लिए कोई नया नहीं था। किंतु जाने क्यों आज सब कुछ नया-नया लग रहा था। पिछले तीस वर्षों से जिस शहर के इतने करीब रहा हूं, वही आज मेरे लिए परीलोक का रहस्य बतलाता सा प्रतीत हो रहा था। जुलाई की उमस भरी यात्रा थी, परंतु भीतर इतनी आनंदामृत की फुहारें झर रहीं थी कि वह उमस भी रोमांचित सी करती प्रतीत हो रही थी। चांदा पहुंचते-पहुंचते एकाएक सारा आसमान कालिमा की छतरीनुमा सा बन गया था। आसमान के चारों किनारों पर एक प्रकाश की 'पाईपिंग' लगी सी प्रतीत हो रही थी। संध्या के घनी होते-होते अचानक जोरों की बरसात ने रौद्र रूप धारण कर लिया था। उस बरसात ने चांदा बस स्टेशन आते-आते, धरती और मेरे मन प्राणों को भी अन्तर तक नहला दिया था। मन थोड़े क्षणों के लिए सन्नाटे में डूब गया था। उस निस्तब्धता को बीच-बीच में तोड़ रही थी मां के सम्पर्क में अभिषिक्त स्मृतियां। भगवान श्री रजनीश का चांदा से सम्पर्क वैसा ही रहा जैसे रजनी के ईश चन्द्रमा का रजनी से। इस तरह चंद्रपुर में रजनी के ईश का आना जाना स्वाभाविक ही था। लगभग 1960 से भगवान रजनीश का चांदा आना जाना प्रारंभ हो गया था। मां आनंदमयी (श्रीमती मदन कुंवर पारख) का निवास भगवान के लिए एक ऐसी गोद बन चुकी थी जिसमें समय-समय पर उन्हें, अपने जीवन के थकान भरे क्षणों को कुछ समय के लिए श्रम परिहरण के बहाने विश्राम पाने चांदा आना ही पड़ता था। बस रूकी और उसमें से अनेकानेक प्रश्नों की पोटली बांधे मन भी उतरा। एकाएक चांदा की धरती पर कदम रखते ही आंखों पर आनंद की ओस सी छाने लगी। भीतर बंद था अनेकानेक आनंदमय प्रश्नों का अंबार जो ओशो का प्रत्येक पाठक जानने को उत्सुक था। उनका प्रतिनिधि बनकर मैंने दूसरे दिन प्रातः जाकर मां से मिलने का निश्चय किया। जोरों से बारिश और फिर गहराती हुई रात में एकाएक बिजली के गुल हो जाने से

उसकी स्याही और घनी हो गई थी। मैंने भी सोचा रात जितनी ही संगीन होगी सुबह उतनी ही रंगीन होगी। इस गहन रात्रि के बाद ही तो सच्चा प्रकाश मिलेगा। पूर्ण चंद्र से ही साक्षात्कार होगा। दूसरे दिन ही संभवतः गुरूपूर्णिमा थी। अपने सद्गुरू से मिलने पहुंचना था पुण्यभूमि पूना में किंतु भटक गया मन चांदा के उस आनंद लोक में जहां प्रभु ने कभी विश्राम किया था। सतत् कई वर्षों तक अपनी पूर्वजन्मों की मां के प्रति अपने हृदय के सारे पृष्ठ ही मानों पत्रों के माध्यम से खोल कर रख दिए थे। उन पत्रों को कई-कई बार मैंने पढ़ा है फिर भी एक अटूट प्यास आज भी मौजूद है। उन बीजमंत्रों में सारे उपनिषदों की वाणी समा गई है। वेदों की समस्त ऋचाओं से वे अभिसिंचित है। उनमें बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट कबीर, दादू और भी कई देशी विदेशी चिंतकों का चिंतन एकाकार हो गया है। उस आनंदमयी ने अपने वात्सल्य की गंगा में मुझे भी कई बार निमज्जित कर पावन बना दिया है। कितने-कितने वर्षो से हम भगवान रजनीश की स्मृतियों में डूबते उतराते रहे हैं। इस बार मां अमृत साधना एवं स्वामी चैतन्य कीर्ति की प्रेरणा पाकर मन ने उसे साक्षात्कार का एक रूप देकर 'रजनीश टाइम्स' के पाठकों की इच्छा पूरी करने में सहयोग दिया।

'पारख निवास' यानी मां आनंदमयी का आनंद लोक। जिस मां के पत्रों की प्रतीक्षा में भगवान आंखें बिछाते रहे हो उनके व्यक्तित्व की विराटता में धरती की विशालता है, जिसमें ही सागर भी समा जाता है। मां आनंदमयी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आनंद के सहस्त्रों झरनों का विराट स्वरूप ही है। उनके पास पहुंचते ही मन अपने आप स्थिरता ग्रहण करने लगता है। जैसे ही मैं उनकी ड्योढी पर पहुंचा उनके चेहरे पर चिर परिचित वात्सल्यमयी मुस्कान ने मुझे अपने बंधन में बांध लेना चाहा। ''अरे! विकल, आओ कब आए चांदा?'' ''बस अभी। आपके दर्शनों के लिए आ ही रहा हूं।'' मैंने उत्तर दिया। शुभ्र परिधान में उनके गले में पड़ी रूद्राक्ष की माला और उस पर लहराते हिम धवल केशराशि का सौंदर्य एक अनूठी आभा की सृष्टि कर रहे थे। मैं उस रूप में थोड़े समय के लिए खोया रहा कि अचानक उनके शब्द मेरे कानों में पड़े।

''मेरा ख्याल तो यह था कि तुम्हें कल ही चांदा आ जाना चाहिए था?'' उनकी प्रश्नवाचक आंखों में एक अलग तेजस्विता थी और मेरा अंतर तक हिल उठा। सोचा मैंने तो यूं ही औपचारिकतावंश उनसे कह दिया था कि बस चला ही आ रहा हूं आपके दर्शनों को। किंतु अंतरयामिनी तो मेरे चांदा तक पहुंच जाने की आहट भी जान चुकी थी। तब मैंने उनसे कहा ''हां! मां आपके खयाल के अनुसार मैं चांदा कल ही पहुंच गया था किन्तु रात भारी वर्षा के कारण मैं आज सुबह-सुबह आपसे मिलने आ पहुंचा हूं।''

मां की अन्तरभेदनी आंखें मुझे बहुत देर तक देखती रही और जाकर मैं, उनके चरणों का स्पर्श कर उनके करीब ही बैठ गया। जहां उनका निवास है उस कमरे का नाम भी 'आनंद' ही है। उस कमरे की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए ही भगवानश्री रजनीश ने

उन्हें मां आनंदमयी नाम संभवत दिया होगा। ऊपर दीवार पर दृष्टि गई तो ध्यान की गहरी मुद्रा में भगवान का एक बड़ा पोस्टर टंगा हुआ था और पास ही आलमारी पर दीर्घ नयनों में सारे विश्व के सौंदर्य को समेटे युवा रजनीश का एक बड़ा सा फोटोग्राफ स्टील की फ्रेम में लगा हुआ था। अपने उस एकांत कमरे में उनकी साधना निरंतर प्रवाहमानसी प्रतीत हुई। भगवान ने 6 अक्टूबर 1973 में माउंट आबू के शिविर में लगभग 1000 साधकों की उपस्थिति में उन्हें अपनी पूर्व जन्म की मां घोषित किया था। 'रजनीश टाइम्स' के पाठकों से इस ममतामयी का परिचय हो सके, इसी उद्देश्य को लेकर मैं चांदा (आज का चंद्रपुर) मां आनंदमयी से मिलने आया था।

औपचारिक वार्तालाप होने के बाद मैंने उनसे सीधे ही कह दिया–''आज इन क्षणों में, मैं मात्र आपका पुत्र ही नहीं हूं, बल्कि एक पत्रकार बनकर आपके पास आया हूं। आपके पास हमारे प्रिय भगवान रजनीश के संदर्भ में स्मृतियों के हजारों हीरे-मोती भरे पड़े हैं। 'रजनीश-टाइम्स' के पाठक उन स्मृतियों को पढ़कर आनंद लाभ प्राप्त करना चाहते हैं।''

मां के चेहरे पर सहस्त्रदल कमल से खिल उठे।

वे मुझे देखे जा रही थी और सोच रही थीं कि इससे तो मैं कितने वर्षो से वे कहानियां कहती आ रही हूं। 6-6 घंटों तक हम भगवान के ध्यान में खोये रहे हैं। आज फिर से वही बातें क्यों करना चाहता है। मैंने उनसे अपना प्रयोजन स्पष्ट बता दिया और टेपरिकार्डर और कलम लेकर मैं और मां आमने-सामने बैठ गए। उनकी सहजासन की मुद्रा में मानों एक दृढ़ चुनौती थी, कि पूछो फिर से पूछो, जो भी तुम्हें पूछना है।

''हमें कहां से बात शुरू करनी होगी विकल?''

''हमें अतीत में बहुत दूर तक पीछे की ओर नहीं लौटना है उन क्षणों में ही जीना है जब से आप भगवान के सम्पर्क में आईं। हां, प्रसंगवश यदि कोई बात आ जाये यह अलग बात है'' और तब मैंने मन में उठे सैकड़ों प्रश्नों को एक-एक कर उघाड़ना शुरू कर दिया...।

मां किसी दूर अतीत की स्मृतियों में खोई सी प्रतीत हुई और मैंने इस भाव दशा को उपयुक्त जान उनसे प्रश्न कर ही दिया। ''सुना है, बुद्ध पुरूषों की माताओं को किसी खास प्रकार की विशेष अनुभूतियां होती हैं? भगवान रजनीश से मिलने के संबंध में क्या आपके साथ भी कोई ऐसी घटना घटित हुई थी?''

मां ने प्रत्युत्तर में कहना शुरू किया–''यदि मैं इस बात को याद करूं तो दिखाई देता है कि बचपन में ही मुझे कई स्वप्न आते रहते थे जो बड़े दिलचस्प और प्रेरणास्पद थे। जो पढ़ाई में बाहर नहीं कर पाती या जाग कर नहीं कर पाती थी वह सारी उलझनें मैं स्वप्नों में एक-एक कर सुलझी सी पाती थी। विवाह के पूर्व ही मुझे अनेक स्वप्न दर्शन होते रहते थे। उसमें इस बात का कोई संकेत तो नहीं मिला कि मेरा कोई पुत्र है जो मुझसे बिछुड़ गया

है और उससे मिलना होगा। किंतु ऐसी अनुभूति जरूर होती थी जिसमें यह महसूस होता था कि मेरी कोई बहुत-बहुत ही कीमती वस्तु कहीं खो गई है जो मुझे जरूर मिलेगी।

फिर मुझे धीरे-धीरे यह अनुभूति होने लगी कि मैं भगवान की मां हूं, मेरा भगवान मुझसे दूर हो गया और विकल! जब चौदह-पंद्रह साल की अवस्था में मेरा विवाह हो गया तो शादी के बाद स्वप्न में मुझे संकेत मिलने लगे'' और अब मैं देख रहा था कि मां की चेतना अतीत की गहराईयों में बहुत ही सूक्ष्म भाव भंगिमाओं में उतरती जा रही है। उनकी अतीत की स्मृतियों को वर्तमान में ले आने में मुझे सारा वातावरण निर्मित कर देना पड़ा था जिसमें मां पूर्ण रूप से उन बीते हुए क्षणों में गहराई से डूब जाये और वहां से उन अनमोल मोतियों को मेरी झोली में डालती रहें।

''कई बार मुझे गेरूए वस्त्रधारी कमंडलधारी साधु दिखाई देते रहते थे और वे स्वप्नों में आकर कहते रहते थे—'तेरा बेटा भगवान होगा।' छोटी उमर के कारण मैं ये सारी बातें किसी से कह भी नहीं पाती थी। किन्तु मेरा मन सदा विलोडित होता रहता था। जैसे कोई मेरे हृदय को मथानी से बिलो रहा हो, ऐसा मुझे आभास होता रहता था। मेरे माता-पिता भी बहुत गहरे आध्यात्मिक व्यक्ति रहे थे। उन्हें मन की दुविधा कहती, तो वे कई प्रकार से मुझे सांत्वना देते थे। ज्ञान एवं दर्शन एवं नाना प्रकार के तत्वज्ञानों की बातों से वे मेरे प्रश्नों को हल करने की कोशिश करते रहते थे। किन्तु उनके तत्वज्ञान की बातों ने मेरे मन के प्रश्नों को हल नहीं किया। कई साधु एवं संन्यासियों से भी मिलती रही लेकिन वे भी मेरे प्रश्नों का समाधान नहीं कर पाये।''

मां की वाणी में बड़ी साहित्यिकता थी क्योंकि कविताएं रचते-रचते उनकी भाषा में एक प्रांजलता एवं अपूर्व माधुर्य आ गया था। इसलिए मैं जब भी कोई बात करता तो ऐसा भान होता रहता मानों किसी महान साहित्यकार के सामने मैं उससे वार्तालाप कर रहा हूं।

मां ने अपनी बात आगे बढ़ाई, ''मेरे प्रश्न-प्रश्न ही बने रहे और उनके उत्तर किसी के पास ही नहीं थे।'' मां का जन्म श्वेताम्बर जैन परिवार में हुआ था इसलिए अपने आसपास के वातावरण में उन्होंने अपने प्रश्नों को हल करने के उद्देश्य से अनेक जैन साधुओं एवं आचार्यों से वे मिली। जैन धर्म के आचार्य श्री आनंद ऋषि जी महाराज उन्हें स्वप्न में अक्सर दिखते रहते थे। इसे उनकी बेचैनी थोड़ी ओर बढ़ी स्वप्न में ही मानों उन्हें कोई संकेत सा प्राप्त हुआ।

उनसे स्वप्न में ही मैंने पूछा, ''विरक्त होना जीवन की बड़ी ही पवित्र और सच्ची घटना है, किन्तु मुझे विरक्ति क्यों नहीं होती? इसका क्या कारण है? उन्होंने मेरा हाथ उनको स्पष्ट बताने का आदेश दिया। एक रेखा की ओर संकेत कर कहा 'यही तो भाग्य रेखा है। मणिबंध से सीधी यह गुरू पर्वत पर जाती है यही तो तेरी वैराग्य रेखा है। तुम्हें वैराग्य अवश्य प्राप्त होगा।' इस पर स्वप्न में ही मैंने उनसे प्रश्न किया लेकिन यह विरक्ति मुझे

प्राप्त होगी कब? संसार की सारी ही वस्तुएं मुझे तो इतनी सुंदर लगती है। ये झाड़, पेड़ लता, सुंदर-सुंदर स्त्री-पुरूष, सुंदर वस्त्र सब कुछ मुझे आसक्त करते हैं, मुझे लुभाते हैं। फिर इस लंबी चौड़ी आसक्ति के मायाजाल से मैं कब छूटूंगी? संसार की प्रत्येक वस्तु मुझे अच्छी लगती है।'' बीच में ही टोक कर मैंने उनसे प्रश्न किया—''मां क्या ये प्रश्न आपको चौदह वर्ष की उम्र में अर्थात् विवाह होने के पश्चात के दिनों से ही आने शुरू हो गये थे?''

मां अतीत में पूर्ण रूप से निमज्जित हो चुकी थी फिर भी मेरी उपस्थिति का उन्हें भान भी बराबर था। ''हां ये सब उन्हीं दिनों की बातें हैं। विवाह हुआ तो ये प्रश्न मुझे और अधिक बैचेन करने लगे और फिर एक दिन आनंद ऋषिजी महाराज ने स्वप्न में मुझे दर्शन दिया और कहा 'जब तुम्हारा बेटा तुम्हें मिलेगा तब तुम्हें वह सब मिल जायेगा जिसकी तुम्हें प्यास है' और मेरे जीवन की बेचैनी दिनों-दिन और भी बढ़ती गई। कब मिलेगा मुझे मेरा बेटा? कैसा होगा वह? ऐसे अनगिनत प्रश्नों के भंवर में, सदा मैं डूबती उतराती रहती थी।'' मैंने भावना के तूफान में घिरी मां की भंगिमाओं को देख लिया था और मौके को हाथ से न जाने देकर बहुत देर से उमड़ते-घुमड़ते प्रश्न को मैंने उनके सामने प्रस्तुत कर दिया....। ''भगवान रजनीश से आपका प्रथम साक्षात्कार कब और कहां हुआ था?'' मां के सामने अट्ठाईस वर्ष का सारा अतीत, वर्तमान बन गया। चित्रपट पर उतरती सारी चित्रलिपि को वे शब्दबद्ध कर बताने को उत्सुक हो गई।

''वर्धा में बजाजवाडी में हमारा प्रथम परिचय रजनीश से हुआ। अखिल भारतीय जैन महामंडल के अधिवेशन में ही चिरंजी लाल जी बड़जात्या की पैंसठवीं वर्षगांठ मनाने का आयोजन हुआ था। यह महामंडल थोड़ा उदारवादी विचारधारा को लेकर चलता था। जिसमें श्वेताम्बर तेरापंथी आदि सभी जैनियों की शाखाएं-प्रशाखाएं सभी सम्मिलित थी। जमनालालजी बजाज के ही चिरंजीलाल जी बड़जात्या मुनीम थे और जैन समाज की सुधारवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने का कार्य करने में सदा तत्पर रहते थे। ऐसे समाज सुधारक व्यक्ति की वर्षगांठ मनाने के संदर्भ में कई उदार विचार धारा वाले व्यक्तियों के साथ मुझे भी निमंत्रित किया गया था। जैन समाज की विभिन्न शाखाओं के सभी सामाजिक कार्यकर्ताओं को निमंत्रण दिया गया था। मैं भी उन दिनों चांदा में एक बालसेवा मंदिर नाम से बच्चों का अनाथालय चलाती थी। दो तीन माह के बच्चों से लेकर बड़े-बड़े बच्चों तक करीबन सत्तर-अस्सी बच्चे उन दिनों वहां मेरी देख-रेख में थे। सो सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में मुझे भी वहां बुलाया गया था। इस अवसर पर कोई जैन हो या अन्य धर्मावलम्बी किसी भी ऐसे व्यक्ति को निमंत्रण दिया था जो सामाजिक सेवा कार्य में तल्लीन हो। ऐसे कई सामाजिक कार्यकर्ता भी वहां सम्मिलित किये गये थे। यह उत्सव कार्यक्रम वैसे तो एक ही दिन का था किन्तु नाना प्रकार के कार्यक्रमों के कारण तीन दिनों तक चलता रहा था।'' इस सब बातों की चर्चा करते-करते मेरा उद्देश्य किसी न किसी बहाने बातचीत को भगवान की ओर ही

मोड़ने का रहता था। इसलिए बीच में ही मैंने उनसे प्रश्न कर दिया। ''इस आयोजन में क्या भगवान रजनीश को भी आमंत्रित किया था? उन्हें आमंत्रण देने के पीछे संस्था का उद्देश्य क्या था?'' इन प्रश्नों के प्रत्युत्तर में मां ने कहा—''चि. रजनीश को वहां उनके प्रवचन के संदर्भ में ही निमंत्रित किया गया था। मेरा तब तक उनसे कोई परिचय भी नहीं था। इसलिए मुझे तो यह ज्ञात ही नहीं था कि रजनीश कौन है? वहां एक दो दिन रहने के पश्चात ही मुझे मालूम पड़ा था कि महाकोशल महाविद्यालय जबलपुर के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर को भी भाषण देने बुलाया गया था। अपने विचारों को एक अनूठे रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करने के संदर्भ में ही वहां उन्हें विशेष तौर से निमंत्रण दिया था। मैंने स्वयं मां को निमंत्रित करने का उद्देश्य भी जानना चाहा...।'' हां, और आपको निमंत्रित करने का उस संस्था का क्या उद्देश्य रहा था?''

इस पर मां की शांत सौम्य आंखें मेरी ओर उठीं और उन्होंने कहा—''उत्सव में कुछ भाषणों के बाद काव्य पाठ का भी आयोजन था। मैं एक सामाजिक कार्यकर्त्री तो थी ही। लोग-बाग भाषण के लिए कभी-कभी निमंत्रित कर लिया करते थे। किन्तु उस आयोजन में वहां कवियत्री के रूप में काव्यपाठ करने का मुझे निमंत्रण मिला था। मुख्य भाषण का कार्यक्रम चि. रजनीश का ही था। चांदा से मेरे आने के एक दिन पहले ही वे वर्धा पहुंच गए थे। जिस दिन मैं वहां पहुंची थी उसी दिन उनका भी भाषण था और शाम को कविता पाठ का कार्यक्रम भी। उसी रात को रजनीश का भाषण हुआ और वे तुरन्त ही जबलपुर लौट गए। कॉलेज में प्रोफेसर होने से उन्हें छुट्टियों की बड़ी दिक्कत होती थी। छुट्टी अधिक न होने के कारण उसी दिन वे जबलपुर लौट गए थे।''

मेरा मन चातक बना स्मृतियों के उन सांवरे सलोने मेघों की बाट देख रहा था जब कि भगवान के सर्वप्रथम साक्षात्कार की अमृतमयी फुहारों की ओर चर्चा मुड़े। एक आकंठ प्यास से मानों गला सूखता सा अनुभव कर रहा था। मां के चेहरे का निर्विकार रूप मुझे कहीं भी कुछ सन्धि या ऐसा अवसर देने को उत्सुक नहीं था। मानो वे भी मेरे धैर्य की परीक्षा ही ले रही थी। अपनी ओर से कुछ भी बताने में उनकी इस समय उत्सुकता नहीं दिख रही थी। लेकिन मुझे भगवान द्वारा मां को लिखे गये पत्रों की एक पंक्ति अचानक स्मरण हो आई जहां उन्होंने कभी कहीं लिखा था कि, ''किसी भी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होने पर कभी-कभी उसे स्नेह की डोर में बांधकर छीन भी लेना पड़ता है'' और तब मेरा भी बालक मन मां के सामने हठ सा कर बैठा। मैंने कहा—''मां, जब आपका सर्वप्रथम साक्षात्कार हुआ उनसे, तो मिलकर क्या महसूस हुआ आपको?''

मां शायद अभी भी मेरी प्यास को ओर भी बढ़ा देने में उत्सुक दिखीं। उन्होंने उस प्रथम दर्शन की बात को अभी भी सीधे-सीधे कह देने में ठीक अनुभव नहीं किया। वे उस

क्षण को थोड़ा रहस्यपूर्ण और रोमांचित बनाकर मुझे बताने में लीन दिखीं। उन्होंने मेरे दोनों हाथों का स्पर्श कर मानो ध्यान की कोई विशेष भाव दशा में मुझे उतारना चाहा और उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी पलकों को उठाकर सीधे मेरी आंखों में झांक कर कहना शुरू कर दिया—''विकल! उनसे मिलने के पहले वाले कुछ अन्य संदर्भ मैं तुम्हें पहले बता दूं। जब तक मैं चि. रजनीश से नहीं मिली थी। उसके पहले की मेरी अवस्था के बारे में तुम्हें बताना जरूरी लग रहा है। मैं बहुत बेचैन रहती थी। जैसा कि विकल, मैंने तुम्हें इसके पहले भी कहा था कि मेरी आत्मा विरक्ति के लिए छटपटाती थी। भीतर ही भीतर मैंने अपने मन में जो विरक्ति की परिभाषा पढ़, सुन कर बना रखी थी, उसके 'कम्पेरीजन' में उसकी तुलना में, तो मैं बहुत अधिक आसक्त थी तब तक।'' बीच-बीच में एकाध अंग्रेजी का शब्द मां की बातों के दौरान आ जाता था। यही उनकी भाषा की सहजता थी।

''रूढ़िवादी और परम्परावादी व्याख्याओं की दृष्टि से और भी कई परिभाषाएं जो युगों-युगों से चली आ रही थीं और उन्होंने मेरे मन को जकड़ लिया था उन सभी की दृष्टि से तो, मैं यही समझती थी कि मेरा जीवन बेकार है, व्यर्थ है।''

''विरक्ति की पढ़ी हुई व्याख्या से तो मेरी मनःस्थिति मुझे बड़ी ही आसक्त लगती थी। यदि विरक्ति मुझे नहीं मिलती है तो मेरा जीवन निरर्थक है, बेकार है, व्यर्थ है तब। बार-बार मेरा मन मुझे कोसता रहता था। लेकिन फिर भी किसी ऐसी 'स्टेज' पर मैं नहीं पहुंच पाई जिस स्थिति को मैं विरक्ति के लिए निर्धारित कर पाऊं। पाखंड भी नहीं कर सकती थी मैं। क्योंकि यह अवस्था तो खुद के मन की होती है। ऊपरी तौर पर किसी को बताने की तो ये बात ही नहीं है। जब तक मेरी अंतरात्मा उस विरक्ति की अनुभूति स्वयं न पा सके तब तक मैं कैसे स्वयं के मन को झूठी तसल्ली दे सकती थी भला?''

और अब मां के हृदय में उठने वाली अतीत की आंधी को मैं उनकी वाणी एवं चेहरे के हावभावों में देख रहा था। ''अंतर से छूटना चाहिए था ये सब आकर्षण। जिनको समाज बड़े-बड़े साधु, संन्यासी, मुनि कहते रहते हैं। ऐसे सैकड़ों सत्पुरूषों से मिली थी मैं। मेरे मन की दशा को जानने के लिए मैं कितना भटकी थी। जिन-जिन महापुरूषों ने भी सांसारिक आकर्षण छोड़ दिए थे उनसे मिलने के लिए मेरी आकुल आत्मा झट वहां दौड़ पड़ती थी। किसी ने माया छोड़ने की सलाह देकर विरक्ति को पाने का मार्ग बताया। तो किसी ने जाप का सहारा लेने का आदेश दिया। तो किसी ने कुछ और ही राह दिखाई। जो विरक्त कहलाते थे ऐसे तथाकथित साधुओं से अपने मन की थाह लेने में सचमुच खूब भटकी थी।''

इधर मां अपनी आत्मा की प्यास की दशा का वर्णन कर अतीत की गहराईयों में खोती जा रही थी और इधर मन भगवान से प्रथम साक्षात्कार की उस अनुभूति को 'रजनीश-टाइम्स' के पाठकों से कहने की प्यास समेटे बार-बार घूमा-फिराकर मां को उस प्रथम दर्शन के करीब

लाने की कोशिश करता। एक खिली हुई प्रतीक्षा मेरे प्राणों में थिरक उठी। मैंने पूछा–"इसी विरक्ति के प्रश्न को लेकर, इसी उद्देश्य को महत्वपूर्ण बनाकर शायद आप भगवान से मिली थी?"

"अरे! विकल इनसे मिलकर तो मेरे सारे प्रश्न ही हल होने वाले थे। इसका संकेत पहले ही मुझे मिल ही चुका था।" और मां ने फिर खुद के हृदय की 'उस' आतुर अवस्था की ओर मुझे पुनः मोड़ दिया। "जप, तपस्या, व्रत, ध्यान, भक्ति आदि सब जैसा भी मैं जानती थी वह सब मैंने किया। परन्तु बेचैनी बढ़ती गई। कोई लाभ नहीं मिला। विवाह के बाद मुझे मेरी मनःस्थिति से बड़ी ही घबराहट होने लगी। मुझे ऐसा लगता रहता कि अगर इसी मनःस्थिति में और रही तो मैं धार्मिक कभी नहीं बन सकती। मैं तो आज तक पूर्ण आसक्त रही हूं। मुझे सुंदर-सुंदर लोग अच्छे लगते थे। अच्छे घर, सुगन्ध अच्छी लगती थी और ये तो विरक्ति के मार्ग में पाप की निशानियां हैं। विकल, जो आसक्ति और विरक्ति की परिभाषाएं परम्परा से चली आ रही थी उन सब के प्रति मन कुछ डगमगाता सा महसूस करता।"

मां अब अर्धशती पीछे के अतीत में पूर्णतः उतर चुकी थी।

"अब जैसे प्रणय संबंधी बातों मे तो मुझे और भी अधिक रस अनुभव होता था। इन सब बातों को देखते हुए मुझे ऐसा लगता था....जैसे कोई शराबी रोज मन में यह सोचे कि मेरी शराब छूट जाय क्योंकि शराब कोई अच्छी चीज नहीं है, परंतु उससे छोड़ते ही नहीं बनती है वह। ठीक ऐसी ही दशा मेरी थी। ये सब आकर्षण मैं छोड़ना चाहकर भी नहीं छोड़ पा रही थी। वैस एक बात ये भी थी कि मुझे संसार में बुरी कोई भी वस्तु नजर ही नहीं आती थी। जिसे संसार पापी, या निम्न या बुराई के नाम से सम्बोधित करता है वैसा बुरा रूप तो मैं भी अपने में कई बार अनुभव कर चुकी थी। मैं सोचती....यही मनःस्थिति तो मेरी भी है। किसी हिंसक व्यक्ति को देखती तो उसके प्रति घृणा का भाव कभी उत्पन्न नहीं हुआ। किसी वेश्या को देखती तो उसके प्रति घृणा के स्थान पर करूणा ही उत्पन्न हुई सदा। मुझे लगता इसका बीज तो मुझमें ही है। इस वेश्या और मुझमें बड़ा ही सूक्ष्म अंतर दिखता था मुझे।"

"और वेश्या के जीवन के संदर्भ को लेकर मुझे विवाह के कुछ दिनों बाद की एक घटना याद आती है।" और मां फिर अतीत के सागर से स्मृतियों के कोष से कोई अमूल्य रत्न चुनकर पुनः मेरी झोली में डालने को उत्सुक दिखीं।

"मेरी उम्र बहुत ही छोटी होने पर भी मैं वह घटना आज तक नहीं भूल पाती।.... रूढ़िवादी और परम्परावादी खानदान में मेरी ससुराल थी। मेरे विवाह में बहुत बड़े-बड़े और भारी गहने चढ़ाए गए थे। मेरा ससुराल नये जमाने में नहीं ढला था तब तक के गहनों और कपड़ों के मामले में। घूंघट भी लेना ही पड़ता था। परन्तु इसके लिए मुझे उस समय उन परम्पराओं को स्वीकार करने में हिचकिचाहट नहीं हुई। गहनों में कोई बदलाव नहीं आया

था और मुझे कोई 200, 300 तोले सोने चांदी के बड़े-बड़े गहनों के बोझ में लाद दिया था।"

"मैं सोचती थी....मेरे पैर इतने सुंदर है और इन्हें छोटे-छोटे गहनों से क्यों न सजाऊं? ये संवारने का भाव मन में उठता तो था परन्तु ऐसा लगता था जैसे मैं कोई पाप कर रही हूं।

एक दिन मैंने अपने पति (श्री रेखचंदजी पारख) से कहा–'मेरे लिए थोड़े छोटे-छोटे और पतले-पतले गहने बनवा दीजिएगा। इन गहनों से मैं दूसरी औरतों से अलग-अलग सी दिखती हूं। बड़ा गंवारपन सा लगता है इन्हें पहनते हुए। हां और ये बड़े-बड़े इतने से गहने वेश्याओं जैसे भी लगते हैं।' पारखजी अपने पिताजी और काकाजी के बीच अकेले ही बेटे थे और बड़े लाड़ले भी थे। मेरे पति ने कहा–'ठीक है, मैं आज ही पिताजी से पतले गहनों को बनाने के लिए कहूंगा' और उन्होंने भी बिना किसी भय और हिचक के मेरी बात ज्यों की त्यों मेरे ससुरजी के सामने दोहरा दी। अपने पिताजी के पास से लौटकर दूत बने हुए तुम्हारे भैय्याजी (श्री पारखजी) मेरे पास आए और कहा कि–'मेरी बात मान ली गई है।' मुझे उनके इस भोलेपन पर बहुत जोर की हंसी आई। और मां की मुक्त खनकती हंसी 'आनंद' के चप्पे-चप्पे में फैल गई।"

"मैंने हंसते हुए ही उनसे प्रश्न किया–'सच बताइये मुझमें और वेश्या में क्या फर्क है?' उन्होंने चौंक कर पूछा–'आप ऐसा कैसे कहती हैं?' मैंने कहा–'चौंकिए मत! चमकिए मत!! थोड़ा गंभीरता से विचार कीजिए।' एक क्षण के लिए उनके इस दुस्साहसी प्रश्न से मैं भी चौंक पड़ा था फिर ऐसी रूढ़िवादी और परम्परावादी परिवार की नव विवाहिता पत्नी द्वारा उनके पति का चौंक उठना कितना स्वाभाविक रहा होगा। उनकी अतीत कथा में मुझे भी उत्सुकता महसूस हो रही थी। ऐसे परिवार में आई यह नारी प्रारंभ से ही कितनी साहसी और बेलाब बात करने वाली नारी रही होगी।

और बिना मेरी प्रतिक्रिया जाने उन्होंने अपनी बात जारी रखी। "मुझे मालूम था कि ये चौंकेगे जरूर और पहले से ही अपने मन में उनके चौंकने पर खुद का प्रत्युत्तर भी सोच रखा था। मैं उनका निराकरण तो करूंगी।"

"इस पर पारखजी ने पूछा–'मैं सोच नहीं पाया आप ही समझाइए।' मां ने जिज्ञासु पति की सांत्वना के लिए कहना शुरू किया–'देखिए....जिस मकसद से वेश्या गहने पहनती है, ठीक उसी मकसद से मैं भी पहनती हूं। मैं आपको रिझाती हूं वह चार को रिझाती हैं। जहां तक रिझाने के 'मकसद' का सवाल है हम दोनों बराबर है। ये बात अलग है कि वह चार को आकर्षित करती है और मैं एक को आकर्षित करती हूं। जहां तक 'रिझाना' शब्द आता है वहां तक मैं और वेश्या भी किसी सीमा तक समान है। कहिए ठीक ना?' इस पर उन्होंने कहा–'ये बात तो मुझे भी जंची। यहां तक तो ये बात ठीक है।' और फिर पारख

जी ने हम दोनों के बीच का वार्तालाप ज्यों का त्यों पिताजी के सामने दोहरा दिया। मुझे मालूम था कि इस मामले में वे बड़े निःसंकोची और 'एक्टिव' रहे हैं। ये बातें कहकर वे भी शायद पिताजी को अपनी नई बहू के बारे में चौंकाने वाली बात ही करना चाहते होंगे।''

मुझे तो ऐसा लगता है विकल कि तुम्हारे भैय्या जी (श्री पारखजी) और मैं जन्मों-जन्मों से साथ-साथ रहे हैं। और ऐसे ही साथ मिलकर अनेक कार्य किए हैं जीवन में। मेरे और उनके विचारों में कुझे कहीं मुझे अन्तर्विरोध नहीं महसूस हुआ। हम दोनों के विचारों की समानता तो मैंने अपने जीवन में किन्हीं पति-पत्नियों के बीच नहीं देखी। फर्क थोड़ा-सा ही था हम दोनों में कि मैं विचारों की गहराई तक शीघ्र पहुंच जाती थी और वे थोड़ा रूककर समय लेकर, उस गहराई की थाह पाते थे। मैं विचारों और भावों के धगतल की गहराई तक पहुंचकर जब उन्हें चौंकाती थी तो वे थोड़ा रूककर चौंक से जाते थे आर फिर कहते थे कि 'जरा इसका खुलासा करके बताइए' और फिर हमारी बहुत सी रातें इस तरह की दर्शन सम्बन्धी विचारधाराओं और भावनाओं की बातों में कटती थी।

और इस तरह गहनेवाली बात को भी उन्होंने उतनी गहराई से अनुभव कर अपने पिताजी को भी मेरी बातों की गहराई का परिचय कराया। इस तरह उस परिवार में मेरे निडर एवं अलग विचारवाली नारी की थोड़ी छाप पड़ी। अपने पति का इसके लिए मुझे भरपूर सहयोग एवं साहचर्य प्राप्त हो सका तभी तो मैं घूंघट की आड़ छोड़, सामाजिक कार्यों में उतर सकी थी।''

इस संदर्भ में भगवान रजनीश का पत्र उद्घृत करने का मोह मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूं जहां पर भगवान ने भी यह अनुभव किया है कि मां को इस सीमा तक लाने में पारखजी का कितना बड़ा योगदान रहा था।

मां को लिखे गए एक पत्र के परिशिष्ट में भगवान लिखते हैं,....5 जनवरी 69

पारखजी को....मां लिखीं हैं कि आप मेरी भेजी किताबें ध्यान से पढ़ रहे हैं। इसे जानकर मैं बहुत खुश हूं। आपसे मिलना एक गहरा आनंद मेरे लिए रहा है। आप अधिकांशतः चुप थे पर बातें तो सबसे ज्यादा आपसे ही हुई हैं। मां के निर्माण में भी आपकी लिखावट को पढ़ लिया हूं। वह छिपी नहीं रह सकती है। मौन शांत एक आदमी क्या कर सकता है, यह मुझे अनुभव हुआ। इतना सुखद....इतना मुक्त दाम्पत्य जीवन मैंने कहीं और नहीं देखा है। इससे निश्चय ही आपको धन्यता अनुभव होनी चाहिए। मैं जितने समय आपके यहां रहा मेरे मन में यही प्रार्थना प्रभु से चलती रही कि काश! भारत का प्रत्येक परिवार ऐसा जीवन जी सके। प्रभु की धनी अनुकम्पा आप पर है।

रजनीश के प्रणाम।

मां पारखजी की अतीत स्मृतियों में खो चुकी थीं और थोड़े विश्राम के बाद 'रजनीश-टाइम्स' के पाठकों की जिज्ञासा पूर्ति के लिए पूर्व प्रश्न, मैंने पुनः दोहराकर वर्तमान में उन्हें

लौटाना चाहा। मैंने उनसे वही प्रश्न पुनः दोहराया।....''मां! जब भगवान रजनीश से आपका प्रथम साक्षात्कार हुआ। आपके उस महामिलन का क्षण कौन सा था। कुछ तो शेष रहे होंगे उस महा मिलन के चिह्न? मेरी प्यास को, कुछ अमृतमयी बूंदों का दान दो मां!''

मां के चेहरे पर फिर बिजली सी कौंध गयी। मुस्कराते हुए उन्होंने बात आगे बढ़ाई। ''खोज तो पहले से ही थी मेरी। मन में नाना प्रकार के प्रश्न उठते थे, गिरते थे। मैंने ये जो घटनाएं बताई ना तुम्हें? इसी प्रकार की आसक्तियों एवं विरक्तियों के प्रश्नों के लिए मेरे मन में एक अजीब सी वेदना होती रहती थी। चोर, वेश्या और ऐसी ही सामाजिक जीवन में जिन्हें बुराई कहते हैं, जो उदाहरण मैंने तुम्हें दिए ये सब उन सभी प्रश्नों की शुरूआत थी। अब जैसे मेरे पति अपनी कमाई में से इन्कम टैक्स बचाने के लिए नाना प्रकार के बही खाते रखते थे, ये भी तो एक प्रकार की चोरी ही थी। चोरी एक पैसे की हो अथवा लाखों की वह मूल रूप से चोरी तो कही जायेगी न? सिर्फ मात्रा के फर्क से यह चोरी की मूल कृति तो नहीं बदल गई ना? इस तरह ऐसे अनेक प्रश्न थे, कई जिज्ञासाएं थी जो मेरे मन को सदा चोट पहुंचाते रहती थी। वृत्तियां तो प्रत्येक मनुष्य के मूल रूप में समान ही रहती है ना। इन सब बातों के प्रति मेरे पति ने मेरे विचारों को एक स्वतंत्र रूप देकर मेरे जीवन को ही नई गति दे दी थी। बड़े उदार मन रहे मेरे पति। परिस्थितियों के अन्तर से ही ये 'कु' और 'सु' की विचार सरणी निर्धारित होती है शायद? और फिर मुझे मनुष्य-मनुष्य में कोई फर्क ही महसूस नहीं हुआ।

इस तरह इन सब प्रश्नों की जकड़न में मुझे यह लगने लगा कि मेरी मनःस्थिति भी किसी सीमा तक पापाचरण की है धर्माचरण की नहीं। इन्हीं जैसे सैकड़ों प्रश्नों के जाल में एक कैद सी महसूस कर छटपटाती रहती थी और मन में एक अव्यक्त अदम्य प्यास सी सदा जागृत रहती थी। इनसे मुक्त होने के लिए मेरी खोज बढ़ती ही जा रही थी।

खोज थी इस बात कि....बेटा मिलेगा तो मेरे प्रश्नों के हल भी मिलेंगे और प्रश्न हल होंगे तो मैं विरक्त हो सकूंगी, उसे जान सकूंगी। इसलिए पुत्र की खोज में ही मेरा मन रमता गया। कहां होगा? कैसा होगा? मेरा पुत्र जो मेरे हदय के अमृत को पहचान पायेगा? फिर तो मैं और भी बेचैन हो उठी।''

अचानक मेरे मन में एक प्रश्न उठा और मैं पूछ बैठा–''आपकी क्या उम्र रही होगी तब मां?'' ''इन प्रश्नों के हल करने के लिए तो मैं बचपन में बारह तेरह वर्षों की आयु में ही अपने को एक अलग प्रश्नों भरी दुनिया में पाती थी। चौदह पंद्रह वर्ष की उम्र में विवाह हो गया था। विवाह के बाद मन के जो विकार थे उन पर थोड़ा काबू सा पा लेती थी मैं। जैसे क्रोध और लोभ जैसे विकार के समय मन की अवस्था को थोड़ा-थोड़ा पहचानने लगी थी। क्रोध को पाती तो समझ लेती थी, मन को सांत्वना दे लेती थी। लोभ के क्षणों में मन कभी ललचाया नहीं। किंतु अपमान की भावना मुझे सहन नहीं होती थी। आंखों के भावों से मैं पहचान लेती थी कि ये मेरा सम्मान है या अपमान है। विवाह के बाद ससुराल में ऐसी घटनाएं हो जाना साधारण

बातें थीं और इन परिस्थितियों से रूढ़िवादी मारवाड़ी परिवार की बहू का साक्षात्कार होने के लिए ये स्थितियां सदा ही सामने पाती थी मैं। दूसरे शब्दों में कहूं तो स्वाभिमान मुझे दुख दे रहा था। इतना अधिक स्वाभिमान जागृत था, कि यदि कहीं मेरे मन की गहराईयों में वह शायद मेरा अहंकार ही होगा जो 'स्वाभिमान' के झिलमिलाते परदों में बड़ा सुंदर सा रूप धारण किए बैठा था और मानव स्वभाव के अंतर के परदों को मां ने मानो एक साथ उघाड़कर अस्तित्व की एक झलक से साक्षात्कार बड़े ही सीधे सरल शब्दों में करा दिया था।

कोई कुछ भी कहे, चाहे प्रशंसा करे या सम्मान दे। यदि कोई कलंक लगाए या मिथ्या दोषारोपण करे। हर परिस्थिति में समभाव लाना चाहती थी मैं। इन सब विकारों से छूटना चाहती थी मैं।''

पुनः मैंने मां की विचारधारा को, भगवान के प्रथम साक्षात्कार के दर्शन के प्रति मोड़ने का प्रयत्न किया और फिर से मैंने अपना प्रश्न दोहराया। ''भगवान से आपका साक्षात्कार वर्धा में हुआ था, ये तो आपने पहले इंगित किया था परन्तु अपनी वह बात तो अधूरी ही....''

और मेरी बात को वही पुनः काटकर, मां ने अपने हृदय में चल रही आंधी और तूफान में तिनके के समान मुझे बहा ले जाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

''मेरे मन के प्रश्नों की आंधी 'उसके' मिलने पर शांत होगी। वह कहां है? और कब और कैसे मिलेगा? इसकी खोज में कमर कस के करूंगी तभी सफलता मिलेगी। चि. रजनीश के वर्धा में मिलने के पूर्व के संकेत बड़े अनूठे हैं। वर्धा में रजनीश के मिलने के पूर्व मैं अपने परिवार के बच्चों के साथ कश्मीर, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि कई स्थानों में प्रकृति के सान्निध्य में बिताने जाया करती थी।''

इतने में ही 'आनंद' (कमरे) में फोन की घंटी घनघना उठी और थोड़ी देर के लिए मां की भाव धारा खंडित सी हो गई। मेरे कानों में तब पास के आगंन में मां के नाती का रूदन सुनाई पड़ा और गोशाला में बंधी गाय के रंभाने की ध्वनि भी मेरे कानों में टकराई। मैं सोचने लगा। मां के सम्पर्क में समय तो भान ही नहीं होता। समय कितना सिमट जाता है। यह अवस्था समय के बाहर है और तब भगवान श्री का एक वाक्य स्मरण हो आता है....''और वहां समय नहीं है।'' प्रभु के राज्य में समय कहां है? उसे हमने घड़ियों की सूईयों में कैद करने की कोशिश जरूर की है? किन्तु समय के पार जाने में घड़ियों का क्या मूल्य? फोन पर बातें समाप्त कर वे भगवान श्री की फोटो के नीचे उसी स्थान पर पुनः आ बैठी और उनकी यादों के गुलाब फिर से महकने को बेताब हो उठे।

''लुधियाना में जैन धर्म के आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज हैं, उन्होंने 'अभयबिल' (एक प्रकार की जैन धर्म की तपश्चर्या) और 'नमश्क्षुणम' का पाठ करने की सलाह दी। फिर ऋषिकेश, हरिद्वार और देहरादून जाते हुए जयपुर हम लौटे। प्रातः की लाली अभी फूटी ही

थी कि सुबह-सुबह सामने बिना पलकें झपकाए, एक साधु घूरता हुआ मुझे खड़ा दिखाई दिया। किसी ने मानों पत्थर की दो आंखें जड़ दी हों उसके मुख पर और ऐसे ही निष्पलक घूरते हुए कहने लगा। 'जिसे आप ढूंढ रही हैं वह तीन महीने में मिलेगा।' मैंने मन में व्यंग्य...से सोचा—देखो ये भी भविष्यवक्ता है। प्रगट में उनसे मैंने निवेदन किया, देखिए स्वामीजी, मैं किसी को ढूंढ़ नहीं रही हूं। आप ये आटा दाल सीधे का सामान ग्रहण कीजिए और अपनी भविष्यवाणी की दुकान सड़क के किसी किनारे लगा लीजिए खूब चलेगी। बहुत फायदा होगा कई लोग आयेंगे।''

''इतने व्यंग्य सुनकर भी वो साधू मुझसे नाराज नहीं हुए। उनकी मुस्कान और तीखी सी हो उठी और फिर से बड़ी ढीठता से कहने लगा—'भगवान को मालूम है कि आप किसे ढूंढ़ रही हैं। उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है कि आप को हम उनका संदेश दे दें। जब वह मिलेगा तब याद कर लेना।' मैंने शिष्टतावश उनसे पूछा, आपका नाम क्या है स्वामीजी?

तो उन्होंने कहा...........'बालकदास'।''

यह संकेत सबसे बड़ा प्रतीत हुआ मुझे। मैंने उन्हें बीच में ही पूछा—''मां, लेकिन क्या आपने बालकदास जी के उस कथन की बातें सीरियसली ग्रहण कीं?''

''हां, सीरिसियली लेने को मेरा मन मजबूर था। उन दिनों अनाथालय चलाया करती थी मैं। इसलिए मन के किसी कोने में लगा कि हो सकता है बालकदास के रूप में भगवान ही कोई संकेत दे रहा हो मुझे। साधना भी चल रही थी। मन पर कंट्रोल भी रखती थी। खोज चल रही थी। प्यास बढ़ रही थी। कई दर्शन की पुस्तकें मैंने पढ़ डाली।'' मां के हृदय के प्रश्नों को जानने की अदम्य लालसा, एक गहन प्यास सी बन गई थी। जिसके संदर्भ में भगवान के द्वारा को लिखे कई पत्रों में संकेत मिलता है।

प्रिय मां,

प्रणाम! कल संध्या घर से लौटा हूं और आते ही आपका पत्र मिला है। आध्यात्मिक जीवन की बढ़ती प्यास ध्यान का परिणाम है। ध्यान-साधना व्यक्ति को उस परिधि में ले जाती है जहां आत्मा का गुरूत्वाकर्षण प्रारंभ हो जाता है। एक बार ध्यान में कूद जाने भर की बात है फिर शेष अपने आप हो जाता है। हमें केवल एक छलांग लेनी है और फिर शेष सब आकर्षण का आंतरिक केंद्र अपने आप कर लेता है।

इससे ही मैं निरंतर कह रहा हूं कि, एक ही कदम उठाना है और मंजिल पर पहुंचना हो जाता है। अप्रबुद्ध जीवन और प्रबुद्धता में बहुत फासला नहीं है। फासला केवल एक ही कदम का है। विचार प्रक्रिया से जागे कि छलांग लग जाती है और यह कदम कैसे आश्चर्य में पहुंचा देता है। फिर जो प्रगट होता है वह शब्द के बाहर है।

दोपहर 16 अगस्त 1962

रजनीश के प्रणाम!

मां ने भगवान से प्रथम मिलन की भूमिका बना पुनः कहना प्रारंभ किया—"उन दिनों विवेकानंद का बड़ा जोर था। अभी तक उनका कोई साहित्य मैंने नहीं पढ़ा था और फिर सबसे पहले उनका 'राजयोग' पढ़ा। पतंजलि-योग दर्शन की बड़ी सुंदर व्याख्या की है उसमें।"

"यात्रा से चांदा लौटकर आई तो वरोरा मेरे ननिहाल से एक तपश्चर्या के उत्सव में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिल पाया। मैं उत्सव में सम्मिलित होने के लिए पैसेंजर गाड़ी से अकेली ही रवाना हुई। चांदा के पास ही थोड़ी दूर पर एक माजरी नामक छोटा सा जंक्शन स्टेशन है। वहां कुछ देर के लिए पैसेंजर गाड़ी रूकी। स्टेशन के एक तरफ एक छोटी सी इमारत है और दूसरी ओर लम्बे-लम्बे खुले खेतों का फैलाव है। मैं रेलगाड़ी में खिड़की की ओर बैठी थी। समय बिताने के लिए मेरे हाथ में 'राजयोग' पुस्तक थी। उसमें मैंने एक पंक्ति अभी-अभी पढ़ी ही थी जिसमें कहा गया था कि कोई भी वस्तु अपने आप में सुखात्मक या दुःखात्मक गुणों से पूर्ण नहीं होती। इतना पढ़ने के उपरांत जब रेलगाड़ी रुकी तो खिड़की के बाहर खेतों की हरियाली की ओर मेरी दृष्टि मुड़ गई। खेतों में बहुत से मजदूर काम में मग्न थे। ठीक मेरी खिड़की के सामने ही एक नाग और नागिन अपनी पूंछ के सहारे मुझे खड़े दिखाई दिए। बिलकुल तांबे के रंग के भूरे से वे रेशमी चमक लिए मेरे मन को मोहने लगे। उन दोनों की नजरें मेरी नजरों से एक साथ मिलीं।"

"छुटपन से ही मुझे नागों से प्रेम रहा है। सांप मुझे बड़े प्यार और भगवान की अद्‌भुत कलाकृति लगते थे। छुटपन में जो भी सपेरे आते तो मैं उनसे उनको स्पर्श कर छूकर देखने का आग्रह सदा करती थी। दूर से देखने में चमकीले, सुंदर और कोमल लगते किन्तु छूकर देखने में पत्थर से कठोर बदन वाले लगते थे। मैं दबाकर देखती तो बड़ा मजा आता था। शायद बचपन के सौंदर्य का ही आकर्षण रहा होगा जो मैं उस नाग और नागिन की दृष्टि में अपने को बंधा अनुभव कर रही थी। मैं देखकर बड़ी आनंदमग्न हो रही थी। लेकिन खुशी भी तो आदमी एकाकी बर्दाश्त नहीं कर पाता है।"

और अचानक मां की वाणी से मानव मनोविज्ञान की अत्यंत गहरी बात बड़ी सहजता से प्रगट हो गई। "इसलिए मैं इस आनंद के सौंदर्य को अन्य में भी बांटना चाहती थी। उठे हुए फन के उस जादू को अचानक पास बैठी एक मुसलमान स्त्री को मैंने बताने के लिए भावावेश में उसे इशारा किया। प्रभु की चमत्कार लीला का वह सुंदरतम दृश्य उसे फिर से झकझोर कर दिखलाया तो वह देखते ही 'हाय-अल्लाह!' कहकर बेहोश सी होने लगी और तब अचानक पुस्तक की जो पंक्ति मैं पढ़ रही थी इन क्षणों में कितनी सत्य प्रतीत हो रही थी। विधाता की बनाई उस कलात्मक जीव के सौंदर्य को मैं निहारे जा रही थी। उसमें एक को जीवन का अमृत दिखाई दे रहा था और उसी कलाकृति में दूसरे को मौत का हलाहल।

दर्शन की ऐसी अनबूझ गहराई भरी विचार सरणी को मन ही मन, मां हल भी करती जा रही थी। उस दृश्य की स्मृति वरोरा उत्सव से लौटकर भी हृदय के गहरे सागरतल में जम गई। चांदा में श्यामसुंदर जी शुक्ला विनोबा भावे के शिष्य हमारे घर में ही रहते थे। बाह्य सामाजिक जीवन में कार्य करने की प्रेरणा और उत्साह सदा उनकी ओर से ही प्राप्त होता रहता था मुझे। संत जैसे व्यक्तित्व की गरिमा उनमें अटूट थी। माजरी स्टेशन का वह अनूठा सर्प-सौंदर्य मैंने ज्यों का त्यों उन्हें सुना दिया।"

तब इस पर शुक्ला जी ने कहा—"बाई सा, इसमें, आपके जीवन में कोई सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट इच्छा पूरी होने का कुछ संकेत है। तभी ऐसे स्वर्गिक दृश्य दिखाई पड़ते हैं।"

"मैंने मन में सोचा, कि भाई! मेरी तो सबसे बड़ी इच्छा तो अपने पुत्र से मिलने की है। खैर....देखेंगे। यह सब घटनाएं और संकेत मिल ही रहे थे, और सन् 1960 का वर्ष लगा ही था कि वर्धा से वही 'जैन महामंडल' वाला निमंत्रण मुझे मिला।"

और जब उस अड़सठ वर्षीय नारी की तेजस्वी आंखें अपार ऊर्जा से दमकने लगीं। जब वे मुस्कराती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों उसमें कोई रहस्यमयता पर्दों के पीछे से झिलमिलाती हुई अपने आकर्षण में बांधने की कोशिश कर रही हो और जब मुक्त हास्य करती तो आसपास का वातावरण सहस्रों दामिनी की दमक से दीप्त हो उठता था। लगातार मेरी आंखों के भाव पढ़ते-पढ़ते वे एकाएक, बड़ी ही रहस्यमयी मुस्कान से मुझे देखकर मेरे अंतर को नहला गई। जैसे मेरे चिरप्रतीक्षित प्रश्नों की भूमिका समापन कर भोजपत्रों पर अंकित अक्षरों से एक-एक का परिचय मुझे कराना चाह रही हो।

"बुलढाणा निवासी श्री भीकमचंदजी देशहरा एक दिन चांदा पधारे और वर्धा उत्सव में सम्मिलित होने का आग्रह किया। मैंने दृढ़ निश्चय से, प्रार्थनापूर्ण अपनी बात उनके सामने रखी—जब तक वह मेरा (बिछड़ा हुआ पुत्र) पुत्र मुझे नहीं मिलता मैं चांदा का निवास छोड़कर कहीं भी नहीं जाना चाहती। जब तक मेरे जीवन के प्रश्न हल नहीं होते मुझे यह शहर छोड़ना ही नहीं है। मैं जो छोटे-मोटे कार्य अपने मन बहलाव के लिए कर रही हूं उसी कार्य को लोग महान समझ लेते हैं। किन्तु यह महानता थोथी है। मिथ्या है यह झूठा दंभ अब बरदाश्त नहीं होता। जब तक अंतर से वह महानता अनुभूत न होने लगे तब तक लोगों की नजरों में महान बने रहकर क्या हो जायेगा। यह तो ढोंग ही होगा।'

उनके चेहरे के भावों में एक अलग दृढ़ अस्तित्व की झलक सी झिलमिला उठी थी ऐसा कहकर। इस पर देशलहराजी ने अपना आखिरी पासा मेरे सामने फेंका—'जब तक आपका पुत्र आपको नहीं मिलेगा तब तक आपकी बेचैनी दूर नहीं होगी ना? तो जब तक आप ढूंढ़ेंगी ही नहीं, खोज ही नहीं करेंगी तो वह आपका पुत्र आपको कैसे मिलेगा?' इस तरह मुझे उन्होंने हकाना चाहा था किन्तु उनका यही छलावा मेरे जीवन में बहुत ही बड़ी क्रांति का क्षण ला सका। उन्होंने फिर कहा—'देखो बाई सा, चलो....शायद वहीं मिल जाय।'

मैंने अविश्वास से कहा—'मिल गए।' इस पर पारख साहब ने भी मुझे वर्धा जाने के लिए प्रेरित किया। इस तरह आने वाले से ही तो दस तरह के लोगों से परिचय होता है। आपका सम्पर्क जब नये-नये व्यक्तियों से होगा तो आपको 'बाल सेवा मंदिर' (अनाथालय) को भी एक नया स्वरूप प्राप्त होगा।

मेरी जाने की अनिच्छा को मेरे पति ने पुनः एक नया मोड़ दिया। उनकी प्रेरणा से ही मैं सदा किसी कार्य को आगे बढ़ाने में उत्साह अनुभव करती थी।''

और इतना कहकर एक क्षण के लिए मौन हो गई। उस मौन में भी हम कुछ क्षण वार्तालाप करते रहे।

''इस तरह पैसेंजर गाड़ी से ही चांदा से हम वर्धा के लिए रवाना हुए। प्रातः छः साढ़े छः बजे ट्रेन वर्धा पहुंचती है।''

वर देने वाला यह वर्धा शहर कितनी देर से मेरी प्रतीक्षा में था। अब तक मैंने भी दृढ़ता से सोच लिया था—जब तक स्वयं मां हमें वरदान देने वर्धा नहीं पहुंचती है, मैं उनसे वर्धा ले चलने का जिक्र भी नहीं करूंगा। जहां जिस शहर में मां का भगवान से सर्वप्रथम साक्षात्कार हुआ था वह वरदायक नगर हम प्रेम के प्यासों के लिए कितनी आतुरता से हमारी प्यास जागृत कराये हुआ था और मैं अत्यंत सजग होकर मां की आंखों से भगवान श्री के प्रथम साक्षात्कार करने के लिए आतुर हो उठा।

''सुबह-सुबह ही हम बजाजवाड़ी पहुंचे। जैसे ही बजाजवाड़ी की तीसरी सीढ़ी पर मैंने कदम रखा वैसे ही एक अत्यंत तेजस्वी अपनी विशाल आंखों में जाने कौन सी मोहिनी लिए एक दाढ़ीवाला पुरूष धोती पहने हुए और शरीर पर एक शुभ्र दुपट्टा सा ओढ़े हुए बाथरूम से निकलकर मेरे ठीक सामने खड़ा हो गया। हम सभी आए हुए अतिथियों पर से घूमती हुई उनकी झील से गहरी आंखें मुझ पर आकर टिक गई।'' मैं भी इस दृश्य को देखने में तल्लीन था। मां की वाणी भी कुछ देर के लिए उस स्थान पर स्थिर हो गई। वे पुनः उस अतीत के चित्र को टकटकी बांधे हुए कुछ क्षण देखने की कामना में डूब गई। सब कुछ रूक गया था। पंखे की ध्वनि और पास ही घड़ी टिक-टिक भर सुनाई पड़ रही थी। सब कुछ लय हो गया था। प्रश्न डूब गए थे। उत्तर भी तिरोहित हो गए थे। मां की आंखें मेरे चहरे पर जमीं थीं और मैं उनकी आंखों की गहराई में डूबा अस्तित्व में लीन था। आज उस विराटता की एक झलक पाकर मुझे यह अनुमान हुआ कि....

प्रतिमा में जीवता सी
बस गई सुछवि आंखों में
थी एक लकीर हृदय में
जो अलग रही लाखों में।

उस एक लकीर को हृदय के कैमरे से क्लिक किए बैठे ही थे कि मां का दो वर्ष का

नन्हा सा पोता उस आनंद के लोक में प्रवेश कर अपनी किलकारियों से दादी मां को अपने सम्मोहन में बांधने को उतावला हो रहा था। वह मेरे पास भी आया, और टेप रिकार्डर की बटन दबाकर उसे बंद कर दिया। जैसे हमारा वार्तालाप बंद कराके वह अस्तित्व के इतने सुंदर दृश्य में कुछ देर और डूबे रहने का आदेश हमें दे रहा हो। मैं भी उसके घुंघराले बालों से खेलने लगा और मां भी उससे कुछ बातें कर उसको सांत्वना देने में हिल-मिल गई। अपनी अतीत की स्मृतियों का तारतम्य वे नहीं तोड़ना चाहती थीं। इसलिए अपने नन्हे पोते को फुसलाने के लिए तरह-तरह के बहाने खोजने लगी।

ऐसे क्षणों में उनकी पुत्रवधु ज्योति ने प्रसंग की नजाकत को समझ, अपने बालकृष्ण को बहला-फुसलाकर दादी के सान्निध्य से थोड़ी देर के लिए दूर ले गई। और फिर मां को जिन पंक्तियों को कहकर कुछ क्षण के लिए रूके रहना पड़ा था, उन्होंने उसी प्रसंग को आगे बढ़ाया....।

''हां, तो धोती लपेटे एक दाढ़ीवाले तेजस्वी पुरूष को मैंने देखा था। उस समय उनसे मेरा कोई परिचय नहीं था तो विकल, उन्होंने जैसे ही पहली बार मुझे देखा, उनकी आंखों में मुझे यह भाव लगा कि वे मुझे देखकर थोड़े क्षणों के लिए जैसे चौंक गए और उसी क्षण मुझे भी कुछ-कुछ बड़ी ही अजीब सी अनुभूति सी हुई। ऐसा लगा मेरे शरीर के सारे रक्त का प्रवाह सिमटकर मेरी छातियों में होने लगा हो। मैं भी चौंकी, उस दीर्घनयनों वाले उस दाढ़ीवाले व्यक्ति के व्यक्तित्व से क्यों चौंकी? ये नहीं मालूम? वह क्षण मैं भूल ही नहीं सकती।'' लहराते हुए अस्तित्व को सामने एकाएक पाकर उस क्षण में मां की भाव दशा जानने के लिए मैंने पूछा—''जब आपने एक दूसरे को देखा होगा! वे क्षण तो निश्चय ही अविस्मरणीय रहे होंगे? बिना शब्दों की वाणी में, मौन की भाषा में अनबुझा वार्तालाप! सचमुच कितने, करोड़ों सागर की गहराई नाप रहे होंगे आप दोनों?''

''हां....वे असाधारण नजरें थीं। कुछ चौंकाने का भाव दोनों की ही नजरों में था वहां। पलक झपकते ही यह सब हो चुका था। मैं तो मंत्रबिद्ध हरिणी सी युगपुरूष शिकारी के सामने खड़ी थी। इतने में ही भीकमचंदजी देशलहरा ने परिचय कराया....'बाई सा, आप आचार्य रजनीश जी है। राबर्टसन कॉलेज (महाकौशल महाविद्यालय) जबलपुर में दर्शनशास्त्र के विद्वान प्रोफेसर हैं। और आप....चांदा से आई समाज सेविका श्रीमती मदन कुंवर पारख हैं।' इसके बाद....हाथ जोड़े....वे अपने रास्ते चले गए और हम अपनी राह पर।''

''यह था सबसे पहला क्षण। अब इस क्षणिक मिलन के बाद मेरे मन में उस अजूबे से व्यक्ति से फिर एक बार मिलकर बातें करने की इच्छा हुई। परन्तु अब मिलूं कैसे? वे कहां ठहरे हैं? कहां मिलेंगे? मैं कैसे खोज सकूंगी इतनी भीड़-भाड़ में? यही उत्सुकता बनी रही और मेरी नजरें उन्हें ही ढूंढ़ती रहीं। तब मन ने समझाया—'और कहीं नहीं तो भोजन के समय तो मिलेंगे ही' और मेरी प्रतीक्षातुर आंखें सैकड़ों चेहरों में उन्हीं दो आंखों की खोजती

रही। किन्तु वे नहीं दिखे। हम सभी निमंत्रित मेहमान थे किन्तु हमारे बीच 'वह' निमंत्रित मेहमान नहीं था जिसे भी वहां होना चाहिए था। तब मैंने इन्दौर से आई हुई श्रीमती पारसरानी मेहता से पूछा—वह व्यक्ति कहां हैं? दाढ़ी वाले बाबा?'' मां की इस बालसुलभ चपलता और सहजता से मुझे बहुत जोरों की हंसी आ गई।

''हां! हां!! मैंने ठीक इन्हीं शब्दों में तुम्हारे भगवान के बारे में सबसे पहले पूछा था, कि वे दाढ़ीवाले साधु महाराज कहां हैं? वे तो यहां कहीं भी नहीं दिखाई दे रहे हैं?'' इस पर पारसरानी मेहता ने प्रत्युत्तर में कहा—

''अरे! अब क्या बताएं दादीजी....वे तो विवेकानंद का ही दूसरा रूप है। अब वो क्यों आयेंगे हमारे साथ जीमने (भोजन करने) होंगे वे कहीं एकांत में किसी कमरे में, नहीं तो मंदिर में ध्यान में बैठे होंगे।''

''तब पारसरानी के कहे हुए शब्दों में मुझे लगा—चलो, एक पागल व्यक्ति यहां भी मिला है। दूर-दूर रहने वाला व्यक्ति मुझे जरा भी पसंद नहीं। संत बनकर समाज से भागो मत। यहीं समाज में रहकर काम करो और मुझे लगा, ये भी ऐसे ही भगोड़े संन्यासियों में से एक हैं।

फिर भी, मन ने सोचा....ऐसे भगोड़ेपन वाले व्यक्ति भी हों तो मिलना तो जरूर है। देखेंगे क्या होता है। उनके भगोड़ेपन को 'चैलेन्ज' तो करेंगे ही ऐसा सोच-जहां भोजन के पश्चात् सारे लोग हॉल में बैठे गपशप कर रहे थे वहां जाकर देखा तो वहां भी इनका कोई अता-पता नहीं मिला। वहां अधिकतर नेताओं की बातों के माध्यम बना, राजनीतिक बातें हो रही थीं। मुझे इन राजनीतिक बातों में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। तो सोचा—यहां से छूटो और वहां के किसी कमरे में उन्हें खोजो कि किस कमरे में वे 'दढ़ियल बाबाजी' बंद हैं। यहां तो बेकार ही समय नष्ट हो रहा था। इसलिए चुपचाप खिसको यहां से।''

''यह सोचकर मैं वहां से दबे पांव निकली और अन्य कमरे देखती हुई तीसरे कमरे में पहुंची तो, देखा अरे! ये महाराज तो यहां बैठे हुए हैं।''

मैंने कहा—''बजाजवाड़ी की तीसरी सीढ़ी से, तीसरे कमरे तक आखिर पहुंच गईं आप मां! उस इमारत की तीसरी सीढ़ी पर कदम रखते ही भगवान का सर्वप्रथम और अब तीसरे कमरे में सम्पूर्ण एकांत में आपने उनके दूसरी बार दर्शन किये। है ना अजीब संयोग?''

''हां....उनके पास ही उनके कमरे में ही फडके गुरूजी (चांदा के ही मां के एक परिचित) सोये हुए थे और चि. रजनीश वहां उस एकांत में बैठे हुए दूर शून्य में एकटक देख रहे थे।''

''वे किस मुद्रा में बैठे थे?'' मैं भी मां के साथ-साथ उनके अतीत की फिल्म को 'रिवर्स' कर देखना चाहता था, इसलिए भगवान का एक-एक हाव-भाव, मुख-मुद्रा और सारे व्यक्तित्व को आंखों से पी लेना चाहता था।

मां ने हूबहू भगवान की उस बैठी मुद्रा का अभिनय कर मुझे बता दिया। दोनों पैरों को घुटने से मोड़कर किसी विशिष्ट चिंतन में लीन मुद्रा को उन्होंने स्वीकार कर बता दिया।

''विकल, मुझे शुरू से ही शास्त्रों की एक बात से विरोध रहा है। हमारे जैन शास्त्रों में तो नारी को नरक का द्वार और काली नागिन तक कहा गया है। ऐसे ही हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में नारी की लांछना के तो अनेक किस्से लिखे पड़े हैं। मुझे ये प्रश्न बड़े तीखे लगते थे, कि नरक के द्वार से भगवान कैसे पैदा हो जाते हैं? और काली नागिन से तो काला विषभरा नाग पैदा होना चाहिए भगवान और साधु महात्मा और इंसान कैसे पैदा होते हैं? ऐसे तर्क सदा चलते रहते थे मन में। शास्त्रों की परम्परा से चली आई इस विचारधारा से मेरा मन बड़ा क्षुब्ध होता था। मौका पाते ही मैं तथाकथित साधु संन्यासियों से भिड़ जाने में नहीं हिचकिचाती थी।'' ''सामने एक संन्यासी से मिलने के पूर्व मेरे मन में इन्हीं विचारों का ही द्वंद्व चल रहा था, इसलिए उस बजाजवाड़ी के तीसरे कमरे की देहरी के बाहर ही मैं खड़ी हो गई। क्योंकि स्वाभिमानी तो थी ही, सो, सोचा—खुद ही अपना अपमान क्यों कराऊं क्योंकि ये भी अन्य साधु महात्माओं जैसे ही मौनी बाबा हैं। ये भी नरक का द्वार समझकर नारी की परछाई से दूर भागते होंगे। मैं एक नारी ठहरी और ये तो संन्यासी हैं। कहीं मेरी परछाई भी पड़ गई तब क्या होगा? यही सोच भीतर एकदम प्रवेश नहीं किया। पूर्वाग्रह के कारण व्यंग्यात्मक एवं उलाहने भरे स्वरों में चौखट के बाहर से ही पूछा—

''क्या मैं अंदर आ सकती हूं?''

''हां आप आ सकती हैं।'' चि. रजनीश ने कहा।

''उनके लहजे से ऐसा लगा जैसे सर्वसामान्य अन्य और कोई नारी नहीं आ सकती. ...'मैं आ सकती हूं।' मन बड़ा संदेही होता है। उसने फिर संदेह किया....'ये ढोंग यहां भी है।' सुन तो लिए थे ये शब्द किन्तु मेरी बुद्धि ने नहीं स्वीकारे ये शब्द! आखिर अभी ये ऐसा विभाजन क्यों?.....कि, हां 'आप' आ सकती हैं।''

''मैंने सोचा—'अभी तो मैं आकर खड़ी ही हूं यहां। यह विवाद अभी नहीं करना है और फिर चुपचाप भीतर आकर बैठ गई। खैर, मुझे तो मेरे प्रश्न मिटाने थे। जिसे ढूंढ रही हूं इतने-इतने जन्मों से, ये वही व्यक्ति हैं या नहीं। मेरा पिछले जन्मों का ये बेटा ही हो शायद? इम्तहान होने के विचार से भीतर आई थी। आकर बैठने के बाद उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी पलकों को उठाकर मेरी ओर निहारा।''

''आप कोई साधना कर रहे हैं?'' मैंने बात करने के उद्देश्य से पूछा उनसे।

''हां कर तो रहा हूं?'' मुस्करा उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया।

''आप जो साधना कर रहे हैं क्या मैं भी कर सकती हूं?'' मैंने वार्तालाप को थोड़ा बढ़ाने के उद्देश्य से अगला प्रश्न कर दिया। उन्होंने प्रत्युत्तर दिया—''हां, जो मैं कर रहा हूं वह तो आप कर सकती हैं, लेकिन आप जो, इन दिनों पढ़ रही हैं, वह नहीं कर सकती।''

"मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इन्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं इन दिनों क्या पढ़ रही हूं। उन दिनो विवेकानंद के साहित्य में थोड़ी रूचि बढ़ रही थी। फिर भी मैंने बात को वहीं छोड़कर कहा—ठीक है, लेकिन एक प्रश्न आपसे मुझे पूछना है।"

'ठीक है, पूछिए'। रहस्यपूर्ण मुस्कान से परिपूर्ण हो उन्होंने कहा। इस पर मैंने पूछा—"इंसान जो होना चाहता है वह होता क्यों नही उससे। मैंने इस अधिक खुलासा कर कहा—अब जैसे मान लो, कोई अपमान की भावना है और वह ये चाहे कि यह अपमान की भावना उसे महसूस न हो तो उसे अपने लिए चाहकर भी ये बात पूरी क्यों नहीं कर पाता। जो बातें हम नहीं चाहते कि हमारे भीतर आएं वे न चाहकर भी क्यों चली आती हैं?"

इस प्रश्न के लिए भगवान का क्या उत्तर था? मैं थोड़ा उत्सुक हुआ जानने के लिए।

उन्होंने कहा—"क्या आप होश में रहती हैं?"

"मैंने कहा—'बिलकुल होश में रहती हूं। बेहोश जिंदगी में कभी हुई ही नहीं।' मैंने जोश में कह तो दिया और ऐसा कहकर मैंने अपनी पहली वाली बैठी हुई मुद्रा बदल दी थी।"

इस पर चि. रजनीश ने कहा—"देखिए, आप प्रश्न पूछने के पहले इस तरह पैर किए बैठी थीं और प्रश्न का उत्तर देते समय आपने हाथ-पांव, और मुख की मुद्रा जो बदली वह क्या योजना पूर्वक होश में बदली या अपने आप वह बदल गई?"

"होश में किया या अपने आप हो गया। यह वाक्य मेरे हृदय में अनेक प्रतिध्वनियां करते हुए बहुत गहराई तक उतरता चला गया। सिर्फ वह वाक्य कुछ देर तक गूंजता रहा....गूंजता रहा....और फिर शब्द भी खो गए....सिर्फ ध्वनि मात्र होता रही....और फिर मुझे ऐसा भास होता रहा मानो वह ध्वनि भी खोती हुई एक मौन सन्नाटा बन चुकी थी। मुझे एक क्षण में मानो यह महसूस सा हुआ जैसे कोई प्रश्न ही नहीं रह गया। मेरे सारे प्रश्न हल हो गए हों।"

"उनकी वाणी के एक-एक अक्षरों से मेरा रोम-रोम झंकृत सा हो गया था। मैंने सोचा—व्यक्ति निश्चय ही वही है। पूरा का पूरा फल लिया था मैंने। सब कुछ मिल गया था। पांडित्य तो पहले था। तत्वज्ञान भी शब्दों से ग्रहण किये बैठी थी मैं। बीज तो पड़े ही थे पर अब अंकुरित होते से जान पड़े। मैंने महसूस कर लिया।"

"हम जिस अवस्था में रहते हैं वह अवस्था होश में न होने से जो भी घटनाएं हमारे साथ घटित हो जाती हैं और हमें पता ही नहीं लग पाता। मन पर पहरा न होने से ये हमें पता नहीं चलता।" मां से मैंने पूछा—"अपने होश के संदर्भ में जितने जोश में आकर आपने भगवान को उत्तर दिया। उस क्षण आपका सारा अहंकार धराशायी हो गया होगा आपका वहां?"

"हां! वह मिथ्या अहं और जोश समाप्त हो गया था। वहां बेहोशी थी और मुझे ज्ञात हुआ कि यदि मैं सदा होश में रहूं तो मेरे सवाल हल हो सकते हैं। मुझे एक राह अत्यंत प्रकाशमयी मिल गई।"

"अपने जीवन को ऊंचाई पर लाने में कितने-कितने तरीके, कितने साधु महात्माओं ने सुझाये थे। किसी ने तपश्चर्या, किसी ने भक्ति, किसी ने जाप और किसी ने उपवास इत्यादि भिन्न बातें कहीं थीं, लेकिन किसी ने भी होश में रहने की बात नहीं बताई थी। यह योजना प्रभु की पहले से ही थी मानो।

ऐसा लगा मानो....किसी बहुत बड़े खजाने की चाबी मिल गई।"

"इसके बाद क्या हुआ मां?" मैंने उनसे पूछा—

"और भी कई बातें हुई। बात करते समय मेरे हृदय के कोने में यह तो दृढ़ निश्चय हो गया कि ये है तो मेरा ही बेटा लेकिन इसने मुझे 'मां' क्यों नहीं कहा? इसको भी मेरे मां होने की प्रतीति हुई या नहीं? मैं तो यह जान गई कि मैं इसकी मां हूं किन्तु इसे भी ये महसूस हुआ या नहीं? ये प्रश्न फिर मेरे हृदय को कचोटते रहे। मैं छिपा गई इस बात को कि मैं तेरी मां हूं।"

और अब मैंने उनसे एक दूसरा ही प्रश्न किया—"ठीक है बात समझ में आई आपकी। लेकिन दूसरे संन्यासियों की तरह आप भी क्या हिमालय भाग जायेंगे क्या?"

"इन्होंने पाया है, ये तो मुझे अनुभव हुआ लेकिन ज्ञान की समझ के बाद कहीं ये भी दूसरों की तरह भगोड़े महात्मा तो नहीं हैं, इसी कारण मैंने थोड़ी व्यंग्यभरी बात कही।"

इस पर चि. रजनीश ने उत्तर दिया—"यदि आप नहीं मिलती तो शायद चला जाता।"

इस वाक्य का स्पष्ट अर्थ मैं नहीं जान सकी। यदि आप नहीं मिलती तो चला जाता। कुछ पहेली सरीखी बात लगी। मुझसे कुछ छिपा रहे हैं ये, यह भी महसूस हुआ। इन्हें भी मुझ सरीखी कोई भावनात्मक प्रतीति हुई होगी क्या? यह भी मैंने सोचना चाहा। फिर मन ने खुद को ही सांत्वना दी कि जब ये खुद खुलकर नहीं बोलना चाहते, तो मैं ही क्यों बोलूं? अभी चुप ही रहूंगी मैं तो।" "मैंने बात को दूसरा मोड़ दिया.......आप सबके साथ भी नहीं बैठे, भोजन में भी साथ नहीं थे, सबसे दूर-दूर ही बने रहे, आखिर ऐसा क्यों?" उन्होंने कहा—"मुझे ये सब बातें कचरा सी, व्यर्थ की लगती हैं और वहां बैठे बेकार बतियाने वाले भी कचरा ही लगते हैं।"

मुझे मन में चोट भी पहुंची कि ये अजीब आदमी हैं सबको कचरा-अकरा बना दिया। मैंने कहा ठीक है। बात को थोड़ा और आगे बढ़ाने के उद्देश्य से अगला प्रश्न ऐसे ही कर दिया—"आपकी उम्र क्या है?" तो इस पर कहने लगे—"आपको उम्र से क्या करना है।"

इसके बाद मैंने बिना लाग लपेट के उनसे चांदा चलने का आग्रह कर दिया। तो कहने लगे—"अब तो आना ही पड़ेगा।"

मैंने कहा–"अभी चलिए मेरे साथ।"

तो प्रत्युत्तर में बोले–"नहीं, अभी छुट्टियां नहीं हैं।"

इतनी बातों के हो चुकने पर मैं वहां से उठने का उपक्रम कर रही थी....कि उन्होंने कहा–"कविता सुनाइये।"

"मैं बड़ी चौंकी। कविता का नाम सुनकर मेरा चौंकना बड़ा स्वाभाविक था। क्योंकि वहां आए लोगों ने मुझे पहले ही बता दिया था कि रजनीश कविताओं की 'क्रिटिसाइज' रात को काफी कर चुके थे। इसलिए मुझसे कविता सुननें की बात से मुझे आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। मैंने उनसे कहा–आप मुझसे कविता सुनना चाहते हैं, लेकिन मैंने तो सुना है कि आप कविता को पसंद ही नहीं करते। फिर आप मेरी कविता क्यों सुनना चाहते हैं?"

इस पर कहने लगे–"उन लोगों की कविता का 'क्रिटिसाइज' किया था। आपकी कविता मैं सुनना चाहूंगा।"

"इस पर मैंने उनसे कहा कि ठीक है, शाम को कवि गोष्ठी में पढूंगी आप अवश्य आइएगा।"

"और फिर रात को, लगभग पौन घंटा रजनीश का भाषण हुआ। बड़ा ही सुन्दर भाषण लगा। उनके विचार सुनकर मुझे उसी क्षण ऐसा लगा कि 'अरे' यही सब कुछ तो मैं भी सोचती रही हूं अपने मन में।"

"इनके भाषण के बाद बजाजवाड़ी के ही एक हॉल में काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया था। अधिकांशतः स्थानिय कवियों को ही आमंत्रित किया गया था। गोष्ठी प्रारंभ हम करने ही वाले थे कि रजनीश भी हॉल में आकर बैठ गए। कवि गोष्ठी का विधिवत प्रारंभ संचालक करने ही वाले थे कि आते ही मुझसे कविताएं सुनाने का आग्रह रजनीश करने लगे। उस क्षण सामाजिक नियमों का मुझे भी थोड़ा विचार आया। मन को अच्छा नहीं लगा। क्योंकि काव्य गोष्ठियों के भी अपने कुछ नियम होते हैं, कुछ मर्यादाएं होती हैं। संचालक के आदेश पर ही प्रत्येक कवि क्रमानुसार कविता करता है। लेकिन प्रवेश करते ही अन्य लोगों के सामने बड़ी धृष्टता से मुझसे ही कविता सुनाने की बात सुनकर बड़ा अटपटा सा लगा।

आते ही डायरेक्ट मुझे कह दिया–'आप सुनाइये' इस अवस्था को देखते ही मजबूरन अन्य बैठे हुए लोगों ने मुझसे फिर आग्रह कर दिया। 'सुनाइये ना'। इस परिस्थिति में मैंने एक कविता प्रेम संबंधी उन्हें सुना दी। जब पहली समाप्त हुई तो उन्होंने दूसरी सुनाने का तुरन्त आग्रह कर दिया।"

"मैंने सकुचाते हुए दूसरी भी पढ़कर सुना दी। तो पुनः तीसरी कविता सुनाने का आग्रह रजनीश ने कर दिया। लोगों के सामने मुझे बड़ा ही संकोच अनुभव हो रहा था। फिर भी सबसे नजरें चुराती हुई मैंने तीसरी कविता भी चुपचाप सुना दी। इस तीसरी कविता के तुरन्त बाद वे चुपचाप उस हॉल से उठकर अपने कमरे में चले गए और जाने के बाद फिर

सब को थोड़ा चैन सा मिला। सब लोग बड़े बेचैन हो गए थे, उनके इस कार्य कलाप से। रात 12 बजे तक हमारा कवि सम्मेलन चलता रहा। रात को कवि सम्मेलन की समाप्ति के बाद मैंने सोचा, सवेरे मिलेंगे फुरसत से। हम लोग सुबह उठे तो दाढ़ीवाले बाबा नहा-धोकर जबलपुर रवाना हो चुके थे। बहुत सी बातें, बहुत से भाव, और अनेकानेक विचारों से भरी-भरी मैं वर्धा से चांदा लौट कर आई....।"

"चांदा आने के बाद घरवालों से मैंने एक बात कही कि जिसे मैं ढूंढ़ रही थी वह मुझे मिला तो है, किन्तु उसने अभी तक मुझे 'मां' नहीं कहा। इसलिए मैं कुछ निश्चित नहीं कह सकती अभी। पारखजी ने कहा–'उन्हें चांदा आने का निमंत्रण दे देती तो ठीक रहता।' इस पर मैंने संक्षेप में उनसे वहां घटित सारी बातें बता दी। मैंने उनसे कहा–'देखो क्या बताऊं मुझे उसने मां नहीं कहा! ऐसी वेदना और टीस सी होती है जैसे कि मेरे सारे रोम-रोम से खून बह उठेगा। सारा रोयां-रोयां चीख-चीख कर कह रहा वह यदि 'वही' है तो फिर मुझे मां कहकर क्यों नहीं पुकारा।"

"मेरी शांता और शारदा दोनों बेटियां भी कहने लगी–'जब तुम्हें यह लगा कि यही तुम्हारा बेटा है, तो एक बार घर तो ला ही सकती थी।' इस पर मैंने कहा वो, तुम्हारी बात तो ठीक है, लेकिन उसने मां नहीं कहा! इसी की तो वेदना हो रही है अभी तक! मैं कैसे विश्वास करूं कि ये 'वही' है?"

"इतने में शारदा मेरी बेटी, मेरे हृदय के भावों का अवलोकन करते-करते अचानक कह उठी–'मां सा (साहब) आपको जो व्यक्ति मिले उनका मैं हुलिया बताती हूं। सही-सही बताना क्या सचमुच 'वे' भी ऐसे ही थे?' और उसने उनकी ऊंचाई, दाढ़ी, रंग, आंखें हूबहू चित्रण करके कह दी। मुझे भी उसकी कल्पना के इस व्यक्ति की शक्ल की समानता वर्धा में मिले उस खादी के शुभ्र वस्त्रधारी दाढ़ीवाले महात्मा से ज्यों की त्यों प्रतीत हुई। ये बातें, सुनकर तो मेरी आत्मा ही मानों मेरे शरीर से दूर होती जान पड़ी।"

मैं चुपचाप उस महिमामयी की व्यथा, वेदना को उनके चेहरे पर बनती-बिगड़ती रेखाओं के बीच देख रहा था। उनकी आत्मकथा जारी रही–

"दूसरे दिन मुझे रजनीश फिर से स्वप्न में दिखे। अपने दोनों हाथों में मुझे हल्के से उठाकर वे धीरे-धीरे आकाश की ओर मुझे उठाते हुए ले गए। बड़ा अचिह्ना सा संकेत था। फिर भी मुझे इस अवस्था में रहता पाकर मन हल्की सी सिहरन दें गया। 'यदि पत्र भी डालूं तो किस पते पर?' मैंने सोचा, मैं तो सिर्फ नाम ही जान पाई थी–'रजनीश!' अता-पता तक पूछने की सुधि तक नहीं रह गई थी और मेरे मन ने कहा, परमात्मा हाल की अवस्था में ही भक्त के सम्मुख आता है। उसकी दिव्यता का प्रकाश आंखों को इतनी चकाचौंध से भर देता है कि उसका अलौकिक रूप वह चाहकर भी पूरा नहीं देख पाता। फिर सोचने और समझने की इंद्रियों में शक्ति भी कहां रह पाती होगी?"

मां अपनी उसी अवस्था में, लगातार उसी अतीत के द्वारों से झांकती जा रही थी। पारखजी मेरी मनःस्थिति से परिचित थे इसलिए उन्होंने मुझे सुझाव दिया—'यदि पत्र आपको लिखना ही हैं तो प्रो. रजनीश जबलपुर भी लिख कर भेज दें तो पहुंच जायेगा।' इस पर मैंने यह कह कर उस बात को टाल दी—"कि दो-चार दिनों में ही लिख दूंगी।"

तरह-तरह के विचार और भावों की आंधी में उड़ी जा रही थी कि रजनीश के पिताजी श्री बाबूलाल जी का एक पत्र आया जिसमें ये इच्छा व्यक्त की थी—"मैं रजनीश की मां के दर्शन करना चाहता हूं। वह सौभाग्यशाली मां कैसी हैं? कौन हैं? जो रजनीश की मां है, ऐसी पुण्यशाली मां के मैं कब चरण स्पर्श करूंगा?"

"वर्धा से लौटकर रजनीश ने घर गाडरवाडा जाकर सबसे मेरे सम्बन्ध में कह दिया था कि उन्हें उनकी पूर्वजन्म की मां मिली थी और देखना अब उनका पत्र मुझे बुलाने के लिए आयेगा। यही कारण था कि अचानक गाडरवाडा से श्री बाबूलालजी का वह पत्र मुझे मिला।" इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया हुई मां से मैंने पूछा। "इस पत्र के आते ही मुझे तो मानों सब कुछ मिल गया था। समय जैसे कुछ देर के लिए ठहर गया था। मेरे आसपास की आवाजों को मैं भूल चुकी थी मानों कोई मुझे मंत्रों से, अभिमंत्रित सा कर गया।" मैंने मां की उस अवस्था से उन्हें पुनः वर्तमान में लाना चाहा—"मां साहब! चांदा में सर्वप्रथम उनका आगमन कब हुआ था।" वैसे मां को वह घटना, वह दिन, तारीख अविस्मरणीय तो थी ही इसलिए जैसे ही मैंने उनसे प्रश्न किया तुरन्त ही उनका उत्तर मौजूद था—"3 दिसम्बर 1960 को।"

"आने के पहले आपको पत्र द्वारा सूचना तो दी ही होगी उन्होंने।" "चांदा आगमन के पूर्व दो पत्र आए थे।" इस पर मैंने उन अदृश्य उंगलियों से लिखे गए उन भोजपत्रों को दिखाने का आग्रह किया। मां ने, अलमारी से लाकर पत्रों का पुलिंदा मेरे सामने ला दिया। मैंने, जाने कितनी बार उन पत्रों के अक्षरों का स्पर्श किया होगा। मेरी आंखों में काली स्याही से लिखी गई वह लिखावट गहराई तक अंकित हो चुकी हैं। 'क्रांतिबीज' नाम से भगवान रजनीश के वे पत्र बहुत पहले प्रकाशित हो चुके हैं। मैंने मां के पास से लेकर कुछ पत्रों को पलटना शुरू किया—

जबलपुर

प्रिय मां,

पद स्पर्श आपका आशीष पत्र मिला। मैं कितना आनंदित हूं कैसे कहूं? मां जैसी अमूल्य वस्तु निर्मूल्य मिल जाए और वह भी मुझ जैसे अपात्र को तो इसे प्रभु की अनुकंपा के अतिरिक्त और क्या कहूं? उस अचिन्त्य और अज्ञेय के स्नेह प्रसाद की अनुभूति जैसे-जैसे मुझ पर प्रगट होती जा रही है, वैसे-वैसे मेरा जीवन, आनंद, शांति और कृतज्ञता के अमृत बोध से भरता जाता है। आपको पाने में भी उसका करूणामय हाथ ही पीछे है। यह मैं स्पष्ट देख पा रहा हूं।

....आपको देखा उसी क्षण जो आपने पत्र में लिखा है वह मुझे दिख आया था। पत्र ने इसलिए अचंभित नहीं किया, बल्कि लगा कि मैं तो जैसे उसकी बाट ही देख रहा था! आपकी आंखों में मातृत्व का यह स्नेह मुझे अनदिखा नहीं रहा था।

....मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूं, किसी छुट्टी में आने का प्रयास करूंगा। अब तो आना ही पड़ेगा। जिस स्नेह में बांध लिया है उसका आमंत्रण तो कभी अस्वीकृत नहीं होता है।

पत्र दें और मेरे योग्य सेवा लिखें। मेरे लिए प्रभु से सदा प्रार्थना करती रहें। सबको मेरा विनम्र प्रणाम बच्चों को मेरा बहुत-बहुत स्नेह!

रजनीश के प्रणाम!

22 नव. 1960

मां अक्सर भगवान को कविता या गीत के रूप में ही पत्र लिखती रहती थी। भगवान शब्दों की गहराई में डूबे हुए अर्थो को ग्रहण कर अपने भक्त को अपने पूर्ण प्रेम से अवगत कराने में कभी नहीं कृपणता का बोध करने देते थे।

जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद स्पर्श आपका पत्र मिला। स्नेह में भीगकर शब्द कैसे जीवित हो जाते हैं। यह आपके प्रेम से भरे हृदय से निकले शब्दों को देखकर अनुभव होता है। शब्द अपने में तो मृत हैं, प्रीति उनमें प्राण डाल देती है। इस तरह प्रीतिसिक्त होकर वे अभिमंत्रित हो जाते हैं। काव्य का जन्म ऐसी ही अनुभूति से होता है। मेरे लिए आशीर्वाद रख कुछ गीत पंक्तियां आपने लिखी हैं। इन पंक्तियों ने मुझे छू लिया है। पढ़ा समाधिस्थ हो गया।........देर तक सब कुछ मिटा रहा......मैं भी नहीं था। कुछ भी नहीं था।....पर न होना हीं जीवन को उपलब्ध करना है। होना दुःख है। होना सीम। समग्र धर्म....समग्र कला....समग्र दर्शन, इस शून्यता को पाने के लिए ही है। शून्यता शून्य नहीं है, वही पूर्णता है। न कुछ, सब कुछ है।

रजनीश के प्रणाम

और फिर तीसरे पत्र पर पुनः नजरें अटक गई उसमें चांदा के प्रथम आगमन की सूचना दी गई उनके द्वारा....

जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद स्पर्श! भाव-भीना पत्र मिला। हृदय की बात हृदय तक पहुंच गई। हृदय तक केवल वही बात पहुंचती भी है जो कि हृदय की गहराई से आती है। मेरे स्नेह में जो गीत लिखा है वह बहुत प्रिय लगा....आपने ओंठों की पूरी मिठास आपने उसमें डाल दी है।

इस पत्र में, मैं अधिक कुछ लिखने को नहीं हूं। क्योंकि मैं खुद ही आ रहा हूं। दो दिन और भी जल्दी। पहले मैं ५ दिसम्बर को चांदा पहुंचने को था....यहां से चलता ३ दिसम्बर की संध्या को ही पर ७ दिसम्बर को वर्धा कॉलेज में एक व्याख्यान के लिए रूकता। वह कार्यक्रम फिलहाल स्थगित कर दिया है। इसलिए मैं ३ दिसम्बर की संध्या ग्रेंट-ट्रंक एक्सप्रेस से चांदा पहुंच रहा हूं। यह गाड़ी वहां ७-२३ संध्या पहुंचती है। मैं यहां सुबह बस से नागपुर के लिए निकलूंगा और वहां ४ बजे जी.टी. पकड़ने की है।

प्रिय शारदा का पत्र भी मिला गीत भी। उत्तर में गीत तो मैं जानता नहीं, प्रीत ही जानता हूं सो आकर दे दूंगा।

शेष शुभ! सबको मेरे विनम्र प्रणाम!

२९ नव. १९६०

इन पत्रों को पढ़ते ही मेरा पत्रकार अपना आपा छोड़ने को ही था कि मैं थोड़ा सजग हो गया। अत्यंत बारीक-बारीक मोती से अक्षरों से आंखें हट ही नहीं पा रही थी। मैंने उस भावधारा से अपने को थोड़ी देर के लिए बाहर खींचकर प्रश्न पूछ डाला....''पत्रों में अपने आगमन की सूचना भगवान ने आपको दी थी। जब आपके पास पहली बार वे आए तब आपको क्या अनुभूति हुई।''

कुछ सोचते हुए मां कह पा रही थी। ऐसा लग रहा था किसी तंद्रा में वे बातें कर पा रही हो। ''हां...हां! मैं स्टेशन नहीं गई थी उन्हें लेने। मैंने पारख साहब से कह दिया था कि मैं नहीं आऊंगी स्टेशन। तब वे गए थे मैं घर पर ही रह गई थी। जाने क्या सोचकर।''

मुझे याद आया....'भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान' निश्चय ही मां के हृदय में भगवान के लिए भी वही भाव दृढ़ता से गहराई में कहीं अदृश्य सिर उठा-उठा कर अपनी भावना की आरती संजोए रखने के लिए उन्हें उत्तेजित कर रहा हो।

''मैं घर पर ही बैठी पूजा की थाली में एक बिना जला दीपक संजोए उनकी प्रतीक्षा करती रही। हमारे सब प्रतीक ही रहे थे सब कुछ। संकेत मात्र ही अधिक होते थे। सांकेतिक भाषा ही हमारा माध्यम रही। वह दीपक भी सांकेतिक था। रजनीश के आगमन पर स्वागत का मेरा अपना तरीका था।

जिस दिन रजनीश आने वाले थे पहली बार। मैंनं सुंदर सा राजस्थानी जरी का घाघरा ओढ़ना पहन रखा था। गहने भी मैंने थोड़े बहुत पहन रखे थे। थाल में एक सात बाती वाला एक दीपक रख दिया था और पास ही रख दी थी एक माचिस। जब स्टेशन से पारखजी के साथ वे आए मैंने उनसे वाणी में कुछ नहीं कहा, और चुपचाप सात बाती सजा दीपक उनके सामने कर दिया और रजनीश ने द्वार पर ही खड़े होकर माचिस जलाकर दीपक की सारी बाती जला कर दीप प्रज्वलित कर दिया।''

मेरे मस्तिष्क में परम्परा से चली आ रही रीति के अनुसार से पुत्र की अगुआनी की कल्पना थी। मां आरती उतारकर भाल पर कुंकुम का तिलक लगा कर अपने पुत्र का स्वागत करेंगी यही धारणा थी। किन्तु यहां तो सब कुछ सांकेतिक था। रहस्यमयता के आवरण में बंधी इन बातों ने मुझे यह प्रतीति सा करा दी मानों दीपक की सारी बाती जलाकर भगवान रजनीश ने मां के सातों चक्रों को जागृत कर ज्ञान के प्रकाश से उनके जीवन को आलोकित कर दिया हो।

''दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट
पूरा किया बिसाहुणा, बहुरि न आवों हट्ट''

गुरू अचानक कभी मिल जाय, तो वह हमारे जीवन को ऐसे गहरे आलोक से भर देता है कि हमें पुनः-पुनः अंधियारों के बाजारों में भटकने के लिए नहीं आना पड़ता।

''यह बुझा हुआ मेरे मन का दीपक था जो उन्होंने जला दिया। मेरे पत्रों में भी सांकेतिक भाषा ही अधिक होती थी विकल कभी कुछ गीत और कविता में लिखकर भेज दिया, तो कभी चित्रों में कुछ अप्रकट सा प्रकट करने की कोशिश कर दी। और तो और, कई बार तो मात्र कोरे कागज ही भेज देती थी। यदि कुछ समाचार व्यावहारिक जीवन के देने होते तब ही मुझे उन्हें कुछ लिखना होता था वरना सब कुछ संकेतों, चित्रों और कोरे कागजों में ही सब कुछ होता था।''

इस पर मैंने पूछा—''और भगवान रजनीश के सारे पत्र तो शब्दों में ही हुआ करते थे ना?'' ''हां शब्द माध्यम अवश्य होते थे लेकिन वे भी अर्थ तो सांकेतिक ही देते थे। क्योंकि वे कहा करते थे कि 'मैं कविता करना तो जानता नहीं।' मुझे भगवान की कही इस बात पर जोर की हंसी आ गई। इस पर मां ने आश्चर्य से मुझे देखा तो मैंने कहा—''मां! बड़ा नटवर नागर है, तुम्हारा पुत्र! पत्र की भाषा शैली पढ़ो तो ऐसा लगता है मानों कविता का आनंद ले रहे हों। उसमें से एक 'अनहद' नाद सुनाई पड़ता रहता है। बोलते हैं तो कविता के रस के झरनों की पिचकारियों से नहलाते रहते हैं। अब भला कोई यदि यह कहे कि उसे कविता करना नहीं आता तो ये कितनी मिथ्या बात होगी? बोलो होगी ना?''

मां मेरी बात के मर्म को समझ गई थी वे भी मुस्करा दी और मेरे सामने 'ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लिपटायो' वाला सूर का प्रसिद्ध पद स्मरण हो आया। इस कविता नहीं जानने के पीछे शायद ऐसा ही कुछ भाव रहा होगा।

''मेरे पत्रों के चित्रों में कभी सिर्फ दो हाथों से माली पौधों को पानी सींच रहा होता था कभी धरती में बीज पड़े हैं और फिर अंकुरित हो रहे हैं इस तरह सारी चीजों में एक प्रतीकात्मकता होती थी। कविताएं भी प्रतीकात्मक होती थी।

इस संदर्भ में भगवान द्वारा लिखे एक पत्र में इन्हीं चित्रों की गहराई का वर्णन चित्रित हैं....

१८.७.६१

प्यारी मां

प्रणाम!

रेखा चित्र मिला। शब्दों से जो न कह पाती, वह रेखाओं से कह दिया है। शब्द चूक भी जाएं, चित्र के अर्थ की गहराई तो चुकती नहीं है। वह प्रकृति की भाषा है। प्रभु तो निरंतर चित्रों में ही बोलता है। ये सुबह, शाम, सूरज, चांद, तारे सब आखिर क्या हैं? उसकी मौन वाणी इनसे ही प्रगट होती है।

रेखाओं में देखते-देखते तुम्हारे हाथों को देख लिया है और फिर तो तुम पूरी ही प्रगट हो आई हो। कोरा कागज नहीं भेजा जा सका न....इससे खुद ही उसमें आना पड़ा है।

सुबह घर की बगिया में था तब तुम्हारा स्मरण आया था। बाग अब बहुत सुंदर हो उठा है, उसके फूल तुम्हारी बाट देखते हैं सब सौंदर्य प्रतीक्षा करता है, कोई देखे। फूल तो मुझे हमेशा प्रतीक्षातुर मालूम होते हैं। कल माली भी पूछ रहा था, उसका चित्र लिया था इससे उसे स्मरण है। मैं आनंद में हूं।

सबको मेरा विनम्र प्रणाम!

रजनीश के प्रणाम

मैंने फिर चांदा के प्रथम आगमन की स्मृतियों को एकत्र करने के उद्देश्य से ३ दिसम्बर की घड़ी में मां को पुनः लौटाना चाहा।

''हां मां ३ दिसम्बर १९६० की संध्या द्वार पर आकर आपका बिनजला दीपक जलाकर, सातों बाती उन्होंने प्रज्वलित कर दी थी......?'' ''हां, ३ दिसम्बर को उस दिन पूर्णिमा की तिथि थी और अकेले ही आए थे वे।''

पूर्णिमा की तिथि का संयोग बड़ा ही अर्थ पूर्ण लगा मुझे। रजनी का ईश (चंद्रमा) अपनी संपूर्ण कलाओं से पूनम को ही पूर्ण दर्शनीय होता है। कुछ देर सन्नाटा सा खिंच गया था उस कमरे में। फिर बातों का सिलसिला आगे किया मैंने....।

''कितने दिनों तक चांदा रहे आपके पास और क्या दिनचर्या रहती थी तब आपके सानिध्य में?''

''पहले तो संध्या के समय पूर्णिमा का चांद बनकर आए थे। देहरी पर दीप जला कर घर में प्रवेश किया था उन्होंने। फिर दूसरे 'आनंद' नाम के कमरे में विश्राम के लिए उनका बिस्तर लगवा दिया था।''

''यह 'आनंद'' नाम कमरे का पहले से ही है?''

''हां, हमारे इस कमरे का नाम 'आनंद' तो पहले से ही है।'' ''इसलिए आप 'आनंदमयी' है मां!'' इस बात पर हम दोनों खिलखिला कर हंस पड़े।

''पास ही का यह कमरा 'सारंग' नाम से जाना जाता रहा है और उस तरफ जहां

मेरी बच्चियों की 'डिलेवरी' होती थी उसका नाम है 'नवदीप'। अभी उस सामने वाले एक हाल का नाम 'साधक' रखी हूं। और रजनीश की शैया उस समय मैंने 'रत्नागर' में लगवाई थी।''

इस तरह मां अपने प्रत्येक कमरों के नामों से मुझे परिचित कराने लगी। इतने साहित्यिक नामों के बारे में मेरी जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

''आपके ही द्वारा इन सारे कमरों के नाम रखे गए थे क्या?'' ''हां, साहित्य में काफी रूचि रही है मेरी इसलिए इस तरह के नामकरण मैंने कर डाले थे।'' ''हां....जैसे अचानक उन्हें अत्यंत महत्वपूर्ण स्मृति हो आई हो....कहने लगी....

''चि. रजनीश रात्रि में विश्राम के लिए 'रत्नागर' में सोये हुए थे। रात्रि के लगभग साढ़े तीन बजे होंगे मैं उनके कमरे में आकर उनके सिरहाने खड़ी हो गई और उनके सिर पर हाथ से हल्के से स्पर्श कर दिया।''

रजनीश ने आंखें मूंदे ही कहा—''कितनी देर कर दी मां....''

''मेरा रोम-रोम मानों वीणा के लाखों तारों से रूपांतरित हो गए। वात्सल्य की अपूर्व सरिता में मानों डूब सी गई। वे जैसे प्रतीक्षा ही कर रहे थे। अपने सिर पर रखे हुए हाथों पर उन्होंने अपने दोनों हाथ रख दिए। वे सोकर जगे ही थे उन क्षणों में। वे इतने अलौकिक आनंद के क्षण थे हमारी क्या-क्या बातें हुई, कुछ भी स्मरण नहीं हो रहा है अब।

और मुझे भगवान के सुने हुए शब्द याद हो आए....''

''स्त्री अपने परम सौंदर्य को उपलब्ध होती है मां बन कर। विरह की बड़ी पीड़ा है। उसी विरह पीड़ा से गुजरकर, निखरकर आग से छनकर व्यक्ति कुंदन बनता है। स्वर्ण बनता है। फिर मिलन का महासुख है।''

मां के चेहरे पर आई आनंद की आभा अनूठी थी। जिस शांति, प्रेम और लगन से भगवान रजनीश की बातें कर रही थी। उस समय मुझे मां दुबारा 'किसी' और रजनीश को आंखों से स्पर्श कर दुलार रही थी।

''परन्तु हां! कुछ ख्याल सा आता है....मैंने उनसे कहा था....

''मैं आपको कब से ढूंढ रही थी।'' इस पर उन्होंने कहा—''आप अकेली ही ऐसा क्यों समझती हैं कि सिर्फ आप ही मुझे ढूंढ़ रही थीं, मैं भी तो आपको ढूंढ़ रहा था।''

मैंने सोचा—प्रेम एक बड़ी आंतरिक पहचान है, बिना जाने, बिना पूर्व परिचय के और हृदय पहचान लेता है। रहस्यपूर्ण होती है ये बात। अतर्क्य भी है, गणित और तर्कों से समझायी नहीं जा सकती। बेबूझ होना अस्तित्व का स्वभाव है।

मैंने कहा—''मां! आप अकेले ही नहीं ढूंढ रही थी उनको, वे भी आपको ढूंढ रहे थे?''

''उन्होंने ऐसा कहा विकल! मैं नहीं जानती, क्यों कहा? अब मुझे खुश करने के लिए कहा, कि दरअसल में कहा उन्होंने मैं क्या जानूं?'' अत्यंत गद्‌गद्‌ भाव से मां ने ये शब्द कहे। मानों भीतर ही भीतर उस 'परम-स्वाद' को चख रही हों वे।

"हां! अब और स्पष्ट ध्यान हो रहा है मुझे, साथ में उन्होंने ये भी कहा–"विवेकानंद अकेले ही रामकृष्ण को नहीं ढूंढ़ रहे थे। रामकृष्ण भी विवेकानंद को ढूंढ़ रहे थे। अगर विवेकानंद नहीं मिलते तो शायद रामकृष्ण अधूरे ही रह जाते। महावीर को गौतम नहीं मिलते तो वे बातें नहीं निकल पाती, वे प्रश्न-प्रश्न ही होकर रह जाते। कोई उत्तर नहीं निकल पाते। प्रश्न पूछने वाला ही उतना ही कीमती है। जितना कि उत्तर देने वाला कीमती है।"

"जो साधक होता है वह केवल साधना करता है और साधना के पश्चात् वह मोक्ष प्राप्त करता है। किन्तु उसके अन्तर से साधना की बारीकियां और उसके अनुभवों को निकालने का जो कार्य है उसके सहयोगी सच्चे शिष्य ही करते रहते हैं।"

एक और बड़ी अच्छी बात भी कही थी उन्होंने–"आप ये मत सोचना कि प्रतीक्षा केवल आपको ही थी मेरे यहां आने की। मैं भी तो प्रतीक्षा कर रहा था कि आप बुलायें और मैं यहां आ जाऊं। आपने तीन दिन बाद बुलाया था मैं तीन दिन पहले ही आ गया मां।"

जैसे एक बिछुड़े हुए पुत्र का मां से मिलन होता है, वैसा ही पुनर्मिलन था वह। सारे रोम-सोम से वात्सल्य की पिचकारियां मुझे नहला रही थी। मैं भीग उठी थी उन गुलाबी रंगों में। मेरी गोद में सिर रख वे सो गए थे तब कहने लगे–"ये गोद मैं कब से ढूंढ़ रहा था।"

मां, हवा से भी हल्की और पानी से भी पारदर्शी दिख रही थी उन क्षणों में। उनके हृदय में उठते-गिरते भावनाओं के इन्द्रधनुषों के रंगों में मैं भी नहा रहा था। भगवान ने मां के पारदर्शी व्यक्तित्व की झांकी बड़ी सुंदर खींची हैं।

१८ जनवरी १९६१

प्रिय मां,

वर्धा में सद्यःस्नाता आप द्वार पर आ खड़ी हुई हैं। वह चित्र भूलता ही नहीं। बहुत सजीव होकर मन में बैठ गया है। बार-बार लौट आता है। तीन दिन साथ था। पर इस चित्र का जोड़ नहीं है। बहुत सरल बहुत पवित्र, बहुत पारदर्शी। उसमें आप मुझे पूरी-पूरी दिख आई थीं।

आज फिर वैसे ही द्वार पर खड़ी हुई हैं। मधुर मुस्कुराहट फैलती जाती है और मुझे घेर लेती है।

फिर सोचता हूं।....पत्र न सही, आप तो हैं।

मैं प्रसन्न हूं, शांत और स्वस्थ। प्रभु की अनंत अनुकम्पा है और मेरी कृतज्ञता का भी पार नहीं है। कृतज्ञता का यह बोध ही जीवन के कांटों भरे रास्तों को फूलों से भर देता है। मेरा रास्ता फूलों और गीतों से भर गया है।

आशीर्वाद की प्रतीक्षा में
आपका ही रजनीश

मां के आनंद में सहभागी होते हुए मैंने प्रसंग आगे बढ़ाया–"ये तीन दिसम्बर की बात थी क्यों मां?"

"हां! ये तीन दिसम्बर १९६० की बात थी।" "ये तीन का आंकड़ा बड़ा फंस रहा है मां! वर्धा की बजाजवाड़ी में तीसरी सीढ़ी चढ़ते ही उन्हें सामने देखना, फिर तीसरे कमरे में उनका चिंतन की लीन अवस्था में मिलना, ३ दिसम्बर को चांदा आना और फिर तीन दिन रहना....।" इस बात पर फिर से हम दोनों के उन्मुक्त हास्य से वह 'सारंग' रंगीन हो गया।

"हां, रे! फिर शारदा की कविता भी सुनी। अपनी बहनों से बड़े प्रेमपूर्ण ढंग से मिले। बड़ा पारिवारिक वातावरण था वह। हमें ऐसा महसूस ही नहीं हो रहा था कि किसी सिद्ध पुरूष या भगवान से हम मिल रहे हों।

अपने परिवार के लोगों से कोई परिवार का ही बिछुड़ा व्यक्ति मिल रहा हो ऐसा ही प्रतीत हो रहा था तब।"

"ये तो ठीक है, कि परिवार के सदस्यों से उनके परिवार का ही कोई बिछुड़ा व्यक्ति मिल गया प्रतीत हो रहा था। परन्तु आपकी क्या स्थिति थी? आपको कोई विशेष अनुभूति हो रही थी क्या उस क्षण में?" मैंने पुनः एक प्रश्न कर उनके अंतर की दशा को जानना चाहा।

"मुझे खुशी हुई और कुछ नहीं। केवल आनंद के सागर में डूबती चली गई थी तब मैं।" आनंद की एक दशा में शब्द अपना अर्थ खो देते हैं। मात्र रह जाती है अनुभूति। वही सत्य है।

"विनोदी स्वभाव बहुत रहा है रजनीश का। इसलिए बहनों से खूब हास-परिहास करते थे। किन्तु मुझे देखकर सिर्फ मुस्करा भर देते थे। मुझे कुछ पूछना भी होता तो सबके सामने उनसे मैं प्रश्न नहीं करती थी। सबके सामने उनसे अधिक नहीं बोलती थी। ज्यादातर मेरी बातों में प्रश्नोत्तर की भाषा अधिक होती थी। इसलिए सबके सामने मैं प्रश्न ही नहीं पूछती थी उनसे मेरे प्रश्न बड़े विचित्र से होते थे और उन प्रश्नों की गहराई नहीं समझने वाले व्यक्ति मेरी बातों के उटपटांग अर्थ भी निकाल सकते थे। इसलिए सबके सामने उन्हें बस सुनती ही रहती थी।

मुझे जो भी प्रश्न करना होता था मैं अकेले में ही करती थी। मेरे प्रश्नों से सुननेवालों को कुछ गलतफहमी न हो इसलिए ११ बजे रात्रि के बाद ही मैं उनसे बातें करती थीं। दिन में अन्य लोग प्रश्न करते थे और वे उत्तर दिया करते थे।"

"तो मां, ये तीन दिन पलक झपकते ही बीत गए होंगे?" "हां ये तो हवा के पंखों पर से फुर्र से उड़ गए थे। परन्तु यह सिलसिला लगातार १९६० से १९६७ तक लगातार चलता रहा। हर तीन माह में एक चक्कर लगता था उनका घर में। कभी-कभी पांच-पांच दिन तक ठहरते थे। इस घर के चप्पे-चप्पे पर रजनीश की सुगन्ध महक रही है विकल!"

"भगवान सदा अकेले ही आते रहे क्या चांदा आपसे मिलने?" "हां अक्सर अकेले ही आते रहे थे वे। एक दो बार क्रांति और अरविन्द भी साथ आए थे। हम दोनों पति-पत्नी के जीवन से परिचिय कराने ही उन्हें यहां वे लाए थे। हम दोनों पति-पत्नी के जीवन की प्रेममयी बातें, हास-परिहास, मुक्त स्वच्छंद जीवन की बातों से उन्हें परिचित कराने के उद्देश्य से ही वे क्रांति और अरविन्द को लाये थे।"

"मां, भगवान जब भी आपसे मिलने के लिए आते थे तब पत्र आने के पहले अवश्य देते होंगे।"

"अब तुम्हें क्या बताऊं विकल! मेरा पत्र उन तक पहुंचने में देर भले ही कर दे, परन्तु उनके द्वारा मुझे पत्र लिखने का सिलसिला हर तीसरे चौथे रोज होता ही रहता था।"

भगवान ने प्रातः, दोपहर, संध्या, रात्रि, अर्धरात्रि, स्टेशन, विश्रामालय, ट्रेन, यात्रा से, अनेक स्थानों से मां आनंदमयी को पत्र लिखे हैं। मां के पत्रों की प्रतीक्षा में वे तो आंखें ही बिछाये रहते थे।

प्रिय मां,

सोम....मंगल....बुध....और अब तो बुध भी जा चुका। बाट है और पत्र का पता नहीं है। किस काम में लगी हैं? क्या पत्र की प्रतीक्षा का आनंद देने का आपका भी मन हुआ है। पर नहीं। जानता हूं यह आप न कर सकेंगी। जरूर कोई उलझन है इससे चिंतित हूं। एकांत रात्रि! आपके अनेक चित्र देखता हूं।

रजनीश के प्रणाम

"एकांत पाते ही आपकी उनसे किस-किस प्रकार की बातें होती थी?"

"सभी तरह के प्रश्न मैं उनसे करती रहती थी और वे भी उतनी ही गंभीरता से उत्तर दिया करते थे। अब जैसे....मैंने कभी उनसे कहा....ये कोई दार्शनिक है ना पश्चिम का.... उसने मां-बेटे के प्रेम को भी 'सेक्सुअल' सिद्ध करके बताया। क्या नाम है उसका?

"फ्रायड?" मैंने कहा।

"हां....हां, वही तो मैंने रजनीश से एक बात कही–कि ये ठीक है, कि पश्चिम के दार्शनिक ने एक बात कह दी और वह हमने मान ली। किन्तु एक बात मैं भी कहना चाहती हूं....पति-पत्नी का मिलन भी वात्सल्य के कारण से है....जिससे बच्चे ने दूध पान कर अपना जीवन पुष्ट किया है, उस वस्तु के प्रति उसका आकर्षण नहीं होगा तो क्या होगा? उस आकर्षण को तुम भले ही सेक्सुअल कहो परन्तु है तो प्रेम भाव ही वह भी। जहां से उसने जन्म लिया है उस स्थान के प्रति उसका आकर्षण होना स्वाभाविक है और उसको तुम अपनी भाषा में भले ही सेक्स कहो। क्योंकि उसके आगे तुम्हारी पहुंच, अर्थात् दृष्टि ही नहीं है। इसलिए आगे देख ही नहीं सकते। उनकी, बड़ी प्रसिद्ध पुस्तक 'संभोग से समाधि की ओर' में कई मेरे ही प्रश्नों के उत्तर भी हैं और कुछ प्रश्नों का समाधान भी।"

अब सचमुच में, उस तेजस्वी प्रतिमा में मुझे रजनीश जैसे व्यक्ति की ममता को समाहित करने की शक्ति का आधार नजर आ रहा था। इतने 'बोल्ड-स्टेटमेन्ट' सचमुच रजनीश की धात्री ही दे सकने में समर्थ हो सकती है।

एक बात और स्पष्ट कही थी मैंने रजनीश से–"आज तक जो भी संत महात्मा हुए हैं वे सदा स्त्रियों से दूर ही रहे हैं। लेकिन तुम मत रहना। प्रथम स्थान स्त्रियों को ही देना।"

"आप से मिलने के पूर्व उनके व्याख्यान तो शुरू हो गये थे संभवतः?"

व्याख्यान शुरू तो हो गए थे....लेकिन उतनी गति नहीं आ पाई थी। उनकी आयु उस समय बहुत ही कम थी इसलिए उन्होंने एक 'रिक्वेस्ट' मुझसे की...."मां, मैं आपसे एक सहयोग चाहता हूं कि मैं जहां भी प्रवचन के लिए जाऊं आप मेरे साथ अवश्य रहें। क्योंकि मेरी उम्र कम है और मुझे उतना अनुभव भी नहीं है जितना आपको है।"

"इस अंतिम बात को सुनकर मुझे मन में थोड़ी हंसी भी आई। इस नटखट नागर की बातें कभी-कभी बड़ी बेबूझ हो जाती हैं।"

"किस प्रकार के अनुभव की कमी होने की बात कर रहे थे रजनीश जी?"

"यही व्यावहारिक अनुभव के संदर्भ में कि जहां भी वे व्याख्यान देने जाते हैं तो कोई कुंडली मांगता है, तो कोई जन्मपत्री, तो कोई शादी का आग्रह करता है।"

इस पर मैंने कहा–"शादी कर ही डालो तो ये झंझट ही न रहे। ये बातें अपने-आप ही समाप्त हो जायेंगी। शादी को क्या नफरत की दृष्टि से देखते हैं आप?" इस पर कहने लगे–"ऐसा नहीं है, जरूरत महसूस हुई तो कर भी डालूंगा कोई ऐसा प्रण नहीं कर रखा है। किन्तु मैं नहीं चाहता कि किसी के जीवन को नष्ट करूं। क्योंकि विवाह के बाद पत्नी की अपेक्षाएं होती है वे मैं पूरी नहीं कर पाऊंगा।

विवाहित पत्नी प्रेम को बांधने की चेष्टा करती है और मैं प्रेम को बांधना नहीं चाहता! मैं बंध नहीं सकूंगा। जब वह बांधेगी जबरदस्ती और मैं मुक्ताकाशी मुक्ति मांगूगा तब संघर्ष तो होगा ही। जो मेरे मनोनुकूल नहीं है।"

"इन सभी बातों के कारण मैं उनके साथ यात्रा पर निकल पड़ी।"

"आपने उनके साथ कहां-कहां की यात्राएं की हैं?"

"गाडरवाडा, बरेली, बुलढाणा, वर्धा (दो तीन बार) आबू व्यावर (राजस्थान), बम्बई (दो-तीन बार), महाबलेश्वर, पंचमढ़ी, अमरावती, दिग्रस, रायपुर, भिलाई, पूना, जयपुर, दुर्ग, नंदुरवार, ताडोबा" और मां, थोड़ा सोच-सोच कर ये नाम गिनाती रही थी। "अब तुम्हें क्या बताऊं बहुत से स्थानों का तो मैं नाम भी भूल गई। याद आ जायेगा तो बता दूंगी।"

"इन भी स्थानों पर क्या उनके प्रवचन के सिलसिले में जाना पड़ा था आपको?"

"अधिकांश स्थानों पर तो मैं उनके प्रवचन के संदर्भ में रही परन्तु कुछेक स्थान जैसे पंचमढ़ी, ताडोबा, गाडरवाडा इन जगहों में पारिवारिक मित्रों के साथ ही घूमने के उद्देश्य से

गए थे। जब भी उन्हें, किसी विशेष जगह प्रवचन में मुझे ले चलने का आग्रह होता वे बड़ी ही सूक्ष्मता से गाड़ी और समय को, विस्तार से लिखते थे जिससे मुझे कहीं पहुंचने में दिक्कत न हो।'' और उन पत्रों को पलटते हुए कुछेक पर मेरी दृष्टि जम गई....

प्रिय मां,

प्रणाम! मैं दिसम्बर में चांदा तो नहीं आ पा रहा हूं। श्री पारखजी से मेरी ओर से क्षमा याचना भर लेना, पर आपको मेरे साथ यात्रा पर चलना है। मैं 22 दिसम्बर की संध्या कलकत्ता-बम्बई मेल से नंदुरबार के लिए निकल रहा हूं इस गाड़ी से 23 दिसम्बर की सुबह 5 बजे भुसावल पहुंचुंगा और भुसावल से 8-30 बजे सुबह नंदुरबार के लिए सूरत पैसेन्जर से निकलना है। आप मुझे भुसावल मिलें। 22 दिस. की रात्रि किसी भी गाड़ी से भुसावल पहुंच जायें। 23 की दोपहर हम नंदुरबार पहुंचेंगे और 23, 24, 25 को दोपहर तक वहां रूकेंगे। 26 की दोपहर सूरत के लिए निकलेंगे और 5 घंटा सूरत रूककर 26 दिसम्बर की सुबह देहरादून एक्सप्रेस से बम्बई पहुंचना है।

बम्बई कार्यक्रम 26-27 और 28 है। विशेषतया ध्यान के लिए आयोजन है। श्री पारख जी भी चलें अच्छा है लेकिन मैं उन्हें पर्यूषण के समय साथ ले जाना चाहता हूं। इस समय बम्बई कार्यक्रम कैसे होंगे नहीं कहा जा सकता है। श्री शुक्लजी आजकल कहां हैं? नंदुरबार से भी रतिलाल जी गोसलिया का पत्र आया है कि यदि वे एक दिन मुझसे पूर्व नंदुरबार पहुंच जायें तो अच्छा है। स्वीकृति पत्र शीघ्र दें। 14 दिसम्बर को मैं सतना जा रहा हूं। 14 की रात्रि सतना और 15-16 दिस. छतरपुर बोलना है। 17 को लौटने को हूं।

12-12-62

रजनीश के प्रणाम!

इसी तरह, एक अन्य पत्र में भगवान ने प्रारंभ में मानव के भीतर की संभावनाओं को, विराट अस्तित्व में रूपांतरण के संदर्भ में पहले कुछ संभावनाओं की आहट देकर मां को पुनः एक यात्रा में चलने के निर्देश दिए हैं....

प्रिय मां,

सांझ से ही आंधी पानी है। हवाओं ने थपेड़ों से बड़े-बड़े वृक्षों को हिला डाला है। बिजली बंद हो गई और नगर में अंधेरा है। घर में एक दीपक जलाया गया है। उसकी लौ ऊपर की ओर उठ रही है दीया भूमि का भाग है पर लौ न मालूम किसे पाने निरंतर ऊपर की ओर भागती रहती है। लौ की भांति मनुष्य की चेतना है।

शरीर भूमि पर तृप्त है पर मनुष्य में शरीर के अतिरिक्त भी कुछ है जो निरंतर भूमि से ऊपर उठना चाहता है। यह चेतना ही, यह अग्निशिखा ही मनुष्य का प्राण है। यह निरंतर ऊपर उठने की उत्सुकता ही उसकी आत्मा है।

यह लौ है इसलिए मनुष्य है। अन्यथा सब मिट्टी है। यह लौ पूरी तरह जले तो जीवन में क्रांति घट जाती है। यह लौ पूरी तरह दिखाई देने लगे तो मिट्टी के बीच ही मिट्टी को पार कर लिया जाता है।

मनुष्य एक दीया है। मिट्टी भी है उसमें, पर ज्योति भी है। मिट्टी पर ही ध्यान रहा तो जीवन व्यर्थ हो जाता है। ज्योति पर ध्यान जाना चाहिए। ज्योति पर ध्यान जाते ही सब कुछ परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि मिट्टी में ही प्रभु के दर्शन हो जाते हैं।

रात्रि 22 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

पुनश्चः

आपका पत्र मिल गया है। जयपुर चलना है। मैं 5 अप्रैल की रात्रि जबलपुर-बीना पैसेन्जर से निकलूंगा जो कि 6 अप्रैल को सुबह 6-30 बजे बीना पहुंचती है। वहां 9-30 बजे पंजाब मेल मिलेगी जो कि शाम को आगरा पहुंचाती है। आगरा में लगी हुई एक्सप्रेस जयपुर के लिए मिलती है जो कि 7 अप्रैल की सुबह 4 बजे जयपुर पहुंचायेगी। आप 5 अप्रैल की सुबह जी.टी. से निकलें और बीना पर मेरी प्रतीक्षा करें। बीना से साथ हो जायेगा। एक ही असुविधा होगी कि आपको बीना पर 6-7 घंटे रूकना होगा।

इस तरह भगवान रजनीश भविष्य में होने वाली प्रवचन यात्राओं को अपने पत्रों में बड़ी ही सूक्ष्मता एवं विस्तार से मां को आगाह कर दिया करते थे जिसमें उन्हें साथ होने में कोई असुविधा न हो।

''और कौन-कौन साथ रहते थे तब आप लोगों के साथ?'' मैंने मां से पूछा।

''कहीं क्रांति हमारे साथ रहती थीं, कहीं शारदा (मां की बड़ी सुपुत्री) और क्रांति और हां कहीं-कहीं पारखजी भी हमारे साथ रहे हैं।''

''हां, शिविर सिर्फ दो ही 'अटेन्ड' किये थे महाबलेश्वर और आबू! जब-जब उन्होंने मुझे बुलाया तभी गई मैं।

माउंट आबू के शिविर के बाद शिविर होना बंद कर दिया था।''

''क्यों लेना बंद कर दिया शिविर?''

''क्योंकि मैंने मना कर दिया था फिर संभवतः उन्होंने स्वयं शिविर नहीं लिए।''

''आपने उनसे कब संन्यास लिया था? और ये संन्यास लेने की बात मन में कैसे आ गई?''

''आबू शिविर में पारखजी और मुझे साथ ही में उन्होंने निमंत्रित किया था। मेरे मन में एक दृढ़ निश्चय सा पहले से ही कर लिया कि इस बार मुझे पुत्र से संन्यास लेना है। उन दिनों नव-संन्यास के संदर्भ में गैरिक वस्त्रों और 108 मनकों की माला पहनने का एक अभियान सा चल रहा था। इस सबकी स्वीकृति में मुझे आत्मिक प्रेरणा सी मिली। संन्यास

लेने में मुझे कोई विशेष आकर्षण नहीं लग रहा था, फिर भी एक नवीनता की दृष्टि से मैंने गैरिक वस्त्र पहन ही डाले। सोचा जब अपना बेटा सबको दे ही रहा है तो अपना भी ले ही डालो।''

''आपके मन मे कभी ये दुविधा उत्पन्न नहीं हुई कि मां होकर आप अपने पुत्र से कैसे संन्यास लेंगी। अपने बड़े होने का भाव, क्या आपके संन्यास में दुविधा तो उत्पन्न नहीं कर रहा था?'' मैंने मां के हृदय की उस क्षण की भाव दशा जानने के उद्देश्य से प्रश्न किया।

इस पर मां ने कहा—''नहीं....नहीं! संन्यास लेने में मां बेटे का संबंध बिलकुल आड़े नहीं आया। जब मैं शिविर में गई तब पहले से मैं गैरिक वस्त्र पहनकर गई थी। इस तरह मन में कहीं भी अपने ही बेटे से संन्यास लेने के संदर्भ में कोई दिक्कत ही नहीं थी। शिविर में सम्मिलित होने के पहले ही गैरिक वस्त्रों का सुंदर-सा रंग मुझे आकर्षित कर रहा था इसलिए उसी रंग की साड़ी पहन मैं सम्मिलित हुई वहां।''

''माउंट आबू में ही भगवान ने आपके पूर्व जन्म की मां होने के संदर्भ में संभवतः घोषणा की थी?''

''हां, इसके पहले सिर्फ आपस में हमारे मित्र और परिवार तथा बहुत ही करीबी लोग ये बात जानते थे।''

''वहां आबू में ही घोषणा करने का उनका उद्देश्य क्या था?''

अब बेटा, यह उद्देश्य तो वे ही जानें। मैं तो सिर्फ इतना जानती हूं कि जब माउंट आबू मैं आई तो वे 'महाराज पैलेस' में ठहरे हुए थे। वहां जाकर उनसे मैं एकदम से लिपटी तो वे कुछ क्षणों तक भाव-विमुग्ध नेत्रों से मुझे देखते रहे....और फिर कहा—''मां आज तो आप बहुत सुंदर साड़ी पहन कर आई हैं यहां। अब आज के शिविर का उद्घाटन आपके संन्यास से ही होगा।'' इस पर मैंने कहा—''हां! मैं तो तैयार हूं ही।'' मैं जब संन्यास शिविर में वहां से पहुंची तो उन्होंने माइक पर घोषणा की....''श्रीमती मदनकुंवर पारख मेरी पूर्वजन्म की मां हैं आज इन्हीं की संन्यास दीक्षा से इस शिविर का उद्घाटन होगा।''

मां का वात्सल्य उमड़ आया और प्रेम का सागर विह्वल हो उठा। पुष्पहारों से सज्जित थाली लाई गई। माइक पर मां आनंद मधु द्वारा उद्घोष किया गया था....'आज भगवान श्री अपने पूर्वजन्म की मां को संन्यास में दीक्षित कर रहे हैं। भगवान श्री ने 'क्रांतिबीज' पुस्तक के सभी पत्र इन्हीं को लिखे हैं।'

''मंच पर बुलाया गया। व्यासपीठ से नीचे उतरकर पहले अपने हाथों से माला पहनाई और मेरे पैरों को तीन बार उन्होंने स्पर्श किया वे शिविरार्थी अपलक दृष्टि से मंच की ओर देख रहे थे। इस नये प्रकार की दीक्षा देखकर उन्हें बड़ा ही विस्मय हो रहा था।''

भारतीय और विदेशी अनेक संन्यासी हक्के-बक्के से इस अद्भुत लीला को देख रहे थे। मैं भी ठगी उस लीलाधर की लीला का एक पात्र खुद को अनुभव कर रही थी।

''आपका नामकरण 'आनंदमयी' वहीं हुआ था क्या?''

''हां! मां आनंदमयी मैं उसी दिन घोषित हुई थी। समस्त अस्तित्व करतल ध्वनि से आन्दोलित हो उठा होगा। धरती पर सारा देवलोक उतरकर मां फूलों की वर्षा कर रहा होगा। मैं सोच रहा था....कितना अद्‌भुत दृश्य निर्मित हुआ होगा।

पूर्व जन्म के संदर्भ में मैंने अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहीं, उन्होंने बताया कि भगवान श्री पूर्वजन्म में भी अविवाहित योगी ही थे। प्रकृति के सुरम्य अंचल में निवास था उनका। जीवन में अत्यंत समृद्धि थी। परन्तु गैरिक वस्त्रों से ही उनको अधिक आकर्षण था। एक पत्र को पढ़कर मुझे कुछ झलक सी मिली है। जिसमें भगवान ने योगी होने की स्वीकारोक्ति बड़े अनूठे अंदाज में की है।

प्यारी मां,

2 दिस. 1961 जबलपुर

प्रणाम! कल रात्रि भर आपका स्मरण रहा है। एक लम्बे स्वप्न में साथ रही हैं। यह एक सहयात्रा बहुत सुखद रही है। और अब याद आने पर भी उसके चित्र आंखों में तैर रहे हैं। इस स्वप्न में कुछ ताने-बाने तो पंचमढ़ी और ताडोबा के दिखते थे पर कुछ एकदम अभिनव थे। एक बहुत सुंदर पहाड़ी....घाटी में कमल से ढकी झील पर वर्षो रहना हुआ है। जो बजरा निवास बना था वह तो अब भी दिख रहा है।

स्वप्न को लिए थोड़ी देर ही तक बिस्तर पर पड़ा हूं; मुरगे जोर-जोर से बांग देने लगे हैं और बाहर आना पड़ा है। रात्रि अभी टूटी नहीं है और चांदनी वृक्षों में लिपटी सोई है।

स्वप्न के संबंध में अनजाने विचार चल ही रहा है। एक बहुत अद्‌भुत बात सदा स्वप्नों में दिखाई देती है। मैं सदा गैरिक वस्त्रों में ही दिखाई पड़ता हूं। भिक्षापात्र भी भूलता नहीं हूं। जन्म-जन्मों से जैसे वही भाग्य रहा है। इस स्वप्न में भी उस बजरे पर सारे वैभव की अवस्था थी पर मैं भिक्षु ही था। बजरा और वैभव सब आपका था; मैं तो बस अतिथि था!

कौन जाने यह जन्म कभी हुआ ही हो? जन्म तो बीत जाते हैं, स्मृतियां नहीं बीतती हैं। सब मिट जाते हैं, संस्कार रह जाते हैं। घंटाघर ने पांच बजा दिये हैं, चलूं-घूम आऊं! सबको विनम्र प्रणाम!

रजनीश के प्रणाम

इस तरह भगवान तो पिछले कई जन्मों से संन्यासी के रूप में ही अवतारित होते रहे हैं। मां के पास वात्सल्य के ऐश्वर्य भरा बजरा रहा था परन्तु वहां भी वे तो अतिथि ही थे।

''पूर्व जन्म से आपका आशय, किस पूर्व जन्म से है?'' मैंने उन्हें अधिक कुरेदना चाहा।''

''उन्होंने 700 वर्ष पहले का संदर्भ दिया है किसी प्रवचन में।''

''मैं कहता आंखन देखी'' प्रश्नोत्तर माला में इस ओर इशारा किया है भगवान ने।''

"मां बेटे के रूप में कहां थे, और कब थे ये तो मुझे नहीं मालूम। परन्तु किसी न किसी जन्म में थे जरूर ये दावे से मैं कह सकती हूं। ऐसे ही दुनियां के बहुत से साधु-संन्यासी और प्रेमी (तुम्हारे जैसे) वे कभी न कभी मेरे पिछले जन्मों में कहीं न कहीं निश्चय ही सम्पर्क में आए थे। इसलिए ये लोग मेरे हृदय के करीब बहुत ही करीब अनुभव हो जाते हैं मुझे।"

"चांदा आने के पीछे उनका क्या उद्देश्य रहता था।"

"मुझसे मिलने के सिवाय और क्या उद्देश्य रहेगा। जब मैं लिख भर दूं बस वे आ जाते थे। हर तीन-चार माह में एक चक्कर तो लगता ही था। कभी डेढ़ माह में ही आ जाते थे। बस मेरा लिखना होता कि आने को मानो प्रस्तुत ही होते थे। बस लिखने भर की देर थी। हमारे सांसों के तारों में ही संवाद होते रहते थे हमारे।

भगवान श्री की आतुरता मां से मिलने के संदर्भ में तो सदा ही रहती थी। यदि प्रत्यक्ष नहीं मिल पाते तो पत्रों द्वारा ही भगवान मिलने के लिए सदा प्रस्तुत होते रहते थे।

9 मई 1962

प्यारी मां,

रात्रि का एकांत, बीते सप्ताह की स्मृतियां ताजी सुगंध की तरह मन पर तैर रही हैं। सब बीतता है पर कुछ है जो कि बीत जाता है पर बीतता नहीं है। मैं उस अनबीते को स्पष्ट देख पा रहा हूं कि कैसे कहूं कि वह बीत गया है? सब अतीत हो जाता है पर प्रेम अतीत नहीं होता है और उसके चिह्न नहीं मिटते हैं।

यह प्रेम अतीत क्यों नहीं होता है? क्योंकि यह उस समय अनुभव किया जाता है जब समय नहीं होता है और जब मन भी नहीं होता है। समय और मन के जो बाहर है वह नित्य है।

इस नित्य में द्वैत नहीं होता है, दुई नहीं होती है और वह प्रगट होता है जो है।

मैं यह अनुभव कर कितने आनंद में हूं कि इस नित्य-अमृत अनुभूति के स्वर आप तक पहुंच रहे हैं।

❖❖❖

सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें। अभी टहल कर आया हूं, टहलते समय सबको आंगन में देखा है। तुम तो द्वार पर खड़ी होकर कितना रोक रही थी और जानती हो मां कि अभी मेरा समय नहीं हुआ है और तुम्हारे रोकने से ही टहलना छोड़कर पत्र लिखने बैठ गया हूं।

रजनीश का प्रणाम

इसी तरह—एक अन्य पत्र में

पुनश्चः

मां आज संध्या से तुम्हारा स्मरण है। अभी घूम रहा था और तुम द्वार पर मौन खड़ी होकर जो बुलाने लगी सो भीतर जाकर पत्र लिखने बैठ गया हूं। कभी-कभी यह क्या करती हो?

एक अन्य संदर्भ में....

पुनश्चः घर आया हूं तो फुरसत ही फुरसत है। जबलपुर तो घिरा रहता हूं, यहां आकर पता चला कि तुम तो चौबीस घंटे साथ हो! वहां भी साथ ही रहती हो, मैं नहीं देख पाता हूं पर यहां तो तुम ही तुम दिख रही हो सोकर उठा हूं, स्मरण आया तो पत्र लिखने बैठ गया हूं।

इस तरह मां से मिलने की आतुरता तो प्रत्येक पत्रों में प्रकट ही होती रही है।

"चांदा में आकर कभी उन्होंने प्रवचन दिये या सिर्फ आपसे मिलने ही आते रहे यहां।"

"चांदा में उनके कभी बड़े रूप में प्रवचन नहीं रखे। एक दो स्कूलों और एक सेवादल को छोड़कर वे कभी कहीं नहीं गए। आपस में बैठकर घर के करीबी मित्र और पारिवारिक व्यक्ति ही उनसे प्रश्न पूछते रहते थे और वे उनका समाधान देते थे। चांदा आने के पीछे विश्राम में होने का ही उनका एकमात्र उद्देश्य होता था।"

"आपके साहचर्य से उन्हें जो भी अनुभूति प्राप्त होती थी, उसी के लिए शायद वे चांदा अक्सर आते रहे होंगे?"

"अब मैं क्या बताऊं? कि वे किसलिए आए मेरे पास परन्तु लोगों से मिलने-जुलने के बाद रात के ग्यारह बजे के उपरान्त सिर्फ हम दोनों की ही अधिकतर चर्चा होती रहती थी। रात के तीन-तीन भी कभी बज जाते थे और मैं सो भी जाती थी, कभी-कभी तो ज्ञात ही नहीं हो पाता था। मैं उनसे बड़े अजीब-अजीब से प्रश्न पूछती रहती थी। जो तुमने कृष्ण, महावीर, बुद्ध आदि पर उनकी दर्जनों पुस्तकें देखी होंगी उनके संदर्भ में चर्चाएं मुझसे वे कई बार कर चुके हैं। कई प्रकार के दर्शनों पर विचार विमर्श होते रहते थे हमारे। एक रात हम आंगन में पास-पास ही पलंगों पर दोनों सोये हुए थे। मैं अपने पलंग पर पड़ी-पड़ी थोड़ी गहरी नींद में जा चुकी थी। इतने में ही रजनीश ने मुझसे कहा—

"मां....मां....आपको कुछ महसूस हुआ?"

"हां....मैंने कहा....कुछ-कुछ महसूस तो हुआ, थोड़ी सुस्त सी लग रही हूं मैं।"

"आपके शरीर से एक अजीब सी विद्युत सी चमकी और मुझमें विलीन हो गई। चि. रजनीश ने कहा।"

"मुझे तो कुछ नहीं मालूम परन्तु मैं थोड़ी सुस्त सी लग रही हूं।" मैंने उनसे कहा—

"भगवान श्री के जीवन में 21 मार्च 1953 में घटित होने वाली संसार की महानतम् बुद्धत्व की घटना के संदर्भ में कभी आपकी उनसे चर्चा हुई?"

"इस बारे में तो कभी चर्चा नहीं की। जो हमारी उद्दंडता थी उन्हीं की चर्चा की हमने तो। कभी साधना और उससे हुई प्राप्ति के बारे में बातें ही नहीं की मैंने। मुझे तो कभी ये जिज्ञासा ही पैदा नहीं हुई कि उन्हें क्या प्राप्त है और क्या नहीं। मुझसे तो लोगों को अधिक से अधिक उनके बांटने की चिंता रही।" मोक्ष के संदर्भ में इस तरह की बातें सुनकर उनका सहज ममतामय स्वरूप और निर्मल एवं पारदर्शी हो गया था।

"उनका सानिध्य मुझे मिलता रहे और मैं अपने जीवन की साध को शायद इसी बहाने तृप्त करती रहती थी। यह सानिध्य प्राप्ति कभी-कभी हमने पंचमढ़ी एवं ताडोबा की यात्राओं में भी की थी। पंचमढ़ी और ताडोबा के वनों की वे यात्राएं तो बड़ी अद्‌भुत आनंद भरी थी। हम यहां चांदा में भी कभी सवेरे घर में नहीं रहे। सवेरे तड़के ही कार से हम निकल पड़ते थे। कभी इरई नदी के तटों पर घूमते तो कभी झरपट नदी के संगम पर और कभी-कभी पास ही के झरनें पर भी भ्रमण को निकल पड़ते थे। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में रहने की उनकी आदत ने ही में पंचमढ़ी और ताडोबा की यात्राओं के लिए प्रेरित किया था।

8 जून 61 गाडरवाडा

पूज्य मां,

प्रणाम! मैं आशा करता हूं कि मेरे पत्र के पहुंचते ही आप निश्चय ही चांदा सकुशल पहुंच गई होंगी। पंचमढ़ी सुखद रही है और इस दस दिनों की एक भीनी सी स्मृति साथ चली आई है। प्रकृति के वैभव और सौंदर्य में कैसी ईश्वरीयता है? क्षुद्र से ऊपर उठकर जैसे अचानक ही विराट से मिलन हो जाता है। जो दूर-दूर भटकने पर नहीं मिलता है, वह निकट ही बहते किसी झरने में हवाओं में झूलते किसी लता कुंज में उपलब्ध हो जाता है।

'उसका' मंदिर कण-कण में बना हुआ है? दृष्टि भर चाहिए। फिर उसे खोजने कहीं नहीं जाना होता है। उसे पाने को किसी को कुछ करना नहीं है। केवल अपने मन के सहज द्वार भर खोलने हैं, द्वार खुलते वह ही युग-युगांतरों से प्रतीक्षित अतिथि प्रकाश की भांति क्षण में भी देर किए बिना भीतर चला आता है।

मैं आशा करता हूं कि उस अतिथि के साक्षात में देरी नहीं है। ध्यान एकमात्र मार्ग है। चलें, चलें....रुके नहीं....मिलन सुनिश्चित है। पत्र की प्रतीक्षा है।

रजनीश के प्रणाम

"प्रकृति के आंचल में घूमते-घूमते कई विनोदपूर्ण बातें करते रहते थे। बच्चे और हम बड़ा आनंद लेते थे। कभी-कभी बच्चों को भयभीत करने वाली डरावनी या फिर प्रणय की कहानी कहते थे। बच्चे भी भयभीत होकर मजा लेते थे।"

"आज का पहरावा जो भगवान का आप देख रही हैं इसमें और प्रारंभिक वस्त्रों में तो काफी अन्तर महसूस करती होंगी आप?"

"पहले के पहरावे का एक फोटो रखा है न एलबम में....सफेद खादी का कुर्ता और धोती पहना करते थे। मैंने हाथों से सूत कातकर उन्हें खादी की दो धोती का कपड़ा बुनवाकर दिया था। शांता और शारदा (दोनों पुत्री) ने भी सूत कातकर अपने भैया को कपड़ा बुनवाकर भेंट दिया था।"

"आज का ये चोगा और टोपी देखकर आप को आश्चर्य नहीं होता?"

"नहीं इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है? वो तो बड़ा नटखट नागर है, कुछ-कुछ नया करके अपने प्रेमियों को आनंद देता है।"

"सबसे पहला भगवान का कार्य क्षेत्र जो बम्बई वुडलैण्ड में बना तब आप कभी गई वहां?"

"नहीं मैं कभी नहीं गई किन्तु शारदा, शांता (बेटियां) तथा मेरे दामाद नाती-पोते जा चुके हैं।"

"और बम्बई के बाद पूना वाले आश्रम में कभी आपका जाना हुआ खुलने के उपरांत?"

"नहीं! पूना आश्रम में उस रूप में जाना नहीं हुआ। एक इशारे से यदि वे बुलाते तो हम चले जाते उन्होंने बुलाया नहीं तो हम भी नहीं गए।"

और यहां भक्त का स्वाभिमान उनके मुख पर झलक आया था।

"गाडरवाडा कितनी बार गई?"

"पांच-छः बार गई मैं गाडरवाडा वहां अधिकतर व्यावहारिक सम्बन्धों के सिलसिले में ही जाना हुआ कभी परिवार में किसी की शादी ब्याह या कोई अन्य प्रसंग होते तब मैं वहां गई।"

दोपहर 30 जन. जबलपुर

मां,

गांव चलना है, 17 फरवरी की संध्या। 18 और 19 को विवाह है। आप कम से कम दो दिन पूर्व आ जायें। ज्यादा पहले आयें तब कहना ही क्या? दद्दा कल आए हैं और आपको बहुत-बहुत आग्रह करने को कहा है। मैंने कहा, "आग्र नहीं करूंगा, तो भी उन्हें आना ही पड़ेगा। अब वे पराई नहीं हैं।" यशोधरा जी का पत्र आज मिला है संभव है कल उन्हें उत्तर दूं। कब आती हैं....किस बस पर खड़े होकर मुझे प्रतीक्षा करनी होगी....इन सबकी सूचना पूर्व ही दे दें।

बस आज इतना ही।

रजनीश के प्रणाम

"गाडरवाडा जब आप कभी गई उन दिनों किस प्रकार की बातें होती थी आपकी?"

"वहां तात्त्विक चर्चाएं होने की बात ही नहीं थी। वहां तो सिर्फ हम दोनों मां और बेटे ही होते थे केवल हम। जो बातें होती रहती थी वहां, वही सुनती रहती थी। जब सबसे अलग हटकर मैं अकेले में उनसे मिलती तो कहती थी....

"रजनीश तुम्हारी आंखें बोलते समय बड़ी सुंदर लगती हैं।" फिर हम कभी अलग भोजन नहीं किए और न ही अलग-अलग दूर के कमरों मे सोये। मैं क्रांति और रजनीश सदा एक ही कमरे में सोते थे। भोजन हमेशा हल्का-फुलका सादा ही करते थे कभी गरिष्ठ भोजन

के प्रति उनकी रूचि नहीं रही। कपड़े भी हाथ से धोते और सफाई भी स्वयं किया करते थे।''

''लेकिन मां भगवान ने तो अपने कॉलेज के प्रारंभिक जीवन के संदर्भ में कई प्रवचनों में कहा है कि होस्टल में उनका जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त ही रहा। महीनों कमरों की सफाई नहीं करते थे और कमरे को इतना गंदा देख उनके साथियों को सफाई करनी पड़ती थी।''

''वह अवस्था कॉलेज के दिनों की होगी। मुझसे मिलने के उपरांत की, मैं तो तुमसे बातें कर रही हूं। फूलों से उनका अगाध प्रेम था। बगीचे की क्यारियों का रख रखाव भी उन्हें बड़ा पसंद था। खुद ही कपड़े भी धोते थे और सारे घर की सफाई हाथों से ही करते थे। इतना सब कुछ करते हुए तो मैंने खुद अपनी आंखों से देखा है।''

''संन्यास के बाद सदा आपने गैरिक वस्त्र ही पहने थे मां?''

''हां, तुम्हारे भैय्याजी (पारखजी) के गुजरने ते मैंने वे कपड़े ही पहने थे। उनके चले जाने के बाद मैं सफेद वस्त्र पहनने लगी।''

''आजकल तो भगवान ने अपने संन्यासियों को भगवा वस्त्र और माला पहनने की मनाई कर दी है। क्या ये बात आपको मालूम हैं?''

''नहीं मुझे कुछ नहीं मालूम। मैं तो मन की आवाज से चलती हूं। इसलिए माला पहनने का मन हैं तो पड़ी हुई है गले में। उसमें क्या बनता-बिगड़ता है। जो मुझे अच्छा लगता है। वही मैं करती हूं। कभी उन्होंने भी मुझे किसी कार्य के लिए बाध्य नहीं किया। जब मेरा जैसा जी चाहा वही किया। उन्होंने कभी मुझे यह कहा ही नहीं कि ये छोड़ो और ये पकड़ो।''

''आपके परिवार में आपके अलावा और किसी ने संन्यास नहीं लिया?''

''सिर्फ मुझे छोड़कर और कोई संन्यासी नहीं है और ये जो संन्यास की बातें होती हैं बेटा वे बड़ी ही व्यक्तिगत बाते हैं। कोई किसी पर जोर जबरदस्ती नहीं कर सकता।''

''अमेरिका में 'रजनीशपुरम्' में जो घटनाएं हुई और भगवान के र्दद-गिर्द जो घटित होता रहा। उस सबकी आपके ऊपर क्या प्रतिक्रिया हुई। भगवान रजनीश जिस खतरनाक एवं मौलिक ढंग से जीते हैं और उनके जीवन में जो उपद्रव विदेश में हुए वे बातें तो आप तक अवश्य ही आई होंगी?''

''हां! मैंने भी कुछ अखबारों एवं मैगजीनों में पढ़ा था।''

''उन सबके संबंध में आप की क्या प्रतिक्रिया हुई?''

''वह सब तो होना ही था।'' मां ने बड़ी सहजता से यह बात कह दी। ''मैंने बहुत-बहुत पहले १९६२ के दौरान एक कविता में ऐसे ही संकट की घोषणा कर दी थी। क्योंकि जिस तरह का निडर व्यक्तित्व रहा है रजनीश का उसके लिए ये संकट तो मामूली बातें रही हैं। खतरनाक ढंग से जीने का परिणाम तो यही होने वाला था।''

''मुझसे कभी कोई परिचित पूछता था कि, ये इतनी सारी संन्यासियों का जमघट रजनीश ने क्यों लगा रखा है?'' इस पर मैं कहती थी....औरतें यदि जिस पुरूष पर बहुत अधिक विश्वास करती हैं....तो यह समझ लो कि वह बहुत अधिक पवित्र व्यक्ति हैं। औरतें ऐसे वैसे आदमी का विश्वास ही नहीं करती। ये बात ख्याल में रखना और फिर रजनीश कोई साधारण पुरूष नहीं वह 'पूर्णपुरूष' हैं। ऐसा कहकर मां ने नारी मनोविज्ञान की पहेली को सीधे स्पष्ट शब्दों में उजागर कर दिया और 'पूर्णपुरूष' का संकेत भी दे दिया।

पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उन्मान
कहबे कूं सोभा नहीं, देख्या ही परवान

उस प्रभु के तेज-युक्त सौंदर्य को वाणी द्वारा अभिव्यक्ति ही नहीं दी जा सकती। कहने में उस अनुपम रस की शोभा ही नहीं है। उस सौंदर्य का अनुमान भी कोई नहीं लगा सकता वह तो मात्र दर्शन का ही विषय है।

''इस समय आपकी भगवान के प्रति क्या प्रार्थना है? क्या चाहती हैं अब उनसे?''

''मुझे तो ऐसा कोई लालसा नहीं रह गई है। उनके रास्ते में जिसे संसार विघ्न बाधाएं समझता है वैसी तो कोई अड़चनें हैं ही नहीं। अब तो केवल शरीर छोड़ने के पहले एक बार दिख जाए....सिर्फ एक बार देख भर लेने की इच्छा है। वैसे वीडियो पर जो देखा तो मन भर आया था। कितना हृष्ट-पुष्ट कसरती शरीर था। कितने दुर्बल हो गये हैं वे।'' मां का आंचल दूध से गीला हो गया प्रतीत हुआ मुझे। मैंने पूछा—''सच बताना मां, एक बार मिलने की कामना रह गई है ना।'' मैंने जानबूझ उनके मातृत्व को कुरेदना चाहा।

''झूठ क्यों बोलूं बेटा। अरे मां का मन कभी तृप्त हुआ अपने बेटे का मुख चंद निहारने के बाद। पिछले दिनों पूना किसी सम्मेलन के संदर्भ में गई थी। उन दिनों वे बीमार थे। मेरे पर क्या बीती होगी, ये मैं ही जानती थी। तब आश्रम में जाकर भी नहीं देख पाई।''

और उस आनंदमयी की आंखों में ममता का सागर छलक आया था। उसी सागर में डूबती उतराती मानों कहती गई, ''चि. रजनीश ने एक आखिरी पत्र में मुझसे वायदा किया है....'सारा कर्ज ब्याज समेत चुका दूंगा।' देखें कब आयेगा वह क्षण''

''जो अस्तित्व का सागर चलता-फिरता हंसता-हंसाता एक शरीर रूप में आकर समा गया हो। ऐसे अस्तित्व को स्पर्श कर देखने का बालक भाव मेरे मन में भी कई बार आया है मां! वैसे उस अस्तित्व के सागर को छूआ नहीं जा सकता क्योंकि उसमें तो हम हैं ही फिर भी कोई एक विराट चेतना जो किसी शरीर के माध्यम से हमारी ज्योति जला गई हो। उसे सामने बैठकर एक बार निहारने की अभीप्सा तो कभी-कभी उठ ही जाती है। जब आप पूना जाए तो उंगली पकड़कर मुझे भी लेती चलना मां।''

और हम दोनों की आंखों में प्रेमाश्रु पुनः छलछला उठे।

"मुझे भी ऐसी अनुभूति नहीं होती होगी ये बात नहीं है। लेकिन वह अब मेरे अकेले का तो है नहीं वह तो तेरे जैसे करोड़ों-करोड़ों के हृदय की धड़कन बन गया है। तेरी सुंदर-सी आंखों में भी मैं उसी को देख रही हूं।"

और अचानक मुझे हवा की गूंज में दो पंक्तियां सुनाई दी....

'मधुर मुझको हो गए सब, मधुर प्रिय की भावना ले।'

पास में रखती तश्तरी में मिठाई-फल इत्यादि बहुत देर से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने उसी भाव में डूबे हुए मुझे पुनः उन्हें ग्रहण करने का आग्रह किया! उस खाद्य सामग्री की ओर मेरा विशेष उत्साह भी नहीं था। भगवान के संदर्भ में छप्पन प्रकार के व्यंजनों का मुझे जो आस्वाद हो रहा था। उन व्यंजनों के आगे मुझे उन पदार्थों को देखने की फुरसत ही नहीं थी।

"हां लेता हूं....ऐसा कहकर मैंने उस रत्नगर्भा के हृदय से अन्य अनेक रत्नों के उत्खनन के लिए वाणी की छेनी का सहारा लिया।"

"आपने भगवान के कार्य को आगे बढ़ाने में कौन-कौन से सहयोग दिए? उन्हें चांदा के आस-पास ताडोबा जैसे घने जंगल में आश्रम बनाने की प्रेरणा पहले कभी नहीं दी। आश्रम के लिए वह स्थान तो बड़ा सुंदर रहा होता?"

"मैंने तो कई बार चांदा को कार्यक्षेत्र बनाने की बातें उन्हें पत्रों में सुझाई भी थी। इस पर वे कहा करते थे कि आप जहां हैं वहां कार्यक्षेत्र तो बन ही गया है।

३ जनवरी ६१ जबलपुर

प्रिय मां,

संध्या! उदास अंधेरे को देखता हूं। थके पक्षी नीडों को लौट चुके। कभी कोई भूला पक्षी फड़फड़ाता है। घरों के ऊपर धुआं लटक रहा है। मैं बगिया में हूं। फूलों की हंसती क्यारियां कालिमा में डूब रही हैं।

एक दिन ऐसे ही मनुष्य डूब जाता है। जीवन अंधेरे में कहां खो जाता है....ज्ञात भी नहीं पड़ता। इसके पूर्व के क्षण बहुत कीमती हैं। एक क्षण बहुमूल्य हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त के इस खेल में अपने को खोया भी जा सकता है, पाया भी जा सकता है।

यह जीवन अपना ही निर्माण है।

इसे हम एक आनंद उत्सव बना लें....इसके लिए यह अवसर याद आता है। आप पूछी थीं, 'मैं आनंद में अकेला कब तक खोया रहूंगा?'

मैं अखंड आनंद होना चाहता हूं। उसे पा लूं तभी दे सकता हूं? यूं सबके भीतर वह छिपा है। आंखें फिराने की बात है।

❖❖❖

आपका पत्र मिला है। बहुत सुखद! चांदा के मेरे कार्यक्षेत्र बनाने की बात लिखी है। आप वहां है तो क्षेत्र तो बन ही गया।

पिछले पत्र के लिये राह देखनी पड़ी। जानकर ही दिखाई। मैं सोचता था कि राह आप देखेंगी....खूब मजा रहेगा। राह देखने में भी बड़ा सुख है....हैं ना?

सबको मेरा प्रणाम

रजनीश के प्रणाम

"बम्बई से पूना में कार्यक्षेत्र बनाने के बाद भगवान अक्सर आपके पास विदेशी संन्यासियों को भी तो भेजते रहे हैं। वह किसलिए?"

"आबू शिविर में जब मैं गई थी तभी उन्होंने मुझसे कहा था कि, 'ये जो विदेशी संन्यासी भारत में आते हैं, उन्हें कुछ भारतीय संस्कृति की शिक्षा, यहां के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान से उन्हें मैं परिचित करा दूं।' सो 1972-73 के आस-पास 30-30 की टोलियों में वे चांदा आते रहे थे। चांदा से 90 मील दूर वैनगंगा नदी के तट पर उसे गांव जहां अपनी खेती है वे झोपड़ियां बनाकर रहते थे। कुछ-कुछ हिन्दी बोलना, शरबत बनाना, भारतीय औषधि बनाना, भारतीय भोजन इत्यादि बातों से मैं उन्हें परिचित कराती थी। यहां से पूना जाकर वे थोड़ा वहां भारतीय रहन-सहन के योग्य हो पाते थे। उसके बाद पूना आश्रम में उनके निवास की व्यवस्था हो गई थी।

मां योग लक्ष्मी के पत्र आते रहते थे तब। बड़ा ही मेहनती और अनुशासित जीवन रहता था उनका। चाय कभी नहीं पीते थे। 'राब' पीते थे। गेहूं के आटे में दही मिलाकर शाम को रख देते थे। फिर दूसरे दिन 'कढ़ी' जैसी बनाकर एक-एक प्याला पीकर सब काम पर चले जाते थे। रोज छः-छः घंटे कड़ी मेहनत के काम करते थे। कुछ, खेती का तो कुछ बढ़ई का, कुछ भोजन बनाने का। इत्यादि सभी तरह के काम करते रहे थे। कुछ इंजीनियर तो कुछ पायलट तो कोई कवि, लेखक इत्यादि भिन्न पेशों के संन्यासी आते रहे थे। कड़ी मेहनत के बाद, संध्या को कभी विपस्सना, तो कभी सक्रिय ध्यान तो कभी शून्य ध्यान में उतरते थे वे सब।"

"क्या मैं आपके उपयोग में आ सकती हूं? एक बार मैंने उनसे पूछा था। किंतु मुझे उन्होंने कभी आश्रम में नहीं बुलाया चांदा रहकर ही मैं जो सहयोग दे सकती थी वह किया।

हां, उन्होंने संन्यास की दीक्षा एवं माला देने का भी मुझे अवसर दिया था।"

जब-जब जो-जो आदेश मुझे उनके मिले मैंने पूरे करने का प्रयत्न भर किया। कितनी सफल साबित हुई अब ये बात तो वे ही जानें।

मैंने भक्त पाठकों के लिए कुछ लाइट मूड की हल्की-फुल्की बातें करने के उद्देश्य से मां से पूछा—"भगवान के सम्पर्क में तो उन दिनों काफी कन्याएं आई होंगी? उनके

प्रेम-प्रसंगों के बारे में आपको तो निश्चय ही बहुत कुछ मालूम होगा। बताइये न कुछ उन संबंधों के बारे में।''

''तो क्या ये सब बातें भी लिखोगे?''

''भगवान से प्रेम करने वाले भक्तों को उनकी हर बात में जिज्ञासा होती है। वे क्या खाते हैं? कैसे रहते हैं उनके सोने की कौन सी मुद्रा रहती हैं? आदि हर बातें जानने को उत्सुक रहते हैं तो फिर प्रेम करना तो मनुष्य का स्वभाव है मां उन बातों के प्रति जिज्ञासा होना....

''हां, समझ गई....

अरे पगले! उनके प्रति आकर्षित होने वालों की कोई कमी रही होगी क्या? जब पुरूषों की ही ये हालत है तो नारियों की क्या दशा रही होगी?''

''आपको उनसे क्या प्राप्त हुआ? क्या सचमुच आपको अपना खोया पुत्र मिल गया अथवा उससे भी बढ़कर कुछ और रूप?''

''मेरा पुत्र तो मिला ही लेकिन उस पुत्र के रूप में मुझे एक गुरू भी मिला। वे चांदा आते थे तब बहुत सी बातें अधूरी ही रह जाती थी। तीन चार दिन रहते थे। अब इन तीन चार दिनों में कुछ बातें समझ पाती थी तो कुछ नहीं तो वे पत्रों से इंगित कर देते थे। ध्यान में आई अनुभूतियों को मैं सदा उन्हें बताती रहती थी और उनकी राय भी इस पर जानती रहती थी।''

''आप को ध्यान में अनेकानेक अनुभव आए होंगे?''

''हां! चि. रजनीश के दोनों हाथ पकड़कर मैं बैठी रहती थी ऐसे?'' और मां ने मेरे दोनों हाथों को स्पर्श कर बताया। मुझे अनुभूति हो रही थी मानों भगवान स्वयं मां के माध्यम से मुझे कुछ अनुभव की गहराईयों में ले जाना चाह रहे हैं। मैं स्वप्निल सी दशा में हो उठा था। कुछ तंद्रा सी लगने की अवस्था थी। मैं देख पा रहा था। हो सकता है लगातार छः-छः, सात-सात घंटों तक की तीन दिनों की बैठक से ध्यान की अवस्था किसी नये मार्ग की तलाश रही हो।

''कभी मैं उनको सुला लेती थी और उनके सिर पर हाथ रखे रहती थी। और कभी चुप रहकर ऐसे ही निहारती रहती थी।''

''भगवान के साथ आपने कुछ खेल भी तो खेले थे? कैसे खेले थे?'' मैंने पूछा।

''वो....तो....पंचमढ़ी यात्रा के समय की बात हैं। 'चायनीज चेकर' नामक कुछ गोटियों का खेल होता था। बच्चों के साथ मिलकर खुद भी छोटे बच्चे बन जाते थे। चुपचाप बोर्ड में वे गोटियां बेईमानी से खिसका देते थे और खुद खेल को जीत लेने का दावा करते थे।'' 'सारंग' कमरे की दीवारें भी खिलखिला उठी।

''मैं कहती....क्यूं....ये....क्या? ऐसी बेईमानी खेल में....?''

तो कहते थे....''और....खेल कैसे खेलते हैं।''

मुझे प्रतीत हुआ इस वाक्य में ही मानों जीवन जीने की सारी, अभिव्यक्ति सहजता से दे दी थी उस अस्तित्व ने। खेल को खेल के रख में अर्थात् हास-परिहास ही में लेना चाहिए। हर क्षण हास-परिहास के खेल के रख में जीना और आनंद में डूबे रहना ही तो सच्चे जीवन की अभिव्यक्ति है और मुझे भगवान की एक पंक्ति जो उनके जीवन में अत्यंत अभिन्न लगती है, याद हो आई....'उत्सव आमार आति आनंद आमार गोत्रा।'

इस तरह उस नट नागर की लीलाओं के किस्से सुनाती मां आनंदमयी में से यशोदा मैया झांक-झांक पड़ रही थी। उनका आनंदपूर्ण मुखमंडल ममतामय हो उठा था। आंखों में अतीत वर्तमान बन आया था। मैं अभी उन दो अद्भुत गुरू शिष्य और मां-बेटा के गड्डमड्ड चरित्रों के बीच में चल रही फिल्म का एक मूक दर्शक ही नहीं रह गया था। मैं भी कभी-कभी उस रंगमंच पर पर्दा उठाने से, पर्दा गिरानेवाला भारवाही बनने में अहोभाव अनुभूत कर रहा था। इस छुटपुट फिल्म के कुछ ट्रेलर से 'रजनीश-टाइम्स' के पाठक भी लाभान्वित हो सकें इसी उद्देश्य से मैंने मां के अतीत के पृष्ठों को बड़े प्रयत्नों से उलटने-पुलटने का प्रयास किया है।

यद्यपि मां उन स्मृति रत्नों को अपने हृदय के खजाने में ही संजोये रखती रही हैं। किन्तु मेरे प्रति अपार ममता एवं करूणा ने मानों स्वर्ग के अनंत-अनंत अमृत झरनों में स्नान करा दिया हो मुझे। मैं उस अमृतमयी बरखा में भीग गया था। मन प्राण जैसे ठहर गए हों। समय ठहर गया था। चेतना भी स्थिर हो गई थी। झील-सी निष्पंद। उसमें अपने पूर्णचंद की सुंदर झाकी को निहारती आंखें हटने का नाम ही नहीं ले रही थी।

पूज्य मां,

पद स्पर्श और प्रणाम! आशीष पत्र आज मिला। साथ बीते थोड़े से दिन उसके साथ वापिस लौट आए हैं। मन स्मृति की सुगंध से भर गया है। आपने मेरे भविष्य के निर्विघ्न होने की प्रार्थना की है। आपकी प्रार्थना है तो वह तो पूरी होगी ही। प्रभु तो देने को तैयार है, मांगना भर आने की बात है। जहां तक मेरी बात है मैं निश्चित हूं। इस निश्चित स्थिति पर कभी मुझे ही हैरानी हो जाती है। जगत अभिनय दिखता है। उससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। यह अभिनय ठीक से हो ले इतनी ही बात है। वह होगा यह मैं जानता हूं। आपके मिलने से यह और भी स्पष्ट अन्तर्मन पर उभर आया है। प्रार्थना करें....मेरे लिए....वैसे वह हर क्षण आपकी आंखों में भरी हैं, अनेक बार झांकते ही वह दिख आई है। पूरी होगी यह मैं असंदिग्ध होकर जानता हूं। मैं जो नहीं मांग सकता था....अभिमानी जो हूं। उसे मांगनेवाला प्रभु ने मेरे लिए जुटा दिया है।

शेष शुभ हैं।

रजनीश के प्रणाम

अर्धरात्रि

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद स्पर्श आपका आशीष पत्र मिला। मैं कितना आनंदित हूं कैसे कहूं? मां जैसी अमूल्य वस्तु निर्मूल्य मिल जावे और वह भी मुझ जैसे अपात्र को तो इसे प्रभु की अनुकंपा के अतिरिक्त और क्या कहूं? उस अचिन्त्य और अज्ञेय के स्नेह प्रसाद की अनुभूति जैसे-जैसे मुझ पर प्रगट होती जा रही है, वैसे-वैसे मेरा जीवन, आनंद, शांति और कृतज्ञता के अमृत बोध से भरता जाता है। आपको पाने में भी उसका करुणामय हाथ ही पीछे है। यह मैं स्पष्ट देख पा रहा हूं।

आपको देखा उसी क्षण जो आपने पत्र में लिखा है वह मुझे दीख आया था। पत्र ने इसलिए मुझे अचंभित नहीं किया, बल्कि लगा कि मैं तो जैसे उसकी बाट ही देख रहा था! आपकी आंखों में मातृत्व का यह स्नेह मुझे अनदेखा नहीं रहा था। किसी अतीत जीवन में आप मेरी मां थीं, ऐसी आपकी स्मृति है तो निश्चय ही आप मेरी मां रही होंगी। मेरी तो कामना है कि नारी मात्र को मैं अपनी मां के रूप में देख पाऊं। इसी पथ पर चल रहा हूं और आपका स्नेह और आशीष मेरे पदों को सबल करेगा, ऐसी आशा है।

मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूं किसी छुट्टी में आने का प्रयास करूंगा। अब तो आना ही पड़ेगा। जिस स्नेह में बांध लिया है उसका आमंत्रण तो कभी अस्वीकृत नहीं होता है।

पत्र दें और मेरे योग्य सेवा लिखें। मेरे लिए प्रभु से सदा प्रार्थना करती रहें। सबको मेरे विनम्र प्रणाम। बच्चों को मेरा बहुत-बहुत स्नेह!

रजनीश के प्रणाम!

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श। आपकी स्नेह-पाती मिली। आप मुझे निकट देखना चाहती हैं—मेरा भी मन आने को और आपके स्नेह को पाने के लिए लालायित है। मेरा बड़ा होना आपकी प्रेम-अभिव्यक्ति में बाधा नहीं बनेगा—मां के सामने भी क्या कोई बड़ा हो पाता है? मैं दिसम्बर की छुट्टियों में आने को हूं—वैसे दूर तो अब भी कहां हूं। शरीर ही दूर है, हृदय तो नहीं। हृदय कोई दूरी नहीं मानता है—समय और स्थान की धारणायें उसके प्रसंग में कोई अर्थ नहीं रखती है। प्रेम है तो कोई दूरी-दूरी नहीं होती है और प्रेम नहीं है तो शरीर निकट भी हो तो क्या कोई निकट आ पाता है?

मैं प्रसन्न और स्वस्थ हूं। प्रभु से आपको स्वस्थ और स्व-स्थित बनाये रखने की कामना करता हूं।

सबको मेरे विनम्र प्रणाम

रजनीश के प्रणाम
5 अक्तूबर 1960

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

13 अक्तूबर 1960
गाडरवारा (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! आपका आशीष-पत्र मिला। जो आनंद हुआ—कैसे कहूं? आनंद-अनुभूति शब्दों में नहीं बंधती है। शब्द हैं बहुत असमर्थ, अपाहिज और अपंग—जीवन उनमें नहीं समाता है। जो भी जीवित है वह उनमें प्रगट नहीं हो पाता है। मन पर ही उनकी सत्ता और जड़-पार्थिव के लिए ही अभिव्यक्ति की उनकी क्षमता है। एक जगह जाकर शब्द चुप हो जाते हैं और एक नई ही जीवन्त भाषा प्रारंभ हो जाती है। मौत की भाषा, शांति की भाषा, प्रीति की भाषा। यहां कहां नहीं जाता पर अनकहा ही संदेश पहुंच जाता है। प्रभु भी तो इसी भाषा में बोलता है—लहरों की गतिमयता से, तारों के प्रकाश से, फूलों की प्रफुल्लता से। और जो चुप हैं, मौन हैं, वे इसे समझ पाते हैं। शब्द नहीं है पर क्या अर्थ बिना उनके ही नहीं पहुंच जाता है?....शब्दों के प्रति मेरी जो कंजूसी आपको दिखी, उसका यही कारण है। जीवन की श्रेष्ठ अनुभूतियों की अभिव्यंजना .... में शब्द साधक नहीं, बाधक हे। मैं जो कहना चाहता हूं उसे शब्दों में कम और बीच के रिक्त स्थान में कहीं ज्याद' प्रकट पाता हूं!

❖❖❖

गांव में आया हूं। शहर की अशांति से थोड़ा विश्राम मिला है। दो-चार दिन यहां रुकने का मन है। सुबह खेतों में घूमने गया था। मिट्टी की सौंधी सुगंध में डूबा था कि अचानक आप दीख पड़ीं। बहुत निकट, बहुत निकट कि चाहता तो छू लेता—

❖❖❖

सबको मेरे विनम्र प्रणाम

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! आपका आशीष-पत्र। बहुत खुशी हुई।

मेरा चित्र मांगा है। चांदा जब आऊं तब उसे लेने की व्यवस्था कर लें। वैसे वह चित्र तो आपके हृदय में है। कागज पर तो मृत-चित्र ही होते हैं हृदय में जीवित ..... छवि बन जाती है। उससे बोला जा सकता है—उसे छुआ जा सकता है—उससे प्रत्युत्तर पाये जा सकते हैं। आंखें बंद करें और देखें। क्या मैं भीतर नहीं हूं?

एक बात और—मृत चित्र में मैं वहां मिल सकूंगा? शरीर मैं नहीं हूं। कोई भी शरीर नहीं है। हमारी सत्ता शरीर में है पर शरीर पर ही समाप्त नहीं है। शरीर से पृथक और पार मेरी सत्ता है—ऐसा बोध मन में जगायें। उस बोध के बिना दुःख-निरोध नहीं होता है।

शरीर और आत्मा का मिथ्या-तादात्म्य छोड़ देना जीवन की सार्थकता और आनंद को पा लेना है। शरीर के साथ अपने को एक जानने से दूसरों से हम पृथक् दीखने लगते हैं। यह असत्य विचार गया कि जैसे बूंद को सागर मिल जाता है; वैसे ही आत्मा को परमात्मा मिल जाता है। तब प्रतीत होता है कि मैं सबके साथ एक हूं। फूलों के आनंद और तारों के मौन में, घास के तिनकों और पर्वत के शिखरों में—सबमें मैं ही हूं। मैं ही जीवन हूं। मैं आपसे अलग नहीं हूं। अलग कोई है नहीं—हो ही नहीं सकता है। कोई पर नहीं। हैं जो आप की हृदय की धडक़न में बैठा है वही मेरी बांस की बांसुरी से भी अपने गीत गा रहा है। हम सब एक ही जीवन-संगीत के सम्मिलित स्वर हैं।

❖❖❖

मैं दिसम्बर की छुट्टियों में आने की सोचता हूं। छुट्टियां 25 दिन के करीब होंगी। पर आपका बुलावा निरन्तर अनुभव हो रहा है। उठते-बैठते आप मुझे बुला रही हैं। जो आपके भीतर हो रहा है वह सब मुझे ठीक से सुनाई पड़ रहा है। इसलिए यदि दिसम्बर के पूर्व ही छुट्टियां पा सका तो आने का प्रयास करूंगा। शेष शुभ। सबको मेरे प्रणाम। बहिनों को मेरा बहुत-बहुत स्नेह।

रजनीश के प्रणाम

संत तारण तरण जयंती समारोह समिति

(सर्व-धर्म-सम्मेलन)

जबलपुर

दिनांक 10 अक्तूबर 1960

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! आपका प्रीति-पत्र! एक-एक शब्द छूता है और आप बहुत निकट अनुभव होती हैं। प्रेम जीवन की सर्वोत्कृष्ट अनुभूति है। उसमें होकर ही हम प्रभु में और सत्य में हो पाते हैं। प्रेम द्वार है। ईसा ने तो कहा है, 'प्रेम ही प्रभु है।' इस प्रेम को विस्तृत करते जाना है—एक से अनेक तक, अंत से अनंत तक, अणु से ब्रह्मांड तक। इस रहस्यमय जगत् का एक-एक कण प्रीति-योग्य है।

❖❖❖

'मिलन में छुपा हुआ विरह दिख रहा है'—ऐसा आपने लिखा है। नहीं, मां ऐसा नहीं है। **प्रेम में विरह है ही नहीं। प्रेम बस मिलन है।** शरीर-बोध से यह विरह दिखता है। वह बोध भ्रान्त है और दुःख का कारण है। मैं आप में मिल गया हूं—अब अलग होने को "मैं" कहां हूं? साधारणतः मातृत्व मिलता है पुत्र को अपने से अलग करके पर आप मेरी मां बनी है। मुझे अपने में समा के। मैं आपका हूं—यह शरीर भी आपका है। इसके प्रति ममता दिखाने में मैं बाधा कैसे बन सकता हूं?

❖❖❖

मैं 5 दिसम्बर की संध्या या रात्रि आपके निकट पहुंच रहा हूं। इसके पूर्व 1 सप्ताह तक संत तारण-तरण जयंती समारोह के आयोजनों में व्यस्त रहूंगा— अन्यथा पूर्व भी पहुंच सकता था। ट्रेन के बारे में बाद में सूचित करुंगा। शेष शुभ। शारदा बहिन को बहुत-बहुत स्नेह। सबको मेरे प्रणाम कहे। साथ में संत तारण-तरण पर विगत वर्ष हुए एक व्याख्यान का सार-संक्षिप्त भी भेज रहा हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! आपका पत्र मिला। स्नेह में भीगकर शब्द कैसे जीवित हो जाते हैं—यह आपके प्रेम से भरे हृदय से निकले शब्दों को देखकर अनुभव होता है। शब्द अपने में तो मृत है; प्रीति उनमें प्राण डाल देती है। इस तरह प्रीति-सिक्त होकर वे अभिमंत्रित हो जाते हैं। काव्य का जन्म ऐसी ही अनुभूति से होता है। मेरे लिए आशीर्वाद-रूप कुछ गीत-पंक्तियां आपने लिखीं हैं। इन पंक्तियों ने मुझे छू लिया है। पढ़ा। समाधिस्थ हो गया।..........देर तक सब कुछ मिटा रहा...........मैं भी नहीं था। कुछ भी नहीं था।.........पर न होना ही जीवन **को उपलब्ध करता है।**....होता दुःख है। होता सीमा है। समग्र धर्म—समग्र कला—समग्र दर्शन इस शून्यता को पाने के लिए ही हैं। शून्यता शून्य नहीं है वही पूर्गता है। न कुछ, सब कुछ है। इसलिए ही शास्त्र कहते हैं कि पाना है जीवन, तो जीवन के छोड़ना होता है।

❖❖❖

मैं आनंद में हूं या ज्यादा ठीक हो कि कहूं कि मैं आनंद ही हूं।

श्री फड़के गुरुजी का पत्र भी मिला। उन्हें मेरे प्रणाम कहें। प्रिय शारदा बहिन को बहुत-बहुत स्नेह।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! भाव-भीना पत्र मिला। हृदय की बात हृदय तक पहुंच गई। हृदय तक केवल वही बात पहुंचती भी है जो कि हृदय की गहराई से आती है। मेरे स्नेह में जो गीत लिखा है वह बहुत प्रिय लगा—अपने होठों की पूरी मिठास आपने उसमें डाल दी है!

❖❖❖

इस पत्र में मैं अधिक कुछ लिखने को नहीं हूं क्योंकि मैं खुद ही जो आ रहा हूं। दो दिन और भी जल्दी। पहले मैं ५ दिसम्बर को चांदा पहुंचने को था—यहां से चलता ३ दिस. को ही पर ४ दिस. को वर्धा कॉलेज में एक व्याख्यान के लिए रूकता। वह कार्यक्रम फिलहाल स्थगित कर दिया है। इसलिए मैं **३ दिस. की संध्या** ग्रेंड ट्रंक एक्सप्रेस से चांदा पहुंच रहा हूं। यह गाड़ी वहां ७.२३ संध्या पहुंचती है। मैं यहां सुबह बस से नागपुर के लिए निकलूंगा और वहां ४ बजे जी.टी. पकड़ने को हूं।

❖❖❖

प्रिय शारदा का पत्र भी मिला। गीत भी। उत्तर में गीत तो मैं जानता नहीं, प्रीत ही जानता हूं। सो आकर दे दूंगा।

शेष शुभ। सबको मेरे विनम्र प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
22 नवम्बर 1960

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! कल रात्रि १० बजे यहां पहुंच गया। आने को आग या पर सच में तो अपने वहीं छोड़ आया हूं! कल रात्रि जब सोया आपकी सुवास साथ थी—जागा जब तो आपके हाथों की राह देखता रहा....और जानती हैं....जब आपने उठाया तभी उठा हूं!

....

श्री पारख जी, श्री गुरुजी, सुश्री यशोदा जी—सबको मेरे प्रणाम।
शारदा और सब छोटों को स्नेह।

तुम्हारा अपना
रजनीश
8.12.1960

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

अर्ध-रात्रि! अंधेरे रास्तों पर घूमकर लौटा हूं। सब चुप और मौन है। कभी-कभार बस कोई कुत्ता भौंक जाता है। मौन उससे टूटता नहीं और घना हो जाता है। तारे ठंडे है और निःशब्द संगति से भरे हैं।

यह गहरी निस्तब्धता मुझे बहुत प्रिय है।

मैं अपने में हो आता हूं।

मौन मुझे भीतर खींच लेता है यह 'प्रतिबोध' है। मैं अपने को छू लेता हूं और सब कुछ मुझे छू जाता है। इस गहराई में अनेकता नहीं दीखती। भेद ऊपर है, ऊपरी है। भीतर अभेद है और अभेद ही सत्य है।

''तत्वभासि श्वेतकेतु!'' श्वेतकेतु वह तू ही है! यह महाकाव्य पुनः पुनः सुनाई देता है।

जीवन एक संगीत है। खंडित स्वर–व्यक्ति-स्वर में दुःख है। अखंडता आनंद है। उपनिषद् कहते हैं, ''वह कवि है। यह सृष्टि उसका काव्य है।''

इस काव्य में अपने को खो देना ही सब कुछ पा लेना है।

रजनीश के प्रणाम
15.12.1960
रात्रि

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! तुम्हारा पत्र आज मिला–कितनी राह दिखाई? मैं हूं पागल–आया और पत्र की राह देखने लगा। एक दिन–दो दिन–तीन दिन....और आज पूरे आठ दिन बाद तुम्हारा पत्र मिला है। आठ दिन–कितने थोड़े दिन हैं पर कितने लम्बे हो सकते हैं!

❖❖❖

मैं समझ गया था कि कोई उलझन है। अस्वस्थ बच्चे की ही आशंका थी। पर यह जानकर प्रसन्न हूं कि अब वह स्वस्थ हो रहा है। सेवा व्यर्थ नहीं जाती है। प्रभु का हाथ सदा साथ देता है।

❖❖❖

मैं प्रसन्न हूं। सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
15.12.1960
दोपहर

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! आपका आशीष-पत्र! वह भी मिला जो लिखा है और वह भी जो अनलिखा छूट जाता है। अनलिखा तो प्राण है। दीखता शरीर ही है पर अपने मे इसका कोई मूल्य नहीं है। वह है मूल्यवान उसके कारण जो पीछे है पर दीखने में नहीं आता है। जीवन के इस महाकाव्य में प्रगटीकरण केवल क्षुद्र का है : विराट अप्रगट है। मैं तो इस अक्षरों को पढ़ना सीख गया हूं जो दीखते नहीं है और वे संदेश मुझे हर क्षण घेरे रहते हैं, प्रगटतः जो कहीं से भी दिये नहीं गये हैं। इस तरह अदृश्य से मैत्री बन रही है और प्रभु का सानिध्य अनुभव हो रहा है।

यह रहस्यानुभव उठते-बैठते, सोते-जागते चित्त-द्वार पर बना रहता है। आंखें बंद न हों तो यह अनुभूति प्रत्येक को होगी। आंखें खोलने की ही बात है। यही है **'दर्शन'**। दर्शन चिन्ता से द्वार खुल जाते हैं। ताले टूट जाते हैं। जगत की बंद किताब अपना अर्थ खोल देती है। राह के किनारे पड़े सारे कंकड़-पत्थर 'इसकी' ही प्रतिमा बन जाते हैं।

मैं इसी आनंद में हूं। आप कहती हैं, इसे बांटू। मेरे रोके क्या यह रूकेगा? यह तो बहेगा ही। यह तो सब तक पहुंचेगा ही। यह 'मेरा' कहां है जो इसे बंद कर लूंगा? मैं तो बांस की बांसुरी बनना चाहता हूं। स्वर तो उसी के हैं। वह मुझसे पाना चाहता है तो क्या मैं रोक सकता हूं?

❖❖❖

सबको मेरे प्रणाम।
शारदा, शांता, प्रदीप और परम-शांतिलाल एंड कं. को मेरा स्नेह

आपका अपना
रजनीश
27 दिसम्बर 1960

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

परिशिष्ट :

शांता को – मां लिखी हैं कि मेरे लिए सूत कात रही हो। मजबूत कातना खूब कि बंधू तो छूट न पाऊं! और अभी नहीं मिल पाई हो इससे दुःखी मत होना–जितना राह देखकर मिलोगी उतना ही सुखद होगा। मेरा बहुत-बहुत स्नेह।

पारखजी को – मां लिखी हैं कि आप मेरी भेजी किताबें ध्यान से पढ़ रहे हैं। इसे जानकर मैं बहुत खुश हूं। आपसे मिलना एक गहरा आनंद मेरे लिए रहा है। आप अधिकांशतः चुप थे पर बातें तो सबसे ज्यादा आपसे ही हुई हैं! मां के निर्माण में भी आपकी लिखावट को पढ़ लिया हूं। वह छिपी नहीं रह सकती है। मौन और शांत एक आदमी क्या कर सकता है, यह अनुभव मुझे हुआ। इतना सुखद–इतना मुक्त दाम्पत्य जीवन मैंने कहीं और नहीं देखा है। इससे निश्चय ही आपको धन्यता अनुभव होनी चाहिए। मैं जितने समय आपके यहां रहा मेरे मन में यही प्रार्थना प्रभु से चलती रही कि मेरे मन में भारत का प्रत्येक परिवार ऐसा जीवन जी सके। प्रभु की अनंत अनुकंपा आप पर है।

मां को – आप लिखी हो कि मेरे "पत्र की राह में पलकें राह पर लगी रहीं यद्यपि मैं जानता हूं कि वह पागलपन के सिवाय और क्या है?" बढ़िया बात लिखी। पागल तो अच्छी हो। नहीं तो जीवन में प्रेम ही कैसे कर पातीं? प्रेम तो पागल ही कर पाते हैं और जो प्रेम नहीं कर पाते उन्हें क्या कोई जीवित कहेगा? दो ही तरह के लोग दुनिया में हैं, पागल और मृत। तो तुम सदा ही पागल ही रहना।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

3 जनवरी 1961

प्रिय मां,

संध्या! उदास अंधेरे को उतरते देखता हूं। थके पक्षी नीड़ो को लौट चुके। कभी कोई भूला पक्षी पर फड़फड़ाता है। घरों के ऊपर धुआं लटक रहा है। मैं बगिया में हूं। फूलों की हंसती क्यारियां कालिमा में डूब रही हैं।

एक दिन ऐसे ही मनुष्य डूब जाता है। जीवन अंधेरे में कहां खो जाता है....ज्ञात भी नहीं पड़ता। इसके पूर्व के क्षण बहुत कीमती हैं। एक क्षण बहुमूल्य है। सूर्योदय और सूर्यास्त के इस खेल में अपने को खोया भी जा सकता है, पाया भी जा सकता है।

गीत और सदित दोनों मनुष्य के हाथ में हैं। सब कुछ स्वयं पर निर्भर है।

यह जीवन अपना ही निर्माण है।

इसे हम एक आनंद-उत्सव बना लें....इसके लिए यह अवसर है।

याद आता है। आप पूछी थीं, 'मैं आनंद में अकेला कब तक खोया रहूंगा?'

मैं अखंड आनंद होना चाहता हूं। उसे पा लूं तभी तो दे सकता हूं? यूं सबके भीतर वह छिपा है। आंखें फिराने की बात है। जो आंखें बाहर देखती रहती हैं, उन्हें भीतर लौटाना होता है। भीतर वही बैठा है जिसकी ढूंढ दौड़ बाहर चल रही है। खूब छिपकर बैठा है। बढ़िया आंख मिचौली है।

यह दिख जाता है तो संध्या टूट जाती है। प्रभात ही प्रभात फिर शेष रह जाता है।

❖❖❖

आपका पत्र मिला है। बहु सुखद! चांदा के मेरे कार्यक्षेत्र बनाने की बात लिखी है। आप वहां है तो क्षेत्र तो बन ही गया। यह भी क्या भगवान को बताना पड़ेगा! यह तो मैं ही बता देता! फिर भी मुझसे पहिले इसने बताया सो ठीक ही किया। उसके हाथ उद्घाटन होना निश्चय ही शुभ है।

पिछले पत्र के लिये राह देखनी पड़ी। जानकर ही दिखाई। मैं सोचता था कि राह आप देखेंगी....खूब मजा रहेगा। राह देखने में भी बड़ा सुख है....हैं ना?

सबको मेरे प्रणाम

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रभात! वृक्षों के रन्ध्रों से सूरज की किरणें मुझ तक आ पहुंची है। बौरे आम सिर उठाए खड़े हैं। मंदिर की घंटियों का निनाद गूंजता जाता है।

मैं घूमकर लौट पड़ा हूं।

रात भर की सोयी राह जाग रही है।

बहुत-बहुत आनंद है।

राह चलते राहियों के चेहरे उदास हैं। थके और प्रसन्नता शून्य।

उसकी आंखें कहीं और खोई हैं। वे जैसे अपने में नहीं है। यह बीमारी सारी दुनियां में फैल गई है। कोई अपने में नहीं है।

की-की-टुट-टुट। बांसों के कुंज से चिड़ियों का झुंड उड़ जाता है। मनुष्य को छोड़ सारे पशु जानते हैं कि जीवन आनंद के लिए है। कोई चिड़िया उदास नहीं दीखती। घास का तिनका भी रोता हुआ नहीं। मनुष्य एकदम रोऊ हो गया है।

कारण क्या है? कारण है कि मनुष्य वर्तमान में नहीं है। अतीत भूत है। भविष्य अनजान है। वर्तमान ही एकमात्र जीवन है। सजा बस वर्तमान की है। जो वर्तमान में नहीं है, वह जीवित भी नहीं है। मनुष्य वर्तमान को भूल गया है। एक क्षण भी वह वहां नहीं है जहां है।

इससे दुःख है। यह मूल में मानसिक है। कोई राजनैतिक या आर्थिक हल मात्र इसे हल नहीं कर पायेगा। मन की क्रांति ही मार्ग है। उससे ही समाधान आ सकता है। कल बोला हूं तो यही कहा है।

पत्र आपका कल संध्या। खूब मीठा। खादी अभी रखी है। पहनूं? वैसे खराब हो जाने का डर जो है।

शांता को पुत्र की उपलब्धि हुई है यह तार मिला। मेरा आशीष तो उसके कानों में डाल ही देना।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

सबको मेरे प्रणाम। स्नेह के विवाह का आमंत्रण दद्दा दिए हैं। उस समय आना ही होगा। जरा जल्दी ताकि एक-दो दिन यहां रुकना हो जायेगा और बाद में गांव चलेंगे। शेष शुभ। हां, मेरे चित्रों का क्या हुआ? यहां छोटी बहिन को जबसे ज्ञात हुआ वह राह देख रही हैं। शेष शुभ!

फड़के गुरुजी को कहें कि चुप क्यों हैं? कभी कुछ लिखें!

रजनीश के प्रणाम
10 जन. 1961

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

अर्धरात्रि
18 जन. 1961

प्रिय मां,

सोम....मंगल....बुध....और अब तो बुध भी जा चुका। बाट है और पत्र का पता नहीं है। किस काम में लगी हैं? क्या पत्र की प्रतीक्षा का आनंद देने का आपका भी मन हुआ है, पर नहीं। जानता हूं यह आप न कर सकेंगी। जरुर कोई उलझन है इससे चिंतित हूं।

एकांत रात्रि! बहुत से चित्र उभरते हैं।

....

वर्धा में सद्यःस्नाता आप द्वार पर आ खड़ी हुई हैं। वह चित्र भूलता ही नहीं। बहुत सजीव होकर मन में बैठ गया है। बार-बार लौट आता है। तीन दिन साथ था। पर इस चित्र का जोड़ नहीं है। बहुत सरल--बहुत पवित्र--बहुत पारदर्शी। उसमें आप मुझे पूरी-पूरी दिख आई थीं।

आज फिर वैसे ही द्वार पर खड़ी हुई हैं।
मधुर मुस्कुराहट फैलती जाती है और मुझे घेर लेती है।

....

फिर सोचता हूं—पत्र न सही, आप तो हैं।

मैं प्रसन्न हूं, शांत और स्वस्थ। प्रभु की अनंत अनुकम्पा है और मेरी कृतज्ञता का भी पार नहीं है। कृतज्ञता का यह बोध ही जीवन के कांटों भरे रास्तों को फूलों से भर देता है। मेरा रास्ता फूलों और गीतों से भर गया है।

आशीर्वाद की प्रतीक्षा में
आपका ही
रजनीश

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

सागर
गणतंत्र दिवस
26 जन. 1969

प्रिय मां,

सादर पद-स्पर्श! आपके दोनों पत्र मिल गए हैं। पारखजी की चार संतरें भी! मैं अभी-अभी यहां पहुंचा हूं। आज बोलना है और एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान के भवन का उद्घाटन भी करना है। कल दोपहर यहां से दमोट जाऊंगा। वहां के कॉलेज में "जीवन साधना और आदर्श शिक्षा का स्वरुप" पर एक व्याख्यान देना है। दमोट से भुंडानपुर। वहां एक साहित्य प्रदर्शनी का उद्घाटन और तब ३० तारीख तक जबलपुर लौट पाने को हूं। पत्र तो घर लौटकर ही लिखूंगा। यह तो सूचना मात्र है ताकि आप चिंतित न हों और पत्र की बाट न देखें। लोग घेरे हुए हैं। इससे इतना ही बात। सबको मेरे प्रणाम आपके आशीर्वाद से स्वस्थ और प्रसन्न हूं।

रजनीश
के
प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

30.1.61
दोपहर

पुनश्चः

मां! गांव चलना है, १७ फरवरी की संध्या। १८ और १९ को विवाह है। आप कम से कम दो दिन पूर्व आ जायें। ज्यादा पहले आयें तब कहना ही क्या? दद्दा कल आए हैं और आपको बहुत-बहुत आग्रह करने को कहा है। मैंने कहा, "आग्रह नहीं करुंगा, तो भी उन्हें आना ही पड़ेगा। अब वे पराई नहीं हैं।" यशोधरा जी का पत्र आज मिला है संभव है कल उन्हें उत्तर दूं। कब आती हैं....कि बस पर खड़े होकर मुझे प्रतीक्षा करनी होगी....इन सबकी सूचना पूर्व ही दे दें।

बस! आज इतना ही।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

30 जनवरी 1961
प्रभात

प्रिय मां,

बसंत-गीत फैला है। सब सुन्दर हो उठा है। बूढ़े दरखत हरे हो गये हैं और सूखी टहनियों पर जादू की तरह नई कोपलें निकल आई हैं। फूल ही फूल—प्रभु की पूरी महिमा के साथ पौधे दुल्हिनें बने खड़े हैं।

इस सुंदर अभिव्यक्ति में भी जो 'उसे' नहीं देख पाता है वह उसे और कभी नहीं देख सकता है।

इस सबके पीछे उसके खेल को मेरी आंखें पकड़ लेती है और तब एक अद्भुत आनंद प्राणों पर छा जाता है।

वह है एकदम निकट—उत्सुक, मिलने को बहुत-बहुत आतुर हम ही दूर खड़े हैं। वह आमंत्रण देता है और हम बहरे हैं। वह रुप-रंग में खिलता है और बुलाता है पर हम है अंधे कि देख नहीं पाते हैं।

आंख खोलते ही वह द्वार पर मिल जाता है, दूर नहीं जाना होता। यह सामने जो कली फूल बन रही है—इसे देखती हैं; दो पुखंरियां खुल गई हैं; तीसरी बस खिलने को है—और पास ही उसकी अंगुलियां भी हैं! कितना आहिस्ता-आहिस्ता वह कली को फूल बना देता है!

मैं उससे रोज कहता हूं! ओ अपरिचित तू कितना परिचित है!

❖❖❖

सबमें बैठे उस प्रभु को मेरे प्रणाम कहें।

प्रभु में आपका
रजनीश

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

7 फरवरी 61
अर्धरात्रि

पूज्य मां,

यह पत्र बहुत दुःखद क्षणों में लिख रहा हूं। पूरा नगर उपद्रव में डूबा हुआ है। सैंकडों मकान धू-धू कर अग्नि में जल रहे हैं। एक क्षुद्र सी बात को लेकर हिन्दु-मुस्लिम दंगा खड़ा हुआ है। यह और भी दुःख की बात है कि हिन्दुओं ने ही उपद्रव प्रारंभ किया है। अभी-अभी गोलियों और हजारों दंगाइयों की आवाज से पूरा नगर कांप गया है। मनष्य मूल में कितना क्रूर है। यह आंखों से देख रहा हूं। उसकी मनुष्यता जैसे बहुत ऊपरी है और जरा सी खरोंच उसे क्रुद्ध कर देती है। यह स्थिति राष्ट्र को खड़ा होने देने में बाधक है। इसके रहते हम विश्व में गौरवशाली सभ्यता को उपलब्ध नहीं कर सकते हैं। इसे बदलने को कुछ करना अनिवार्य है। पर मन बहुत चिंतित है। तीन दिन से निरंतर लोगों से मिल रहा हूं और उन्हें समझा रहा हूं। पत्र भी जल्दी में ही लिख रहा हूं! विस्तार से बाद में लिखूंगा। यह पहुंचेगा भी, इसमें भी में सन्देह है क्योंकि डाक-तार की सारी व्यवस्था बंद हो गई मालूम होती है।

सबको मेरे प्रणाम

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्चः गुरुजी का पत्र मिल गया है। निश्चिंत होते ही उन्हें लिखूंगा।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

पद-स्पर्श! अर्ध रात्रि का सन्नाटा। घर में बंद हूं। नगर में कर्फ्यू है। दंगा लगभग शांत हो गया है पर जनता का मन शांत नहीं है। संप्रदाय धर्म की हत्या के कारण बन गये हैं। यह प्रतीति मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट होती जा रही है कि जो जितना अधिक सांप्रदायिक है वह उतना ही कम धार्मिक होता है। संप्रदाय धर्म का शत्रु है। मनुष्य को इस रोग से मुक्त किये बिना स्वस्थ नहीं बनाया जा सकता है। धर्मानुभूति संगठता का नहीं, साधना का काम है। वह मूलतः वैयक्तिक है। उसके लिए समूहबद्ध होना आवश्यक ही नहीं अनर्थकारी भी है।

❖❖❖

मैं 16 तारीख की रात्रि 10 बजे गाडरवारा जा रहा हूं। आपको 15 फर. को सुबह चांदा से गाड़ी से मैं निकला था उसीसे निकलना चाहिए। नागपुर से 2 बजे फास्ट एक्सप्रेस बस मिलती है तो यहां 8 बजे पहुंचा देगी। यदि 15 को न निकल सकें तो 16 को ही निकलें। उस स्थिति में विवाह के बाद फिर मेरे पास रुकना होगा। जैसा भी हो मुझे तार से सूचना करदें ताकि मैं मोटर स्टैंड पर मिल सकूं। मैं अपना घर का पता नीचे दे रहा हूं।

योगेश भवन (ब्लूच होटल और सैल्स टैक्स ऑफिस के बीच में)

115 नेपियर टाउन। यह स्थान मोटर स्टैंड से पांच मिनिट के फासले पर ही है।

❖❖❖

आपका पत्र बहुत दिनों से नहीं है। कल सुबह या संध्या पाने की आशा करता हूं। शांता का ६ तारीख का पत्र कल मिला है। कल से ही डाक बंटनी शुरु हुई है। शांता ने लिखा है, "मिलने पर कुछ मांगना है, मिलेगा न!" उसे कह दें, "मांगने से दुनिया में कहीं कुछ मिलता है? छीनना पड़ता है! जो भी छीन लें मुझसे तो उसका है फिर छीनकर पाई हुई चीज में रस भी होता है!" उसे जल्दी ही मैं पत्र लिखूंगा।

❖❖❖

शारदा, बच्चों और नवांगतुक 'अजय; को स्नेह। सबको प्रणाम

रजनीश के प्रणाम
रविवार
12 फर. 1961

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पुनश्चः

पदम को—

प्रिय पदम! बहुत बहुत स्नेह! मैंने जो कहा था, याद है न? मां की आंख के लिए फिक्र करना। जो दवा वे निश्चिंत करें, नियमित रुप से दे देना। उनके स्वास्थ्य को सदा के लिए ऐसा ही बनाए रखना है। बहुत काम उनके शरीर से अभी होने को हैं। बच्चों को मेरा प्रेम पहुंचा देना। शांति लाल का बहुत स्मरण आता है। उसे कहना मैं भी उसे कभी याद आता हूं?

फड़के गुरुजी को—

प्रणाम! मां यहां थी तो आपके संबंध में आये दिन बातें होती रहीं हैं। मेरा मन भी आपकी तरफ खूब झुका हुआ है। लगता है। भविष्य में साथ रहना लिखा है। आपकी भी इच्छा यही है। प्रभु ने चाहा तो वह जल्दी ही पूरी हो जाने को है। शेष शुभ! क्या कर रहे हैं, लिखें।

रजनीश के प्रणाम
प्रभात
22.2.61

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पूज्य मां,

पद-स्पर्श और प्रणाम! आशीष पत्र आज मिला। साथ बीते थोड़े से दिन उसके साथ वापिस लौट आये हैं। मन स्मृति की सुगंध से भर गया है। आपने मेरे भविष्य के निर्विघ्न होने की प्रार्थना की है। आपकी प्रार्थना है तो यह पूरी होगी ही। प्रभु तो देने को तैयार है। मांगना भर आने की बात है। जहां तक मेरी बात है, मैं निश्चिंत हूं। इस निश्चिंत स्थिति पर कभी मुझे ही हैरानी हो जाती है। जगत् अभिनय दिखता है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। यह अभिनय ठीक से ले ले इतनी ही बात है। वह होगा यह मैं जानता हूं। आपके मिलने से यह और भी स्पष्ट होकर अन्तर्मन पर उतर आया है। प्रार्थना करें मेरे लिए—वैसे वह हर क्षण आपकी आंखों में भरी है; अनेक बार दिखते ही वह दीख आई है—पूरी वह होगी यह मैं असंदिग्ध होकर जानता हूं। मैं जो नहीं मांग सकता था—अभिमानी जो हूं!—उसे मांगनेवाला प्रभु ने मेरे लिए जुटा दिया है।

शेष शुभ है। सबको मेरे प्रणाम! अरविंद, शशि और क्रांति सब आपको प्रणाम भेज रहे हैं।

रजनीश के प्रणाम
अर्धरात्रि
22.2.61

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रभात! रात स्वप्न में दिखी हो—बहुत-बहुत निकट कि मैं भूल ही गया कि जो है वह स्वप्न है और देर तक उसे सच मानकर ही खोया रहा हूं। पांच ही बजने को थे और तुमने मेरे माथे पर अपना हाथ रख लिया है—आशीष भरा स्पर्श और मैं पलकों को बंद किये पड़ा हूं और तुम्हारी सांसों की मद्धिम आवाज निकट ही सुनाई पड़ रही है!............फिर जागा हूं और कैसे कहूं कि जागना कितना दुःखद था! काश! स्वप्न शाश्वत होते और कभी न टूटते—पर स्वप्न तो टूट ही जाते हैं और कौन जाने शायद इससे ही इतने मीठे लगते हैं।

कार्ड अभी-अभी मिला है। क्रांति का मन स्वस्थ हो रहा है। ईश्वर ने साथ दिया तो निर्दय होने से बच जाऊंगा। और सच कहूं मां, तो निर्दय हो भी नहीं सकता हूं। वह तत्व ही मुझमें नहीं है। विचारता हूं कभी तो महावीर और बुद्ध बड़े कठोर, हिंसक और पाषाण हृदय दिखते हैं। उतना पत्थर होकर मोक्ष मैं नहीं चाहता हूं। प्रेम के साथ ही मोक्ष सधे तो ठीक; अन्यथा प्रेम ही साध लूंगा और मोक्ष छोड़ दे सकता हूं।...........इतनी सरलता से मोक्ष छोड़ता देख शायद आश्चर्य हो? पर मां, मैं असंदिग्ध मन जानता हूं कि प्रेम और मोक्ष एक ही मनस्थिति के दो नाम मात्र हैं। प्रेम ही मोक्ष है। यह प्रेम वासना और मोह में दबा होता है। इसे इनके बोध को निकाल लें तो असीम आनंद, अनंत सौंदर्य और शाश्वत प्रिय—सब एक साथ ....।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात
8.3.61

पूज्य मां,

पद-स्पर्श! आपका आशीष-पत्र मिला। यह मैं देख पा रहा हूं कि आपकी आत्मा एक नवीन संगीत और सौंदर्य उपलब्धि के निकट आकर खड़ी हो गई है। एक पर्दा उठना चाहता है। सब लक्षण उसी की पूर्व-घोषणायें हैं। सुबह आने के पूर्व जैसे प्राची एक गहरी लालिमा से भर आती है उसी भांति आपकी चेतना एक मधुर लालिमा में आरक्त हो गई है। प्रभु सूरज भी उगाएगा इसका आश्वासन मुझे है।

❖❖❖

मैं महावीर जयंती के लिए बंबई के आमंत्रण को स्वीकार कर लिया हूं। श्री रिषभपाल जी का बहुत आग्रह है, टाल सकना संभव नहीं हुआ है। पर्यूषण में एक बार बंबई इस वर्ष बोला था। एक बार बोलने से तो कुछ होता नहीं है; अनेक बार बोलने से ही लोकमानस कुछ पकड़ता है। इस कारण भी बंबई आने का तय कर लिया है। बुलड़ाता चलने का मन था। अब किसी और निमित्त वहां चलने की व्यवस्था कर लेता। चलना वहां जरुर है।

❖❖❖

फड़के गुरुजी और चि. पदम के पत्र भी मिले हैं। जल्दी ही उत्तर दूंगा। दवा का अभी कोई परिणाम हुआ प्रतीत नहीं होता है। मिलूंगा तब पुनः आप विचार करना। शेष शुभ। सबको मेरे विनम्र प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि,
19.3.61

पूज्य मां,

प्रणाम! पत्र मिले। खूब खुशी हुई। मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूं; पर पत्रों से दीखता है कि आप मेरे स्वास्थ्य के लिए चिंतित हैं। शरीर तो स्वयं ही व्याधि है। वह पूर्ण कभी नहीं होता है क्योंकि मरणधर्मा है। अमृत जो है केवल वही पूर्ण हो सकता है। मेरी आस्था मूलतः उस अमृत में ही है। उसमें उपस्थित होना ही सच्चा स्वास्थ्य पाता है। इसलिए मेरे शरीर की चिन्ता में समय न लगायें। वह ठीक हो लेगा। अब मिलूंगा तो बिल्कुल ठीक होकर मिलूंगा। फिर वह ठीक हो या नहीं—बहुत विचारणीय वह नहीं है। एक प्रयोग मैं प्रारंभ किया हूं, शरीर को आदेश देकर सोने का। वह फलदायी दीखता है। प्रभु सहायक है इसलिए मुझे चिन्ता नहीं है। इसके बाद भी त्रुटि बची तो आपका प्रयोग करुंगा—पर दिखता है कि जरुरत पड़ने की नहीं है।

❖❖❖

श्री भीखमचंद जी देशलहरा के निमंत्रण पर मैं असमर्थता के लिए क्षमा मांग लिया था। आज उनका दूसरा पत्र आया है कि मैं आपको पहुंचने के लिए लिख दूं। महावीर जयंती पर आप बुलडाता चली जायें तो अच्छा हो। मेरी कमी पूरी हो जाएगी। मैं फिर कभी बुलडाता आने को उन्हें लिख दिया हूं।

❖❖❖

पंचमढ़ी में बंगला तय करने को आपने लिखा है। पारखजी का सुझाव ठीक है। लेकिन बिना पंचमढ़ी ही जाए बंगला कैसे तय होगा? आप शशि को लिखें तो अच्छा है। बरेली से पंचमढ़ी एकदम निकट है। वह जाकर बंगला तय कर ले। मैं भी उसे लिखने की सोचता हूं। बरेली से पुनः बहुत आग्रहपूर्ण निमंत्रण आया है पर अभी तो जाना नहीं हो सकता है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

महावीर जयंती के बहुत से आमंत्रणों में एक जयपुर का आमंत्रण भी है। अब तो बंबई के लिए बंध गया हूं। अन्यथा आपके साथ एक सुखद यात्रा हो सकती थी और वनस्थली जाकर सुशीला से भी मिलना हो सकता था।

❖❖❖

शेष शुभ है। सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश
के
प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पूज्य मां,

प्रणाम! पत्र मिला! शुभाशीष मन को छू गये। हृदय दिक् और काल की दूरी नहीं मानता है। वह उस सबसे दूर होकर भी निकट ही बना रहता है जो निकट है। मेरे लिए की गई सारी प्रार्थनाएं मुझ तक पहुंच जाती है।

मैं स्वस्थ और प्रसन्न हूं।

जीवन बहुत मधुर और आनंदपूर्ण हो उठा है। प्रभु की गीत-पंक्तियां दिशा-दिशा से आकर मेरे अंतस की अतिथिशाला को सौंदर्य से भरने लगी है।

अपूर्व और अखंड आनंद-सागर कितना निकट है और फिर भी हम जन्म-जन्मांतर को प्यासे बने रहे हैं! यह खेल भी खूब रहा है। यह आंख-मिचौनी अद्‌भुत थी। पर यह तो अब दीख रहा है। न दीखने पर कितना दुःख ढोया है? इसकी कोई गणना है क्या? दीख आने पर पर्दे उठ जाते हैं। रात्रि दिवस बन जाती है। दुःख में छिपा अंतर प्रगट हो जाता है। सब में छिपा प्रभु फिर कितना हंसता है—कितना हंसता है!

कल तो मैं बार-बार अपने से कहने लगा, ''सदित के दिवस गये। आनंद युग का प्रारंभ हुआ है।''

यह हाथ उठाकर सबसे कह देता है। इस आनंद को सबसे बांट लेने का मन है। बांटने से यह बढ़ता है। पूरा बांट देने से पूर्ण हो जाता है। इसका गणित और भी है। यहां शून्य ही पूर्ण होता है।

❖❖❖

सबको मेरे प्रणाम।

रात्रि

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पुनश्चः

श्री पारखजी को–

आपका कृपा पत्र मिला। बहुत अनुग्रहित हूं। कितना अच्छा होता कि आपके साथ राजस्था चल सकता! पर उन दिनों मेरी छुट्टियां नहीं हैं। मध्यप्रदेश में कॉलेज १ मई से बंद होते हैं। इस कारण इस बार तो साथ चलना नहीं हो सकेगा। कोई और सुयोग ढूंढना होगा। आपका स्वास्थ्य अब कैसा है? मैं आशा करता हूं कि अब तक आप मद्रास से घर आ गए होंगे और स्वस्थ होंगे। मेरे विनम्र प्रणाम स्वीकार करें।

चि. पदम् को–

तेरा पत्र मिला था। उत्तर में दे ही नहीं पाया और अब इतनी देर हो गई है कि क्या उत्तर दूं यही समझ में नहीं आया है। नाराज मत होना और पत्र देना। मां की नाक का बहना कम कर दिया है। यह जानकर बहुत प्रसन्न हूं। एक बात के लिए जरुर तुझे डांटना है–मां अस्वस्थ थी और उन्होंने खबर नहीं दी तो न सही–तुझे तो खबर देनी थी।

मां को–

१. पंचमढ़ी के लिए जो आप लिखीं वह ठीक है। मैं 1 मई से छुट्टी पाऊंगा। इसके बाद मई और जून फुरसत है जब भी चलने की सुविधा हो उन तिथियों को अभी से मुझे सूचित कर दें ताकि उन दिनों कोई काम अपने सिर न लूं।
२. क्रांति 15-20 दिन पूर्व एक पत्र दी थी और उसके साथ मेरे आपके 'आगका' से निकाले 5 चित्र भी थे–क्या वह पत्र मिला नहीं?
३. शीला, वर्मा जी और नाहर जी के पत्र बरेली से आए हैं। शीला में सभी संभावनाएं दीखती हैं। सबने आपका स्मरण किया है। शेष शुभ है। 28 मार्च को बम्बई जा रहा हूं और 1 या 2 अप्रैल तक वापिस होने को हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पूज्य मां,

प्रणाम! कल संध्या पत्र मिला है। मैं पत्र दिया था, प्रभु जाने उसका क्या हुआ? आप बाट देखती रहीं–मुझे क्या पता कि भेजा पत्र पहुंचने को नहीं है। मैं आज ही तट संबंध में पोस्ट ऑफिस के अधिकारियों को लिख रहा हूं–कुछ और पत्र भी इसी भांति गुम गए हैं।

❖❖❖

मैं बम्बई हो आया हूं। यात्रा सुखद और कार्यक्रम भला रहा है। श्री साहुश्रेयंश प्रसादजी, अभयराज जी बलदेव, ऐकाजी और ताराचंद भाई से बाल सेवा मंदिर के संबंध में भी बातें हुई हैं। इन सबकी सहानुभूति उपलब्ध हो सकती है।

❖❖❖

चांदा आने की बात पिछले पत्र में आप लिखी थीं। गर्मियों में तो डर लगता है! पंचमढ़ी फिर आ ही रही हैं। पंचमढ़ी यदि आने की बात न हो तो मैं चांदा आ जाऊंगा। अच्छा तो यही है कि १०-१५ दिन पंचमढ़ी रहें।

शेष शुभ! मैं प्रसन्न हूं। सबको मेरे प्रणाम।

१५ अप्रैल १९६१
प्रभात,

रजनीश
के
प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पूज्य मां,

प्रणाम! आपका पत्र मिला। खुशी हुई। इस बीच आप पर बहुत काम रहा मैं जानता हूं कि सेवा का सब काम आपकी क्षमता से सदा कम है इसलिए निश्चिंत हूं।

प्रेम काम को आनंद में परिणत कर देता है। जिस कार्य को, जिस सेवा को आपने अपने हाथ में लिया है उसमें आप अपने को जितना बिठा देंगी उतनी ही उपलब्धि होगी। बीज जैसे अपने को खोकर वृक्ष में पा लेता है; वैसे ही व्यक्ति सेवा और प्रेम में अपने को खोकर विराट में पा लेता है।

खोना ही पाना है। अपने को सिकोड़े सुरक्षित रखना ही खो देना है। यह जीवन का विज्ञान है। यह विज्ञान बड़ा उल्टा है। साधारण गणित के यह एकदम विपरीत है। ईसा ने कहा है जो अपने को खोता है वही प्रभु को पा सकता है।

मेरी प्रार्थना यही है कि आप मिट जायें। इस तरह वह मिलेगा जिसे पाने को यह अवसर है।

❖❖❖

पंचमढ़ी 10 को जाने को आप लिखी हैं। देशलहरा जी वहां पंचमढ़ी पहुंच रहे हैं? फिर आपके पास पारखजी तथा और जैन आने को हैं। यहां से मैं, क्रांति और संभवतः अरविंद सभी चलेंगे। जब भी ठीक समझें आप यहां आ जायें और यहां से हम चलें। संभव है कि डेरिया जी का ताराचंद भाई कोठारी भी वहां पहुंचे। देशलहरा जी के यहां कितने जनों की व्यवस्था हो सकेगी यह पता तो चलें अन्यथा फिर कोई व्यवस्था करनी होगी।

❖❖❖

एक स्वप्न कल देखा हूं। बहुत आदेशपूर्ण था आप मिलेंगी तब बातें होंगी। उस स्वप्न में मुझे कहा गया है कि मैं आपके और अपने बीच मोह विकसित न होने दूं। वह दोनों की प्रगति में बाधा बन जायेगा। यह आदेश सामयिक है। भला लगा। अभी कोई डर तो न था पर मन की कौन कहे?

सबको मेरे विनम्र प्रणाम।
25 अप्रैल 1961
दोपहर

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

रात्रि पूरी बीत गई है और स्टेशन के पार सूरज फूट पड़ा है। कम्पार्टमेंट के झरोखों से नई लहर किरणें भीतर आ रही हैं। गाड़ी और लेट होती गई है और अभी नरसिंहपुर पर ही पड़ी है। मैं इस बीच जहां आप बैठ छोड़ गई हैं, वहीं बैठा रहा हूं। इतना है कि अकेला नहीं हूं। भुसावल-इटारसी के बीच आप जितना साथ थीं, उससे ज्यादा अब और निकट हैं।

यह बुलढ़ाता यात्रा इतनी सुखद होगी इसका ख्याल नहीं था। एक-एक क्षण मधु-सिक्त रहा है। जीवन सच ही कितना आनंदपूर्ण है। केवल उसको देखना भर आना चाहिए। यह जीने का विज्ञान धीरे-धीरे लुप्त हो गए हैं। इसलिए इतना दुःख है, इतनी पीड़ा है और सब कुछ कुरुप और टेढ़ा-मेढ़ा हो गया है। इसे सौंदर्य और प्रेम में, शांति और आनंद में परिणत किया जा सकता है। वह परिणति कितनी सरल है। जानते ही सब अपने आप हो जाता है। जहां कुरुप थे वहां सुन्दर होते देर नहीं लगती है। अज्ञान का छोटा सा पर्दा कितना काला है और कितने अंधेरे रास्तों पर यात्रा करनी होती है।

मैं सबसे कहना चाहता हूं। "इस दुःख में तुम अपने ही कारण हो। आंखें खोलो देखो, अंधेरा कहीं भी नहीं है; अब आंखें तुमने बंद कर रखी है। इसलिए रात्रि मालूम हो रही है।"

रात्रि है ही नही बस आंखें बंद हैं। खोलो और प्रभु निकट ही मिल जाता है।

ट्रेन से
23 जन. 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

कल रात्रि पानी पड़ा है। मौसम गीला है और अभी-अभी धीमी फुहार आनी शुरु हुई है। हवायें नम हो गई हैं और वृक्षों से गिरते पत्तों को द्वार तक ला रही हैं। लगता है पतझड़ हो रही है और बसन्त के आगमन की तैयारी है। रास्ते पत्तों से ढक रहे हैं और उन पर चलने में सूखे पत्ते मधुर आवाज करते हैं।

मैं उन पत्तों को देर तक देखता रहा हूं। जो पक जाता है, वह गिर जाता है। पत्तों पर पत्ते सुबह से शाम तक गिर रहे हैं। वृक्षों को उसके गिरने से कोई पीड़ा नहीं हो रही है—इससे जीवन का एक अद्‌भुत नियम समझ में आता है। कुछ भी कच्चा तोड़ने में कष्ट है। पकने पर टूटना अपने से हो जाता है।

एक संन्यासी आए हैं। त्याग उन्हें आनंद नहीं बन पाया है। वह कष्ट है और कठिनाई है। संन्यास अपने को नहीं आया, लाया गया है। मोह के, अज्ञान के, परिग्रह, अहंकार के पत्ते अभी कच्चे थे। जबरदस्ती की है—पत्ते तो टूट गये पर पीड़ा पीछे छोड़ गए हैं। वह पीड़ा शांति नहीं आने देती है। सोचता हूं कि आज शाम जाकर पके पत्तों के टूटने का रहस्य उन्हें बता आऊं। संन्यास पहले नहीं है। ज्ञान है प्रथम। उसकी आंच में संसार पके पत्ते की भांति गिर जाता है। संन्यास लाया नहीं जाता, पाया जाता है।

ज्ञात की क्रांति के बाहर त्याग कष्ट नहीं, आनंद हो जाता है।

दोपहर
25 जन. 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

25.1.1962

प्रिय मां,

संध्या रुकी सी लगती है। पश्चिमोन्मुख सूरज देर हुए बादलों में छिप गया है पर रात्रि अभी नहीं हुई है। एकांत है। घर पर अकेला ही हूं। मन में भी वहां हूं जहां शून्य है। मन भी अद्‌भुत है। प्याज की गांठ की तरह अनुभव होता है। एक दिन प्याज को देखकर एक उपमा सूझी थी। उसे छीलता गया, छीलता गया—पर्तों पर पर्तें निकलती गईं और फिर हाथ में कुछ भी न बचा। मोटी, खुरदरी पर्तें, फिर मुलायम चिकतनी पर्तें फिर कुछ भी नहीं। मन भी ऐसा ही है। उघाड़ते चलें स्थूल पर्तें फिर सूक्ष्म पर्तें फिर शून्य। विचार, वासनायें, अहंकार और बस। इनके पार शून्य है। इस स्थिति को ही मैं ध्यान में आना कहता हूं। यह शून्य ही हमारा स्वभाव है। कहें आत्मा चाहें कहें अनात्मा। शब्द से कुछ अर्थ नहीं है। विषम जहां नहीं है, वहां है वह, जो है। पश्चिम के एक दार्शनिक ह्यूम ने कहा है, ''जब भी अपने में जाता हूं कोई 'मैं' मुझे वहां नहीं मिलता है। या तो विचार से टकराता हूं, या किसी वासना से या स्मृति से।'' यह बात ठीक ही है। ह्यूम थोड़ा और गहरा जाता तो वहां पहुंच जाता जहां टकराने को कुछ भी नहीं है। वही है शून्य। उस शून्य पर ही सारा खेल है। सब सतह पर ही रुक जाते हैं। इससे आत्म-परिचय नहीं हो पाता है। सतह पर संसार है। केन्द्र में फल है।

इस केन्द्र पर पहुंचना कितना आनंददायी है? इस केन्द्र पर पहुंचकर नया जन्म हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि 1 फर. 1962

प्रिय मां,

एक शव यात्रा से लौटा हूं। कल सांझ ही उनसे कहकर आया था चिंता न करें। कहते हैं चिंता ही चिता बन जाती है। और चौबीस घंटे बाद ही उनकी चिता से लौटा हूं। ऐसा आभास मुझे कल ही हुआ था। शरीर उनका रुग्ण था पर मन उससे भी ज्यादा था। शायद मन की रुग्णता ही शरीर से भी निकली थी। प्रत्येक व्यक्ति कितना व्यर्थ का मानसिक भार ढोता है। यह भार और लगाव ही तोड़ देता है। जिस जीवन से शांति और आंनद मिल सकता था। उससे केवल कांटें ही मिल पाते हैं।

फूल बहुत हैं। शायद फूल ही फूल हैं। पर हमें कांटों की ही आदत पड़ी है। जीवन का आनंद और प्रकाश दीखता ही नहीं है। सागर के बीच ही हम प्यासे रह जाते हैं।

फकीर ने कहा है, "यह सुन बहुत हंसी आती है कि मछली सागर में ही प्यासी है!" आज उस चिता के किनारे खड़े-खड़े मुझे कबीर की हंसी सुनाई पढ़ने लगी थी। मेरा मन भी हुआ कि हंसू, खूब हंसू। जो व्यक्ति चला गया वह जीवन भर व्यर्थ की अशांति से घिरा था। काल्पनिक उसका दुःख है। यूं तो सभी दुःख काल्पनिक है। दुःख है क्योंकि हम अपने में नहीं है। अपने में न होना स्वप्न में होना है। स्वप्न में हैं इससे दुःख है। स्वप्न छोड़ें तो आनंद ही आनंद शेष रह जाता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

कल दोपहर एक पहाड़ी के अंचल में थे। धूप-छाया के विस्तार में बड़ी सुखद घड़ियां बीतीं। निकट ही था एक तालाब और हवा के तेज थपेड़ों ने उसे बेचैन कर रखा था। लहरें उठतीं, गिरतीं और ढूंढतीं। उसका सब कुछ विक्षुब्ध था।

फिर हवायें सो गईं और तालाब भी सो गया।

मैंने कहा, "देखो! जो बेचैन होता है वह शांत भी हो सकता है। बेचैनी अपने में शांति को छिपाये हुए है। तालाब अब शांत है। तब भी शांत था। लहरें ऊपर ही थीं भीतर पहले भी शांति थी।"

मनुष्य भी ऊपर ही अशांत है। लहरें ऊपर ही हैं। भीतर गहराई में जाना मौन है। विचारों की हवाओं से दूर चलें और शांत सरोवर के दर्शन शुरु हो जाते हैं। यह सरोवर अभी और यहीं पाया जा सकता है। समय का प्रश्न ही नहीं है क्योंकि समय वहीं तक हैं जहां तक विचार हैं। ध्यान समय के बाहर है। ईसा ने कहा है, "और वहां समय नहीं है।"

समय में दुःख है। समय दुःख है। समयातीत होना आनंद में होना है। समयातीत होना आनंद होना है।

चलो मित्र! समय के बाहर चलें—वहीं हम हैं। समय के भीतर जो दीखता है वह समय के बाहर ही है। इतना जानना ही चलना है। जाना कि हवायें रुक जाती हैं और सरोवर शांत हो जाता है।

7 फर. 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक स्वप्न से जागा हूं। जागते ही एक सत्य दीखा है। स्वप्न में मैं भागीदार भी था और दृष्टा भी था। स्वप्न में जब तक था, दृष्टा भूल गया था, भागीदार ही रह गया था। अब जाकर देखता हूं कि दृष्टा ही था, भागीदार प्रक्षेप था।

स्वप्न जैसा है, संसार भी वैसा ही है। दृष्टा चैतन्य ही सत्य है, शेष सब कल्पित है। जिसे हमने 'मैं' जाना है, वह वास्तविक नहीं है। उसे भी जो जान रहा है, वास्तविक वही है।

यह सबका दृष्टा तत्व सबसे मुक्त और सबसे अतीत है। उसने न कभी कुछ किया है, न कभी कुछ हुआ है। वह बस है।

असत्य 'में' स्वप्न 'में' शांत हो जाये तो जो 'है' वह प्रगट हो जाता है। इस 'है' को हो जाने देना मोक्ष है, कैवल्य है।

प्रभातः
11 फर. 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : कल संध्या पत्र मिला है। बुलढ़ाता के संबंध में सोचा ही। टेप रिकार्डर मशीन पारख जी ले आए यह अच्छा है। शेष शुभ! अमृत से मेरे वायु-विकार में अंतर पड़ रहा है। सबको मेरे विनम्र प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

यात्रा से
सतता (स्टेशन विश्रामालय)
संध्या : 15 फर. 1962

प्रिय मां,

एक घने कोलाहल के बीच बैठा हूं। विश्रामालय में भीड़-भाड़ है। सब बातचीत में संलग्न है और एक भी व्यक्ति शांत नहीं मालूम होता है।

प्रत्येक के बाहर जितनी बात-चीत है उतनी ही भीतर भी मालूम होती है। इस विक्षिप्त मनोदशा ने सारे युग को पकड़ लिया है।

एक नये व्यक्ति मेरे पास आकर बैठ गये हैं। कोई राजनैतिक नेता मालूम होते हैं। अकेले हैं। बातचीत के लिए उत्सुक हैं। ऐसा लगता है कि मैं ही शिकार बनूंगा। उनकी आंखों में, उनके चहरे पर विचार तैर रहे हैं। आखिर उन्होंने बोलना शुरु कर दिया है। आशावादी बातें—चुनाव, राजनीति। मैं सुनता हूं और और मुझे बहुत हंसी आती है। हर आदमी एक रद्दी की टोकरी हो गया है। दूसरों की जूठन और उधार खानें सब उसें इकट्ठी हो ज़ाती हैं। फिर इन्हीं को वह दूसरों पर उलीचने लगता है। इसमें कोई अशिष्टता भी नहीं है। दूसरों के घर में कचरा फेंकने में शायद हम डरें पर दूसरों के सिर पर फेंकने में कोई नहीं डरता है!

मैं चुप हूं, इससे वे कुछ ऊब रहे हैं। बातचीत का ताना-बाना आगे नहीं बढ़ पा रहा है। हां हूं भी मैंने नहीं की है। आखिर उन्होंने पूछा है क्या आप बोलते नहीं हैं? मौन हैं?

मैं फिर भी चुप हूं। उनकी आंखों को देख रहा हू। वे शायद सोच रहे हैं कि किस पागल से मिलना हो गया है! अंततः मैंने कहा है, ''एक समय बातचीत की बीमारी मुझे भी थी। उस पागलपन से मैं अब मुक्त हो गया हूं। प्रत्येक को हो जाना चाहिए। विचार विकार हैं। उनसे ऊपर उठकर जीवन का अर्थ और सत्य दीखता है। वह सत्य मुक्तिदायी है।'' वे बोले, ''सोचूंगा।'' मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा, ''सोचियेगा? वही तो बीमारी है। केवल देखिए—अपनी बीमार आदत को देखिए। और अभी और यही मुक्ति हो जाती है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

इधर पानी पड़ा है। उसका गीलापन अभी तक है और मिट्टी से सौंधी सुगंध उठ रही है। सूरज भी ऊपर उठ आया है और गायों का एक झुंड जंगल जा रहा है। उनकी काठ की घंटिया बड़ी मधुर होकर बज रही हैं। मैं थोड़ी दूर तक उन्हें सुनता रहा हू। अब गायें दूर निकल गई हैं और घंटियों की मीठी प्रतिध्वनि ही बाकी रह गई है।

इतने में कुछ लोग मिलने आए हैं। पूछ रहे हैं मृत्यु क्या है?

मैं कहता हूं, ''जीवन को हम नहीं जानते हैं। इसलिए मृत्यु है। स्व-विस्मरण मृत्यु है। अन्यथा मृत्यु नहीं है केवल परिवर्तन है। 'स्व' को न जानने से एक कल्पित स्व हमने निर्मित किया है। यही है हमारा ''मैं''—''अहंकार''। यह है नहीं केवल आसता है। यह झूठी इकाई ही मृत्यु में टूटती है। इनके टूटने से दुःख होता है क्योंकि इसीसे हमने अपना तादात्म्य स्थापित किया था। जीवन में ही इस भ्रांति को पहचान लेना मृत्यु से बच जाना है। जीवन को जान लो और मृत्यु समाप्त हो जाती है। जो है वह अमृत है जो जानते ही नित्य, शाश्वत जीवन उपलब्ध हो जाता है।

कल एक सभा में यही कहा हूं, ''स्व-ज्ञात जीवन है, स्व-विस्मरण मृत्यु है।

रजनीश के प्रणाम

10.2.69

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि : 24.2.62

प्रिय मां,

चांद ऊपर उठ रहा है। दरख्तों को पार करता उसका मद्धिम प्रकाश रास्ते पर पड़ने लगा है और आम्र-फूलों की भीनी गंध से हवायें लुवासित हो रही हैं।

मैं एक विचार गोष्ठी से लौटा हूं। जो थे वहां, अधिकतर युवक थे। आधुनिकता से प्रभावित और उत्तेजित। अनास्था ही जैसे उनकी आस्था है। निवेध स्वीकार है। उनमें से एक ने कहा, ''मैं ईश्वर को नहीं मानता हूं, मैं स्वतंत्र हूं।'' इस एक पंक्ति में तो युग की मनःस्थिति प्रतिबिम्बित है। सारा युग इस स्वतंत्रता की छाया में है। बिना यह जाने कि यह स्वतंत्रता आत्म-हत्या है।

क्यों है यह आत्म हत्या? क्योंकि अपने को अस्वीकार किये बिना ईश्वर को अस्वीकार करना असंभव है।

एक कहानी मैंने उनसे कही। कवि मोनशे ने उस पर एक कविता लिखी है, 'विद्रोही अंगूर।' ईश्वर के भवन पर फैली एक अंगूर-बेल थी। वह फैलते-फैलते, बढ़ते-बढ़ते, आज्ञा मानते-मानते थक गई थी। उसका मन परतंत्रता में ऊब गया था और फिर एक दिन उसने भी स्वतंत्र होना चाहा था। वह जोर से चिल्लाई कि सारे आकाश सुन लें, 'मैं अब बढ़ूंगी नहीं।'

'मैं अब बढ़ूंगी नहीं।'

'मैं अब बढ़ूंगी नहीं।'

यह विद्रोह निश्चय ही मौलिक था क्योंकि स्वभाव के प्रति ही था। ईश्वर ने बाहर झांककर कर कहा, ''न बढ़ो, बढ़ने की आवश्यकता ही क्या है!'' बेल खुश हुई। विद्रोह सफल हुआ था। वह न बढ़ने के श्रम में लग गई। पर बढ़ना न रुका, न रुका। वह न बढ़ने में लगी रही और बढ़ती गई, बढ़ती गई.........और ईश्वर यह सब पूर्व से ही जानता था।

यही स्थिति है। ईश्वर हमारा स्वभाव है। वह हमारा आंतरिक नियम है। उससे दूर नहीं जाया जा सकता है। वह हुए बिना कोई मार्ग नहीं है। कितना ही अस्वीकार करें उसे, कितना ही स्वतंत्र होना चाहें उससे, पर उससे मुक्ति नहीं है; क्योंकि वह हमारा स्व है। वस्तुतः वह ही है और हम कल्पित हैं। इससे कहता हूं उससे नहीं, उसमें ही मुक्ति है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

टिक् टिक् टिक्......घड़ी फिर से चलनी शुरु हो गई है। वह अपने में तो चलती ही थी; मेरे लिए बन्द हो गई थी या ठीक हो कि कहूं कि मैं ही यहां बन्द हो गया था जहां कि उसका चलना है!

एक दूसरे समय में चला गया था। आंखें बंद किये बैठा था कि स्वप्न-चित्र चलने लगे थे। दिव्य-स्वप्न। देखता रहा, देखता रहा....काल का एक और ही क्रम था और फिर काल-क्रम ही टूट गया था।

समय के बाहर खिसक जाना कैसा आनंद है। चित्त पर चित्र बंद हो जाते हैं। उनका होना ही काल है। वह मिटे कि काल मिटा फिर शुद्ध वर्तमान ही रह जाता है। वर्तमान कहने को समय का अंग है; वस्तुतः वह काल-क्रम के बाहर है, अतीत है। उसमें होना स्व में होना है।

उस जगत् से जब लौटा हूं। सब कितना शांत है। दूर किसी पक्षी का गीत चल रहा है; पड़ौस में कोई बच्चा रोता है और एक मुर्गा बोल रहा है।

ओह! जीना कितना आनंद है और अब मैं देखता हूं कि मृत्यु भी आनंद है क्योंकि जीवन उस में भी समाप्त नहीं होता है। वह भी जीवन की एक स्थिति है।

दोपहर
2 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय पारख जी,

प्रणाम! कृपा-पत्र मिला है। उसकी लम्बाई से बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं जानकर ही पुस्तिका नहीं भेजा था और जो कारण आपने अनुमान किया वह शत-प्रतिशत ठीक है! जाग्रत जो है उन्हें क्या भेजूं यह सोचकर ही नहीं भेजा हूं!

मेरे आने के लिए पूछा है। 30 अप्रैल के पूर्व तो आने में असमर्थ हूं। उसके बाद ही कॉलेज बंद होंगे। मां बाल मंदिर वार्षिकोत्सव रखती हैं तो उसको ध्यान में रखकर आऊंगा। अन्यथा मई के पहले सप्ताह में कोई तारीख निश्चित कर लूंगा। दवा के अस्थायी प्रभाव के संबंध में लिखा है सो ध्यान रखें कि समझदार डाक्टर अस्थायी प्रभाव वाली दवा ही देते हैं अन्यथा उनकी आवश्यकता ही फिर क्या रह जायेगी?

शेष शुभ है। सबको—श्री जयन्तवारजी, यशोदा जी और अन्य को मेरे विनम्र प्रणाम कहें।

दोपहर
6 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

दोपहर की शांति। उजली धूप और पौधे सोये-सोये से। एक जामुन की छाया तले दूब पर आ बैठा हूं। रह-रहकर पत्ते ऊपर गिर रहे हैं। अंतिम पुराने पत्ते मालूम होते हैं। सारे वृक्षों पर नयी पत्तियां आ गई हैं। और नयी पत्तियों के साथ न मालूम कितनी नई चिड़ियों और पक्षियों का आगमन हुआ है। उनके गीतों का जैसे कोई अंत ही नहीं है। कितने प्रकार की मधुर ध्वनियां इस दोपहर को संगीत दे रही हैं। सुनता हूं जैसे सुनता रहता हूं और फिर मैं भी एक अभिनव संगीत...लोक में चला जाता हूं।

पथ का लोक संगीत का लोक ही है।

यह संगीत प्रत्येक के पास है। इसे पैदा नहीं करना होता है। केवल वह खुल पड़े इसके लिए मौन होना होता है। चुप होते ही कैसा एक पर्दा उठ जाता है। जो सदा से था; वह दीख पड़ता है। जो सदा से था; वह खुल पड़ता है। और पहली बार ज्ञात होता है कि हम दरिद्र नहीं है। एक अंनत संपत्ति का पुनः अधिकार मिल जाता है। फिर कितनी हंसी आती है—जिसे खोजते थे वह भीतर ही बैठा था!

6 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : पत्र मिले हैं। कॉलेज 30 अप्रैल को बंद होंगे। बाल मंदिर वार्षिकोत्सव उसके बाद ही रखें। विवरण पत्रिका में बाल मंदिर का विकास-इतिहास और भावी योजना प्रकाशित करनी चाहिए। उसके पूर्व राष्ट्र के प्रमुख नेताओं और विचारकों तथा अन्य बाल-मंदिरों के निर्माताओं के शुभ-संदेश बुला लेने चाहिए जिन्हें विवरण पत्रिका में प्रकाशित किया जा सके। मेरा संदेश जब चाहे मैं भेज दूंगा या मैं पहले जो संदेश भेजा था उसका ही उपयोग कर लें। शेष शुभ! सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

सुबह आंखें खोली। अंधेरा था और खिड़की के बाहर अभी तारे थे। देर तक चुपचाप पड़ा रहा। सब शांत था। नींद टूट गई थी पर मन अभी नहीं जागा था। फिर आहिस्ता-आहिस्ता मन जागने लगा। विचार तैरते हुए आने लगे। मैं देखता रहा। विचार बाहर से आते हैं। स्व जहां है—चेतना जहां है—वहां विचार पैदा नहीं होते हैं। इसे स्पष्ट देखा जा सकता है। विचार मन में पैदा होते हैं। मन में रहते हैं और स्व के चारों ओर घूमते हैं। इससे कोई विचार हमारा नहीं है। सब विचार पर हैं, पराये हैं, परिधि पर हैं। जहां केन्द्र है वहां विचार नहीं हैं, इसलिए जो विचार में है वह केन्द्र पर नहीं पहुंच पाता है।

विचार में होना केन्द्र के बाहर होना है। वही अज्ञान है। विचारों की परिधि के बाहर कूद जाना ज्ञान है। देखें; विचारों को देखें—और उसका पर होना जान लें। यह जान लेना ही उनके बाहर निकलना हो जाता है।

8 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

सुबह एक पत्र मिला है। किसी ने उसमें पूछा है कि जीवन दुःख में घिरा है फिर भी आप आनंद की बातें कैसे करते हैं? जो है उसे देखें तो आनंद की बातें कल्पना प्रतीत होती है।

उसे उत्तर में लिख रहा हूं कि निश्चय ही जीवन दुःख में घिरा है। चारों ओर दुःख है पर जो घिरा है वह दुख नहीं है। जब तक जो घेरे हैं उसे देखते रहेंगे दुःख ही मालूम होगा पर जिस क्षण उसे देखने लगेंगे जो कि घिरा है तो उसी क्षण दुःख असत्य हो जाता है और आनंद सत्य हो जाता है। कुल दृष्टि परिवर्तन की बात है। जो दृष्टि दृष्टा को प्रगट कर देती है वही सम्यक् दृष्टि है। दृष्टा के प्रगट होते ही सब आनंद हो जाता है क्योंकि आनंद उसका स्वरुप है। जगत् फिर भी रहता है पर नया हो जाता है। आत्म अज्ञान के कारण उसमें जो कांटे मालूम हुए थे वे अब कांटे नहीं मालूम होते हैं।

दुःख की सत्ता वास्तविक नहीं है क्योंकि परवर्ती अनुभव से वह खंडित हो जाती है। जागने पर जैसे स्वरुप अवास्तविक हो जाता है वैसे ही स्व-बोध पर दुःख हो जाता है।

आनंद सत्य है कारण वह स्व है।

13 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

कल एक जगह बोला हूं।

कहा, मैं तुम्हें असंतुष्ट करना चाहता हूं। एक दिव्य-व्यास, एक अलौकिक-अतृप्ति सबमें पैदा हो यही मेरी कामना है। मनुष्य जो है उसमें तृप्त रह जाना मृत्यु है। मनुष्य विकास का अंत नहीं है। वह भी एक सीढ़ी है। एक विशाल-सोपान है। जो उसमें प्रगट है वह अप्रगट की तुलना में कुछ भी नहीं है। जो वह है, वह उसकी तुलना में जो कि वह हो सकता है, कुछ न होने के बराबर ही है।

धर्म तृप्ति की इस मृत्यु से प्रत्येक को जगाना चाहता है।

मनुष्य को मनुष्यता का अतिक्रमण करना है।

यह अतिक्रमण ही उसे दिव्यता में प्रवेश देता है।

यह अतिक्रमण कैसे होगा?

एक परिभाषा को समझें तो अतिक्रमण की प्रक्रिया भी समझ में आ सकती है।

पशुता = विचार-प्रक्रिया के पूर्व की स्थिति।

मनुष्य = विचार-प्रक्रिया की स्थिति।

दिव्यता = विचार-प्रक्रिया के अतीत की स्थिति।

विचार-प्रक्रिया के घेरे के पार चलें तो वेत्ता दिव्यता में पहुंच जाती है। विचार को पार करना मनुष्य को अतिक्रमण कर जाता है।

दोपहर
16 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक कागज की नाव पानी में डूब गई है।

कल कुछ रेत के घरोंदे बच्चों ने बनाए थे वे भी मिट गये हैं।

रोज नावें डूबती हैं और रोज घरोंदे टूट जाते हैं।

एक महिला आई थीं। सपने उनके पूरे नहीं हुए हैं। जीवन से मन उनका उचाट है। आत्म हत्या के विचार ने उन्हें पकड़ लिया है। आंखें गड्डों में चली गई हैं और सब व्यर्थ मालूम होता है।

मैंने कहा, "सपने किसके पूरे होते हैं। सब सपने अंततः दुःख ही देते हैं; कारण, कागज की नावें कहीं भी तो कितनी दूर बह सकती हैं? इसमें भूल सपनों की नहीं है। वे तो स्वभाव से दुष्पुर हैं। भूल हमारी है। जो सपना देखता है, वह सोया है जो सोया है उसकी कोई उपलब्धि वास्तविक नहीं है। जागते ही सब पाया, न पाया हो जाने को है। सपने नहीं, सत्य देखें। जो है उसे देखें। उसे देखने से मुक्ति आती है। वह नाव सच्ची है—वही जीवन की परिपूर्णता तक ले जाती है।

स्वप्नों में मृत्यु है। सत्य में जीवन है।

स्वप्न यानी निद्रा। सत्य यानी जाग्रति। जागें और अपने को पहचानें। जब तक स्वप्न में मन है तब तक जो स्वप्न को देख रहा है वह नहीं दीखता है। वही सत्य है। वही लव्य है। उसे पाते ही डूबी नावों और तैर गये घरोंदों पर केवल हंसी मात्र आती है।

दोपहर
18 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : भारत जैन महामंडल का अधिवेशन 7-8 अप्रैल को जयपर में होना निश्चित हुआ है। निमंत्रण मिला है। संभव है कि सूचना देशलहरा जी आपको भी पहुंच गई होगी। कल यहां से निकलूंगा, किस ट्रेन में वो आपको बाद में लिखूंगा।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

सांझ से ही आंधी पानी है। हवाओं ने थपेड़ों से बड़े-बड़े वृक्षों को हिला डाला है। बिजली बंद हो गई और नगर में अंधेरा है।

घर में एक दीपक जलाया गया है।

उसकी लौ ऊपर की ओर उठ रही है दीया भूमि का भाग है पर लौ न मालूम किसे पाने निरंतर ऊपर की ओर भागती रहती है।

लौ की भांति मनुष्य की चेतना है।

शरीर भूमि पर तृप्त है पर मनुष्य में शरीर के अतिरिक्त भी कुछ है जो निरंतर भूमि से ऊपर उठना चाहता है। यह चेतना ही, यह अग्निशिखा ही मनुष्य का प्राण है। यह निरंतर ऊपर उठने की उत्सुकता ही उसकी आत्मा है।

यह लौ है इसलिए मनुष्य है। अन्यथा सब मिट्टी है। यह लौ पूरी तरह जले तो जीवन में क्रांति घट जाती है। यह लौ पूरी तरह दिखाई देने लगे तो मिट्टी के बीच ही मिट्टी को पार कर लिया जाता है।

मनुष्य एक दीया है। मिट्टी भी है उसमें, पर ज्योति भी है। मिट्टी पर ही ध्यान रहा तो जीवन व्यर्थ हो जाता है। ज्योति पर ध्यान जाना चाहिए। ज्योति पर ध्यान जाते ही सब कुछ परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि मिट्टी में ही प्रभु के दर्शन हो जाते हैं।

रात्रि 22 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र मिल गया है। जयपुर चलना है। मैं 5 अप्रैल की रात्रि जबलपुर-बीना पैसेन्जर से निकलूंगा जो कि 6 अप्रैल को सुबह 6-30 बजे बीना पहुंचती है। वहां 9-30 बजे पंजाब मेल मिलेगी जो कि शाम को आगरा पहुंचाती है। आगरा में लगी हुई एक्सप्रेस जयपुर के लिए मिलती है जो कि 7 अप्रैल की सुबह 4 बजे जयपुर पहुंचायेगी। आप 5 अप्रैल की सुबह जी. टी. से निकलें और बीना पर मेरी प्रतीक्षा करें। बीना से साथ हो जायेगा। एक ही असुविधा होगी कि आपको बीना पर 6-7 घंटे रुकना होगा।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

२५ मार्च १९६२

प्रिय मां,

दोपहर तप गई है। पलाश वृक्षों पर फूल अंगारों की तरह चमक रहे हैं।

एक सुनसान रास्ते से गुजरता हूं। बांसों के घने झुरमुट हैं और उनकी छाया भली लगती है।

कोई अपरिचित चिड़िया गीत गाती है। उसके निमंत्रण को मान वहीं रुक जाता हूं।

एक व्यक्ति साथ हैं। पूछ रहे हैं, "क्रोध को कैसे जीतें, काम को कैसे जीतें?" यह बात तो अब रोज-रोज पूछी जाती है। इसके पूछने में ही भूल है। यही उनसे कहता हूं। समस्या जीतने की है ही नहीं। समस्या मात्र जानने की है। हम न क्रोध को जानते हैं और न काम को जानते हैं। यह अज्ञान ही हमारी पराजय है। जानना जीतना हो जाता है। क्रोध होता है, काम होता है तब हम नहीं होते हैं। होश नहीं होता इसलिए हम नहीं होते हैं। इस मूर्च्छा में जो होता है वह बिल्कुल यांत्रिक है। मूर्च्छा टूटते ही पछतावा आता है पर वह व्यर्थ है क्योंकि जो पछता रहा है वह काम के पश्चात् पुनः खो जाने को है। यह न हो पावे—अमूर्च्छा आती रहे—जाग्रति—सम्यक् स्मृति बने रहे तो पाया जाता है कि न क्रोध है, न काम है। यांत्रिकता टूट जाती है और फिर किसी को जीतना नहीं पड़ता है। दुश्मन पाये ही नहीं जाते हैं।

एक प्रतीक-कथा से समझें। अंधेरे में कोई रस्सी सांप दीखती है। कुछ उसे देखकर भागते हैं; कुछ लड़ने की तैयारी रखते हैं। दोनों ही मूल में है क्योंकि दोनों ही उसे सांप स्वीकार कर लेते हैं। कोई निकट जाता है और पाता है कि सांप है ही नहीं। उसे कुछ करना नहीं होता, केवल निकट पर जाना होता है।

मनुष्य को अपने निकट भर जाना है। मनुष्य में जो भी है सबसे उसे परिचित होना है। किसी से लड़ना नहीं है और मैं कहता हूं कि बिना लड़े ही विजय पर आ जाती है।

सम्यक् जागरण जीवन-विजय का सूत्र है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

नयी सुबह। नया सूरज। नई धूप। सोकर उठा हूं। सब नया-नया है। जगत् में कुछ भी पुराना नहीं है।

कई सौ वर्ष पहले यूनान में किसी ने कहा था, "एक ही नदी में दो बार उतरना असंभव है।"

सब नया है पर मनुष्य पुराना पड़ जाता है। मनुष्य नये में जीता ही नहीं इसलिए पुराना पड़ जाता है। मनुष्य जीता है स्मृति में, अतीत में, मृत में। यह जीना ही है, जीवन नहीं है। पर अर्ध-मृत्यु है।

कल एक जगह यही कहा हूं। मनुष्य अपने में मृत है। जीवन योग से मिलता है। योग चिर-नवीन में जगा देता है। योग चिर-वर्तमान में जगा देता है।

मानव-चित्त स्मृति के भार से मुक्त हो तो "जो है" वह प्रगट हो जाता है। स्मृति भूल का संकलन है। इससे जीवन को नहीं पाया जा सकता है। वह ज्ञान में भटकता है। उससे जो अज्ञान है, उसके द्वार नहीं खुलते हैं।

ज्ञान को जाने दो ताकि अज्ञान प्रगट हो सके। मूल को जाने दो ताकि जीवित प्रगट हो सके—योग का सार-सूत्र यही है।

28 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

कल रात्रि कोई महायात्रा पर निकल गया है। उसके द्वार पर आज रुदिन है।

सुबह-सुबह घूमकर लौटा हूं। देखता हूं कि सड़क के किनारे कुछ लोग जमा है। एक भिखारी शरीर से मुक्त हो गया है।

एक बचपन की स्मृति मन पर दुहर जाती है। पहली बार मरघट जाना हुआ था। चिता जल गई थी और लोग छोटे-छोटे झुंड बनाकर बातें कर रहे थे। गांव के एक कवि ने कहा था, "मैं मृत्यु से नहीं डरता हूं। मृत्यु तो मित्र है।"

यह बात सबसे अनेक रुपों में अनेक लोगों से सुनी है। जो ऐसा कहते हैं। उनकी आंखों में भी देखा है और पाया है कि भय से ही ऐसी अभय की बातें निकलती है। मृत्यु को अच्छे नाम देने से ही कुछ परिवर्तन नहीं हो जाता है। वस्तुतः डर मृत्यु का नहीं है, डर अपरिचय का है। जो अज्ञात है वह भय पैदा करता है। मृत्यु से परिचित होना जरुरी है। परिचय अभय ले जाता है। क्यों? क्योंकि परिचय से ज्ञान होता है कि 'जो है' उसकी मृत्यु नहीं है। जिस व्यक्तित्व को हमने अपना 'मैं' जाना है, वही टूटता है। उसकी ही मृत्यु है। वह है नहीं, इसलिए टूट जाता है। वह केवल सांयोगिक है। कुछ तत्वों का जोड़ है; जोड़ खुलते ही बिखर जाता है। यही मृत्यु। व्यक्तित्व के साथ स्वरुप को एक जानना जब तक है तब तक मृत्यु है।

व्यक्तित्व से गहरे उतरें स्वरुप पर पहुंचें और अमृत उपलब्ध हो जाता है। इस यात्रा का–व्यक्तित्व से स्वरुप तक ही यात्रा का मार्ग ध्यान है। ध्यान में, समाधि में मृत्यु से परिचय हो जाता है।

सूरज आते ही जैसे अंधेरा नहीं हो जाता है वैसे ही समाधि उपलब्ध होते ही मृत्यु नहीं हो जाती है।

मृत्यु न तो शत्रु है, न मित्र है, मृत्यु है ही नहीं। न उससे भय करना है, न उससे अभय होना है; केवल उसे जानना है।

रजनीश के प्रणाम

पुनश्चः आपका कार्ड मिल गया है। निश्चय जानकर ठीक लगा। एक-दो दिन चि. सुशीला के पास रह लेना जरूरी है। मुझे यही डर था कि कहीं मेरे कारण निर्णय न बदल लें। मैं 7 अप्रैल को सुबह 4 बजे आगरा-अहमदाबाद एक्सप्रैस से जयपुर पहुंच रहा हूं। शेष मिलने पर। सबको विनम्र प्रणाम।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्यारी मां,

रात्रि जोर की आंधियां चली हैं और पानी पड़ा है। सुबह घूमने गया तो सब गीला-गीला था और आकाश बादलों से भरा था।

अब सूरज उठ आया है। नीम के फूलों की गंध में डूबा मैं उसके उठने को देख रहा हूं।

मैंने कहा कि सूरज उठ रहा है; शायद यह कहना ठीक नहीं है। उठने में उसका कोई संकल्प नहीं है–उसकी अपनी कोई निर्णायक शक्ति नहीं है–'वह' नहीं है। ऐसा ही मनुष्य भी है। यांत्रिक और परतंत्र। उसमें भी बस कुछ होता रहता है। वह भी जब तक यांत्रिक है, तब तक नहीं है।

यह यांत्रिकता–यह न होना ही दुःख है, संताप है।

पर यह संताप चरम नहीं है। इसके पार उठना संभव है। मनुष्य की समस्त यांत्रिकता और जड़ता के भीतर भी कुछ है जो कि जड़ नहीं है। इस कुछ में ही जीवन की, स्वतंत्रता की, मुक्ति की संभावना है।

मनुष्य से अधिक दुःखी और दरिद्र भी कोई नहीं है; मनुष्य से अिक समृद्ध और दिव्य भी कोई और नहीं है।

चेतना की एक छोटी सी चिन्गारी उसमें है। उसे ही फूंकना और चमकाना है। उसके सम्यक् रुप से जल उठते ही सब दरिद्रता और दुःख जल जाता है।

और फिर उदय होता है आनंद का, अमृत का, दिव्यता का। जो सदा से था, वह प्रगट हो जाता है। नित्य मुक्त, सत्-चित्त आनंद।

इस अलौकिक का नाम ही ब्रह्म है।

सबको मेरे प्रणाम

रजनीश के प्रणाम

पुनश्चः मैं उस रात्रि सकुशल आ गया था। अर्धरात्रि की बेला में विदा होते अचानक लगा था कि ऐसे किन-किन स्थानों और जन्मों में मिलना-बिछुड़ना नहीं होता रहा है। कितनी बार नहीं आपको छोड़ा होगा–वही सब, वही सब जीवन अद्भुत लीला है। सबको मेरे प्रणाम कहें–सोचता हूं कि आप घर पहुंच गई हैं।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

यात्रा से—
(उज्जैन)
१७ अप्रैल १९६२

प्यारी मा,

रात्रि बीत गई है और खेतों में सुबह का सूरज फैल रहा है। एक छोटा सा नाला अभी-अभी पार हुआ है। गाड़ी की आवाज सुन—सफेद—चांदनी के फूलों से सफेद बगुलों की एक पंक्ति सूरज की ओर उड़ गई है।

फिर कुछ हुआ है और गाड़ी रुक गई है। इस निर्जन में उसका रुकना भला लगा है।

मेरे अपरिचित सह-यात्री भी उठ आए हैं। रात्रि किसी स्टेशन पर उनका आना हुआ था। शायद मुझे संन्यासी समझकर प्रणाम किया है। कुछ पूछने की उत्सुकता उनकी आंखों में है।

आखिर वे बोल रहे हैं, ''अगर कोई बाधा आपको न हो तो मैं एक बात पूछना चाहता हूं। अभी-अभी आप ध्यान में थे। मैं भी ध्यान करना चाहता हूं। बहुत बार-बहुत वर्षों से प्रयास किया है पर कुछ परिणाम नहीं निकला है। क्या प्रभु मुझ पर कृपालु नहीं है?''

मैंने कहा, ''कल मैं एक बगीचे में गया था। कुछ साथी साथ थे। एक को प्यास थी। उसने बाल्टी कुएं में डाली, गहरा कुआं था। बाल्टी खींचने में श्रम पड़ा पर बाल्टी जब लौटी तो खाली थी। सब हंसने लगे। मुझे लगा यह बाल्टी तो मनुष्य के मन जैसी है। इसमें छेद ही छेद थे। बाल्टी नाम मात्र की थी। बस छेद ही छेद थे। पानी भरा था पर सब बह गया था। ऐसा ही मन भी हमारा छेद ही छेद है। विचार ही मन के छेद हैं। इस छेदवाले मन को कितना ही प्रभु की ओर फेंको वह खाली ही वापिस लौट आती है। मित्र, पहले बाल्टी ठीक कर लें फिर पानी खींच लेना एकदम आसान है। हां, छेदों वाली बाल्टी से तपश्चर्या तो खूब होगी पर तृप्ति नहीं हो सकती है।''

''विचार-वृत्त के बाहर चलना ध्यान है। बुरे विचारों के नहीं—समस्त विचारों के

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

बाहर—विचार मात्र से बाहर चलना ध्यान है। बाल्टी में कुछ छेद अच्छे और कुछ बुरे नहीं होते हैं। सब छेद बाधा हैं। सद् विचारों में तल्लीन होने की गलती नहीं करनी है। यह भूल बहुत होती है। मैं सोचता हूं कि इससे ही आपके प्रयास विफल हो गये।

उन्होंने एक क्षण सोचा है और फिर बोले हैं, ''मैं अपनी भूल देख पा रहा हूं और एक अभिनव शांति मेरे भीतर पैदा हो रही है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

सुबह थी, फिर दोपहर आई अब सूरज डूबने को है। एक सुन्दर सूर्यास्त पश्चिम पर फैल रहा है।

मैं रोज दिन को आते देखता हूं, दिन को जाते देखता हूं, दिन को डूबते देखता हूं। और फिर यह भी देखता हूं कि न तो मैं जगा, न मैंने दोपहर पाई और न ही मैं अस्त पाता हूं।

कल यात्रा से लौटा तो यही देख रहा था। सब यात्राओं में ऐसा ही अनुभव होता है। राह बदलती है, पर राही नहीं बदलता है। यात्रा तो परिवर्तन है पर यात्री तो अपरिवर्तित मालूम होता है।

कल कहां था, आज कहां हूं, अभी क्या था, अब क्या है—पर जो मैं कल था वहां आज भी हूं जो मैं अभी था, वही अब भी हूं।

शरीर वही नहीं है, मन वही नहीं है, पर मैं वही हूं।

दिक् और काल में परिवर्तन है पर इस 'मैं' में परिवर्तन नहीं हैं सब प्रवाह है पर वह 'मैं' प्रवाह का अंग नहीं है। यह उसमें होकर भी उससे बाहर और उनके अंदर व्याप्त है।

यह नित्य यात्री—यह चिर-नूतन, चिर-प्राचीन यात्री ही आत्मा है। परिवर्तन के जगत् में इसके प्रति जाग जाना ही मुक्ति है।

28 अप्रैल 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : श्री पारखजी का पत्र मिला है। मैं मई के पहले सप्ताह में ही आने की सोच रहा हूं। 12, 13 और 14 मई को कानपुर में हो रहे अखिल विश्व जैन मिशन के अधिवेशन में बोलने का निमंत्रण स्वीकार किया है। आप भी चलें तो अच्छा है। उसके पूर्व ही मैं चांदा आना चाहता हूं। बाल मंदिर वार्षिकोत्सव की तारीख तय हो गई हो तो शीघ्र बतायें ताकि मैं अपने आने की तारीख सूचित कर सकूं। शेष शुभ। सबको मेरे प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

अर्धरात्रि
25 अप्रैल 1962

प्रिय मां,

आकाश तारों से भरा है। रात्रि स्वप्न सी मालूम हो रही है। दिन भर धरती तपी है पर अब सब ठंडा हो आया है।

रजनी-गंधा में फूल आए हैं और उसकी सुवास हवा में तैर रही है। एक कोयल बोलते-बोलते चुप हो गई है पर उसकी प्रतिध्वनि मन में है और लगता है कि वह बोले ही जा रही है!

मैं ध्यान में था; अब उठा हूं पर ध्यान से अब उठना नहीं होता है। मैं उठ जाता हूं पर ध्यान चलता ही जाता है। मैं कुछ भी करूं पर ध्यान बना ही रहता है। ध्यान तो अब स्वांस जैसा हो गया है। उसे करना नहीं पड़ता है वह तो अब 'है।' कल ही एक जगह कहा हूं कि ध्यान क्रिया नहीं है। वह तो चेतना की स्वरुप-स्थिति है। इसलिए उसे कुछ करने से नहीं पाया जाता है वरन् जब सब करना छूट जाता है तब पाया जाता है कि वह तो सदा से ही था।

कैसा दुर्भाग्य है कि जो स्वरुप है, उसे ही खोकर मनुष्य दरिद्र हो गया है। जो खोया ही नहीं जा सकता है उसे ही खोकर मनुष्य दीन-हीन हो गया है!

कैसा नाटक है कि अभिनेता स्वयं को भूल गया है और अपने को केवल अभिनय का पात्र मात्र समझ रहा है?

इस अभिनय से जागना ध्यान है और अब यह जाग जाती है तो कितना आश्चर्य होता है—कितनी हंसी आती है!

भारत इस समस्त सृष्टि को जो लीला कहता है सो ठीक ही कहता है!

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मेरा कार्ड तो मिल ही गया होगा। मैं 1 मई को संध्या जी.टी. से पहुंच रहा हूं। शेष शुभ। यशोदाबाई और सब को मेरे प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
28 अप्रैल 1962

प्रिय मां,

कल संध्या तक एक फूल के पौधे में प्राण थे। उसकी जड़ें जमीन में थी और उसके पत्तों में जीवन था। उसमें हरियाली थी और चमक थी। हवा में वह डोलता था तो उससे आनंद झरता था। उसके पास से मैं अनेक बार गुजरा था और उसके जीवन-संगीत को अनुभव किया था।

फिर कल यह हुआ कि किसी ने उसे खींच लिया। उसकी जड़ें हिल गईं और आज सुबह जब मैं उसके पास गया तो पाया कि उसकी सांसें टूट गई हैं। जमीन से जड़ें हट जाने पर ऐसा ही होता है। सारा खेल जड़ों का है। वे दीखती नहीं, पर सारा रहस्य जीवन का उन्हीं में है।

पौधों की जड़ें होती हैं, मनुष्य की भी जड़ें होती हैं। पौधों की जमीन है; मनुष्य की भी जमीन है। पौधे जड़ें जमीन से हटते ही सूख जाते हैं। मनुष्य भी सूख जाता है।

अल्बर्ट कामू की एक पुस्तक पढ़ता था। उसकी पहली पंक्ति है कि आत्म हत्या एकमात्र महत्वपूर्ण दार्शनिक समस्या है।

क्यों? क्योंकि जब मनुष्य को जीवन में कोई प्रयोजन नहीं मालूम होता है। सब व्यर्थ और सब निष्प्रयोजन हो गया है।

यह हुआ है इसलिए कि जड़ें हिल गई हैं। यह हुआ है इसलिए कि उस मूल जीवन स्रोत से संबंध टूट गये हैं जिसके अभाव में जीवन एक व्यर्थ की कहानी मात्र रह जाता है।

मनुष्य को पुनः जड़ें देनी हैं और मनुष्य को पुनः जमीन देनी है। ये जड़ें आत्मा की हैं और वह जमीन कर्म की है। उतना हो सके तो मनुष्यता में फिर से फूल आ सकते हैं।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा मीठा कार्ड मिल गया है। तुमने लिखा है कि मैं बहुत कम दिन चांदा रुकने को हूं। क्या कितने भी दिन ज्यादा मालूम हो सकते हैं? सब दिन–कितने ही दिन–थोड़े ही मालूम होंगे–और यह थोड़ा मालूम होना कितना आनंदपूर्ण है। मैं 1 तारीख को संध्या जी.टी. से ही पहुंच रहा हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

8 मई 1962

प्यारी मां,

रात्रि का एकांत! बीते सप्ताह की स्मृतियां ताजी सुगंध की तरह मन पर तैर रही है। सब बीतता है पर कुछ है कि बीत जाता है पर बीतता नहीं है।

मैं उस अनबीते को इतना स्पष्ट देख पा रहा हूं कि कैसे कहूं कि वह बीत गया है? सब अतीत हो जाता है पर प्रेम अतीत नहीं होता है और उसके चिह्न नहीं मिटते हैं।

यह प्रेम अतीत क्यों नहीं होता है? क्योंकि यह उस समय अनुभव किया जाता है जब समय नहीं होता है और जब मन भी नहीं होता है। समय और मन के जा बाहर है, वह नित्य है।

इस नित्य में द्वैत नहीं होता है। दुई नहीं होती है और वह प्रगट होता है जो है।

मैं यह अनुभव कर कितने आनंद में हूं कि इस नित्य-अमृत अनुभूति के स्वर आप तक पहुंच रहे हैं।

सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें। अभी-अभी टहल कर आया हूं। टहलते समय सबको आंगन में देखा है। तुम तो द्वार पर खड़ी हो कितना रोक रहीं थी और जानती हो, मां, कि अभी मेरा समय नहीं हुआ है और तुम्हारे रोकने से ही टहलना छोड़कर पत्र लिखने बैठ गया हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

(यात्रा से)
प्रयाग, (स्टेशन)
11 मई 1962

प्यारी मां,

रात्रि पानी पड़ा था और मैं भीतर आ गया था। खिड़कियां बंद थीं और बड़ी घुटन मालूम होने लगी थी। फिर खिड़कियां खोली और हवा के नये-नहाये झोंकों से ताजगी बही–रातरानी की सुवास भी तैरती हुई आई और फिर भी मैं कब सो गया, कुछ पता नहीं है।

सुबह एक व्यक्ति आए थे। उन्हें देखकर रात की घुटन याद आ गई थी। लगा जैसे उनके मन की सारी खिड़कियां–सारे द्वार बंद है। एक भी झरोखा उसने अपने भीतर खुला नहीं छोड़ा है जिससे बाहर की ताजी हवायें–ताजे विचार–ताजी रोशनी भीतर पहुंच सके। सब बंद दीखा। मैं उनसे बातें किया और जानता रहा कि मैं दीवालों से बातें कर रहा हूं। अधिक लोग ऐसे ही बंद है और जीवन में ताजगी और सौंदर्य और नयेपन से वंचित हैं।

मनुष्य अपने ही हाथों अपने को एक कारागार बना लेता है। इस कैद में घुटन और कुंठा मालूम होती है पर उसे मूल कारण का–दुख और अज्ञान के मूल स्रोत का पता नहीं चलता है। समस्त जीवन ऐसे ही बीत जाता है। जो मुक्त गगन में उड़ने का आनंद ले सकता था; वह एक तोते के पिंजरे में बंद सांसे तोड़ देता है।

चित्त की दीवारें तोड़ देने पर खुला आकाश उपलब्ध हो जाता है और खुला आकाश ही जीवन है। यह मुक्ति प्रत्येक पा सकता है और यह मुक्ति प्रत्येक को पा लेनी है।

यह मैं रोज कह रहा हूं पर शायद मेरी बात सब तक पहुंचती नहीं है। उनकी दीवारें मजबूत हैं पर दीवारें कितनी ही मजबूत क्यों न हों; वे मूलतः कमजोर हैं क्योंकि दुखद है। यही आशा है उनके विरोध में यही आशा की किरण है कि ये दुःखद

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

है और जो दुःखद है वह ज्यादा देर टिक नहीं सकता है। केवल आनंद ही नित्य हो सकता है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं आज कानपुर जा रहा हूं। आप आती थीं साथ और मैं छोड़ आया हूं। कितना त्याग किया है, जानती हैं? उस रात तुम ठीक ही कह रही थीं कि अब मैं सताऊंगी। सताती तो पहले भी थीं पर अब मन में सताये जाने का ज्यादा आनंद अनुभव कर रहा हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

(यात्रा से)
कानपुर
15 मई 1962

प्यारी मां,

एक साल हुई तब कुछ बीज बोये थे। अब उनमें फूल आ गये हैं। कितना चाहा सीधे आ जावें पर फूल सीधे नहीं आते हैं। फूल लाना हो तो बीज बोने पड़ते, सम्हालना पड़ता है और तब अंत में प्रतीक्षित का दर्शन होता है।

यह प्रक्रिया फूलों के संबंध में ही नहीं, जीवन के संबंध में भी सत्य है। अहिंसा सम्मेलन में यही कहा है।

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य–ये सदा जीवन साधना के फूल हैं। इन्हें सीधे नहीं लाया जा सकता है। इन्हें लाना है तो आत्मज्ञान के बीज बोने आते हों ये सब अपने आप चले आते हैं।

आत्म ज्ञान मूल है; शेष सब उसका परिणाम है।

यह कहना गलत है कि हिंसा, विद्वेष और विग्रह ने आदम जीवन को भर दिया है। बात उतनी ही सच है। असल जीवन नहीं रहा है–उसका विज्ञान इसलिए इन सबकी उत्पत्ति हुई है।

जीवन के बाह्य रुप का कुरुप होना; आंतरिक जड़ता का प्रतीक है।

इससे लक्षणों को बदलने और परिवर्तित करने से कुछ भी नहीं हो सकता जहां विकार की जड़ें हैं वहीं बदलाहट करनी है।

आत्म-विज्ञान विकार की जड़ है। मैं कौन हूं–यह जानना है। यह ...... अभय और अद्वैत की उपलब्धि होती है। अद्वैत-बोध–यह बोध मैं हूं वही दूसरा भी है–......... हिंसा को जड़ से साफ कर देना .... परिणाम में जाती है अहिंसा। पर को पर जानना हिंसा है। पर में दर्शन अहिंसा है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

(पुनश्च : आज कानपुर से वापिस लौट रहा हूं। अखिल विश्व जैन मिशन का सम्मेलन सुखद रहा है। मेरी बात को समझा गया है। वह लोगों के मन में बैठ रही है। यह दिखता है कि कुछ लोग अवश्य ही जो मैं कह रहा हूं, उसे मानने और करने को राजी हो सकेंगे। शेष शुभ। कानपुर में पूरे समय तुम्हारी स्मृति बनी रही है। सबको मेरे विनम्र प्रणाम। दो तीन दिन बाद गाडरवाड़ा जा रहा हूं। सात-आठ दिन वहां रुकूंगा।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
17 मई 1962

मां,

एक कोने में पड़ा बहुत दिन का दर्पण मिला है। धूल ने उसे पूरा का पूरा छिपा रखा है। दीखता नहीं है कि अब भी दर्पण है और प्रतिबिम्बों को पकड़ने में समर्थ होगा। धूल सब कुछ हो गई है और दर्पण न कुछ हो गया है। प्रगटतः धूल ही है और दर्पण नहीं है। पर क्या सच ही धूल में छिपकर दर्पण नष्ट हुआ है? दर्पण अब भी दर्पण है—उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। धूल ऊपर है और दर्पण में नहीं है। धूल एक पर्दा बन गई है। पर पर्दा केवल आवेष्टित करता है, नष्ट नहीं। और इस पर्दे को हटाते ही जो है वह पुनः प्रगट हो जाता है।

एक व्यक्ति से यह कहा हूं कि मनुष्य की चेतना भी इस दर्पण की भांति ही है। वासना की धूल है उस पर। विकारों का पर्दा है उस पर। विचारों की परते हैं उस पर। पर चेतना के स्वरुप में इससे कुछ भी नहीं हुआ है। वह वही है। वह सदा वही है। पर्दा हो या न हो, उसमें कोई परिवर्तन नहीं है। सब पर्दे ऊपर हैं इसलिए उन्हें खींच देना और अलग कर देना कठिन नहीं है। दर्पण पर से धूल को झाड़ने से ज्यादा कठिन चेतना पर से धूल को झाड़ देना नहीं है।

आत्मा को पाना आसान है क्योंकि बीच में धूल के एक महीन पर्दे के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। और पर्दे के हटते ही ज्ञात होता है कि आत्मा ही परमात्मा है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं 18 मई की संध्या गाडरवारा जा रहा हूं। 30 मई तक वहां रुकूंगा। बुलढ़ाणा चलने की कोई बात हो तो वहीं सूचित करें। शेष शुभ सबको मेरे प्रणाम। शारदा का स्वास्थ्य अब कैसा है?)

दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

यात्रा से नरसिंहपुर
18 मई 1962

प्रिय मां,

एक चर्चा में आज उपस्थित था। उपस्थित था जरुर, पर मेरी उपस्थिति न के ही बराबर थी। भागीदार मैं नहीं था; केवल श्रोता था। जो सुना वह तो साधारण था पर जो देखा वह निश्चय ही असाधारण है।

प्रत्येक विचार पर वहां वाद था, वह सब सुना पर दिखाई कुछ और ही दिया। दिखा विवाद विचारों पर नहीं, 'मैं' पर है। कोई कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहता है। सब 'मैं' को— अपने-अपने 'मैं' को सिद्ध करना चाहते हैं। विवाद भी मूल जड़ इस 'मैं' में है। फिर प्रत्यक्ष में केन्द्र कहीं दिखे—अप्रत्यक्ष में केन्द्र नहीं है। जड़ें सदा ही अप्रत्यक्ष होती हैं। दिखाई वे नहीं देती। दिखता है जो वह मूल नहीं है। फूल पत्तों की भांति जो दिखता है वह गौण है। उस दिखने वालों पर रुक जावें तो समाधान नहीं है क्योंकि समस्या ही वहां नहीं है।

समस्या जहां है, समाधान भी वहीं है। विवाद कहीं नहीं पहुंचते, कारण जो जड़ है उसका ध्यान नहीं आता है।

यह भी दिखाई देता है कि वहां विवाद है वहां कोई दूसरे से नहीं बोलता है। प्रत्येक अपने से ही बातें करता है। प्रतीत भर होता है कि बातें हो रही हैं पर जहां 'मैं' है नहीं दिखता है और दूसरे तक पहुंचना अहित है। 'मैं' को साथ लिए संवाद असंभव है।

संसार में अधिक लोग अपने से ही बातें करने में जीवन बिता देते हैं। एक पागलपन की घटना पढ़ा था। वो पागल विचार विमर्श में तल्लीन थे पर उनका डाक्टर एक बात देखकर हैरान हुआ। वे बातें कर रहे थे जरुर और एक बोलता था तो दूसरा चुप रहता था पर दोनों की बातों में कोई संबंध, कोई संगति नहीं थी। उसने उनसे पूछा कि जब तुम्हें अपनी-अपनी ही करना है तो एक दूसरे के बोलते समय चुप क्यों रहते थे? पागलों ने कहा, "संवाद का नियम हमें मालूम है, जब एक बोलता है तब दूसरे का चुप रहना नियमानुसार आवश्यक है।"

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

यह कहानी बहुत सत्य है और पागलों के संबंध में ही नहीं, सबके संबंध में सत्य है। बातचीत के नियम का ख्याल रखते हैं सो ठीक; अन्यथा प्रत्येक अपनों से ही बोल रहा है। कि बोले बिना कोई दूसरे से नहीं बोल सकता है। और 'मैं' केवल प्रेम में छूटता है और प्रेम में ही केवल सम्वाद होता है। उसके अतिरिक्त सब विवाद हो और ठीक दिखता है क्योंकि उसमें सब अपने द्वारा और अपने से ही कहा जा रहा है।

मैं जब उस चर्चा से आने लगा तो किसी ने कहा, ''आप कुछ बोले नहीं है?'' मैंने कहा ''तभी नहीं बोला है।''

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं गाडरवारा जा रहा हूं। 10-12 दिन वहां रुकने को हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

दोपहर :
गाडरवारा
२२ मई १९६२

प्यारी मां,

सुबह-सुबह घूमकर लौटता था। नदी तट पर एक झरने से मिलना हुआ है। राह के सूखे पत्तों को हटाकर एक छोटा सा झरना नदी की ओर भाग रहा था। उसकी दौड़ देखी और फिर नदी में उसका आनंदपूर्ण मिलन भी देखा। फिर देखा कि नदी भी भाग रही है।

फिर देखा कि सब कुछ भाग रहा है। सागर से मिलन के लिए, असीम में खोने के लिए, पूर्ण को पाने के लिए समस्त जीवन राह के सूखे-मृत पत्तों को हटाता हुआ भागा जा रहा था।

सीमा दुःख है, अपूर्णता दुःख है, होना दुःख है। जीवन इस दुःख-बोध को पार करना चाहता है। स्व विसर्जन से—'मैं' को खो देने से—सीमा को असीम में, बूंद को सागर में मिला देने से दुःख मिट जाता है और वह उपलब्ध होता है जो आनंद है।

यह अद्‌भुत विरोधाभास है। 'मैं' जब तक है तब तक दुःख है। 'मैं' नहीं, उस दिन आनंद है। जीसस क्राइस्ट का एक वचन याद आता है, 'जो जीवन को बचाता है, वह खो देता है। जो खोता है वह पा जाता है।

यह खोना ही प्रेम है। इससे मैं कहता हूं प्रेम जीवन है, प्रेम-अभाव मृत्यु है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : कल रात दिखाई दी हैं। सुबह से ही एक भीनी गंध की भांति साथ हैं। नदी पर भी आज जागकर उस जगह बैठा था जहां पिछली बार साथ थीं। सूरज उगने लगा था और मैं स्मृति से पीछे लौट गया था।
खूब आनंद में हूं। सबको मेरे प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

गाडरवारा
प्रभात :
23 मई 1962

प्रिय मां,

कल रात्रि नगर से दूर एक अमराई में बैठे थे। थोड़ी सी बदलियां थीं और इनके बीच चांद निकलता छिपता रहा था। प्रकाश और छाया की इस लीला में कुछ लोग देर तक मौन मेरे पास थे। कभी-कभी बोलना कितना कठिन हो जाता है। वातावरण में जब एक संगीत घेरे होता है जब डर लगता है कि कहीं बोलने से वह टूट न जाय! ऐसा ही कल हुआ। बहुत रात गये घर लौटे। राह में कोई कह रहा था कि 'जीवन में मौन का अनुभव पहली बार हुआ है। यह सुना था कि मौन आनंद है पर जाना इसे आज है। पर आज तो यह अनायास हुआ है फिर दुबारा यह कैसे होगा?'

मैंने कहा, "जो अनायास हुआ है, वह अनायास ही होता है। प्रयास से वह नहीं आता है। प्रभात स्वयं अशांति है। प्रयास का अर्थ है कि जो है, उससे कुछ भिन्न चाहा जा रहा है। यह स्थिति तनाव की है। तनाव से तनाव ही पैदा होता है। अशांति में किया गया कुछ भी अशांति ही लाता है। अशांति शांति में नहीं बदलती है। शांति चेतना की एक चित्त ही स्थिति है। जब अशांति नहीं होती है तब उसका होना होता है। कुछ न करें, कोई प्रयास न करें—सब करना छोड़ दें और केवल देखते रह जायें और फिर पाया जाता है कि एक नयी चेतना, एक नया प्रकाश आहिस्ता-आहिस्ता उतरना चला आ रहा है। इस नये लोक में जो पाया जाता है वही वस्तुतः है। जो है, उसका उद्‌घाटन आनंद है, उसका उद्‌घाटन मुक्ति है। यह विराट हमारे क्षुद्र प्रयासों से नहीं—हमारे 'मैं' से नहीं, वरन् जब प्रयास नहीं होते, जब 'मैं' नहीं होता, तब आता है।"

"संसार में जो भी पाया जाता है, वह क्रिया से, कर्म से पाया जाता है। प्रयास वहां साधन है। 'मैं' वहां केन्द्र है। प्रत्येक प्राप्ति इसलिए 'मैं' को और मजबूत कर जाती है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

वस्तुतः जाने में 'मैं' को मजबूत करने और फैलाने का ही सुख हैं पर यह 'मैं' कभी पूरा नहीं भरता है। यह स्वभाव से ऊपर है इसलिए सुख अतीत ही होता है कभी उसे पाया नहीं जाता है। इससे जिन्होंने जाना, उन्होंने यह कहा कि संसार दुःख है। संसार में हम जो करते हैं वहीं हम मुक्ति के लिए भी करने लगते हैं। उसे भी पाने में लग जाते हैं और यही भूल हो जाती है। उसे पाना नहीं है वरन् अपने को खोना है। अपने को खोने में ही उसे पा लिया जाता है।"

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

गाडरवारा
दोपहर :
26 मई 1962

मां,

रात्रि कल बादल घिरे थे। आकाश अंधेरा था। केवल पूर्व में कुछ तारे दिखाई देते थे। एक वृद्ध सज्जन मेरे साथ थे। मैं उनसे कहा कि आज का आकाश बड़ा प्रतीकात्मक है। सारा जगत् अंधेरे में खो गया है। पूरब में ही थोड़े से तारे शेष रहे हैं। मनुष्य का भविष्य पूरब के हाथ है–ये थोड़े से तारे भी डूब गये तो सब नष्ट हो जाने को है। पूर्व कोई भौगोलिक इकाई नहीं है। यह आत्मिक जीवन, प्रकाश और सूर्यादय का प्रतीक है। पूरब ने अपना पूरा इतिहास मनुष्य में जो छिपा बैठा रखा है उसके उद्घाटन में व्यय किया है। आत्मा का, चैतन्य का आविष्कार भी उसका एकमात्र आविष्कार और विधि है।

मनुष्य देह नहीं है। यह पूर्वीय संस्कृति का निष्कर्ष है। और यह बात केन्द्रीय अर्थ की है। इस पर ही मनुष्य का सारा जीवन-दर्शन निर्भर होता है। मनुष्य देह से भिन्न दिव्य चेतना है। वह आस्था, यह दृष्टि जीवन में जो क्रांति लाती है वह अभूतपूर्व होती है। सारे मूल्य ही फिर बदल जाते हैं।

मैं अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा सम्मेलन में यही कहा हूं। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, और ब्रह्मचर्य एक सम्यक् आत्म-दर्शन के परिणाम हैं। उन्हें अलग से नहीं लाया जा सकता है। अहिंसा की आत्मज्ञान से अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं हो सकती है। इसलिए जब से प्रधान और सर्वोपरि विज्ञान बल-उद्घाटन का है। इस उद्घाटन के बाद शेष सब अपने आप उपलब्ध हो जाता है। उसके बाद फिर कुछ और बांधने की अपने में आवश्यकता नहीं रह जाती है। जीसस क्राइस्ट ने 20 सदियों पूर्व यही कहा था, ''पहले जो भीतर है उसे खोज लो फिर शेष तब अपने आप उपलब्ध हो जाता है।''

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

यह मूल की बात, यह जड़ की बात पूरब ने पहचान ली थी। आधुनिक सभ्यता इसे भूल गई है और इसीलिए इतनी बाह्य समृद्धि के बीच भी भीतर सब दरिद्र और दुखद हो गया है।

पूरब के थोड़े से चमकते तारों को मान लो तो इस अंधेरे के बाहर मार्ग मिल सकता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपु" (म.प्र.)

31 मई 1962

मां,

दोपहर जाने को है। आकाश अभी-अभी खुला था फिर जोर की हवायें आईं और अब काली बदलियों में वह ढका जा रहा है।

सूरज छिप गया है और हवाओं में ठंडक है।

एक फकीर द्वार पर आया है। उसके हाथ में एक तोता है। पिंजरा नहीं है पर तोता दिखता है कि उड़ना भूल चुका है। आते ही फकीर नही, तोता बोला है, "राम कहो। राम कहो। राम....राम....राम....।" मैंने कहा, "तोता तो अच्छा बोलता है।' फकीर बोला, "महाराज! यह तोता बड़ा पंडित है।" यह सुन मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा, "होना ही चाहिए, क्योंकि सभी पंडित तोते ही होते हैं।"

यह मुझे बहुत स्पष्ट दिखता है कि ज्ञान सीखने से नहीं आता है और जो सीखने से आता है वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान बुद्धि की उपलब्धि नहीं है। बुद्धि स्मृति है और स्मृति से नहीं, स्मृति के हट जाने से ज्ञान आता है। जो सीखा जाता है वह तोता बताता है। इस तोता रटन्त का नाम पांडित्य है। ज्ञान के मार्ग में इससे बड़ी और कोई बाधा नहीं है। पांडित्य मृत तथ्यों का संग्रह है। ये लक्ष्य सब उधार होते हैं। अनुभूति में इनकी कोई जड़ें नहीं होती हैं। इस मृत तथ्यों से घिरा चित्त उसके दर्शन नहीं कर पाता है जो कि है। ये मध्य पर्दा बन जाते हैं। इस पर्दे के हटाने पर अज्ञान का उद्घाटन होता है। यह दर्शन ही ज्ञान है। सीखता नहीं, दर्शन ज्ञान है। ग्रन्थ नहीं, तथ्य नहीं, सत्य दृष्टि उस उपलब्धि का मार्ग है।

सत्य दर्शन जब होता है तब पाया जाता है कि ज्ञान तो था ही, केवल उसे देख पाने की दृष्टि हमारे पास नहीं थी और इस दृष्टि की पांडित्य के संग्रह में नहीं पाया जा सकता था। इससे आत्म प्रवंचता भी हो सकती थी और कुछ भी नहीं। बिना जाने यह अहं-तृप्ति हो सकती थी कि मैं जानता हूं। इसलिए कहा है कि यह जानना कि मैं जानता हूं अज्ञान है। क्यों? क्योंकि जानने पर पाया जाता है कि मैं हूं ही नहीं। केवल ज्ञान है। न ज्ञाता है, न ज्ञान है।

यह अद्वैत-दर्शन तब होता है जब सब छोड़कर मैं शून्य हो जाता हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

6 जून, 1962

मां,

रात्रि काफी सरक गई है।

एक परिवार से लौटा हूं। जो वहां देखा, उससे दुःख होता है। व्यक्ति कैसा विषाक्त हो गया है? उसकी आत्मा कैसी टेढ़ी-मेढ़ी होती जाती है। सब क्या कुरुप होकर ही रहेगा? ऊपर से सब ठीक दिखता है पर भीतर सब सड़ गया है। जीवन की आधारभूत भूमि जैसे पैरों के नीचे से हट गई है।

वह खोता जाता है जो कि जोड़ता था। प्रेम की जगह बीच में खाइयां हैं। देश करीब आ गये हैं। भौतिक निकटता बढ़ गई है। पर मनुष्य दूर होते जाते हैं। हृदयों के बीच में अलंघ्य त्रुटियां फैलती जाती हैं।

व्यक्ति टूट गया है इससे समस्त समष्टि टूटी जा रही है। व्यक्ति ही वृहत् होकर व्यक्ति है। समष्टि अपने में कहीं भी नहीं है। उसकी कोई स्व-सत्ता नहीं है। वह तो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का ही संबंध है।

यह संबंध मधुर हो तो जीवन आनंद हो जाता है। यह संबंध विषाक्त हो तो जीवन नरक हो जाता है।

यह संबंध ऊपर से नहीं थोपा जा सकता है। यह तो अंतर की शांति और आनंद से उपजता है। व्यक्ति में शांति का केंद्र बनता है तो उसके संबंधों में प्रीति और शांति आती है।

यह शांति-केन्द्र व्यक्ति के विराट के प्रति उन्मुख होने से जन्मता है। व्यक्ति जेसे ही अभिव्यक्ति, अंतत-चेतना के प्रति अपने को खोलता है–उसका नया जन्म हो जाता है। अहं-केन्द्रित से यह ब्रह्म-केन्द्रित हो जाता है। अहं-केन्द्रित होना दुःख है, पीड़ा है, मृत्यु है। अहं-केन्द्रित होना ही विषाक्त होता है। इस विष ने ही आज युग को जकड़ लिया है। ब्रह्म- केन्द्रित होना शांति है, आनंद है, जीवन है। उसके घटित होते ही सब बदल जाता है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

ब्रह्म-केन्द्रित होने का रहस्य भूल गया है। इसलिए तब व्यवस्था करके भी कुछ व्यथित नहीं हो रहा है। अराजकता है क्योंकि अहं-केन्द्र है।

यह अहं-केन्द्रित जीवन दृष्टि नहीं बदलती है तो अब मनुष्य को और उसके समाज को नहीं पहचाना जा सकता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक चित्र देखकर लौटा हूं। परदे पर प्रक्षेपित विद्युत चित्र कितना मोह लेते हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है! जहां कुछ भी नहीं है, वहां सब कुछ हो आता है। दर्शकों को देखता था; लगता था कि वे अपने को भूल गये हैं। वे अब नहीं है और केवल विद्युत चित्रों का प्रवाह ही सब कुछ है।

एक कोरा परदा सामने है और पार्श्व से चित्रों का प्रक्षेपण हो रहा है। जो देख रहे हैं उनकी दृष्टि सामने है और पीछे का किसी को कोई ध्यान नहीं है।

इस तरह लीला को जन्म मिलता है। मनुष्य के भीतर और मनुष्य के बाहर भी यही हो रहा है।

वेदान्त इसे पाना कहता है।

एक प्रक्षेप-यंत्र मनुष्य के मन की पार्श्व भूमि में है। मनोविज्ञान इस पार्श्व को अचेतन कहता है। इस अचेतन में संग्रहीत वृत्तियां—वासनायें—संस्कार—चित्र के परदे पर प्रक्षेपित होते रहते हैं। यह चित्त-वृत्तियों का प्रवाह प्रतिक्षण—बिना विराम—चलता रहता है। चेतना दर्शक है—साक्षी है। वह इस वृत्ति-चित्रों के प्रवाह में अपने को भूल जाती है। यह विस्मरण अज्ञान है। यह अज्ञान मूल है—संसार का, भ्रमण का, जन्म-जन्म के चक्र का। इस अज्ञान में आ गया। चित्त-वृत्तियों के विरोध में होता है। चित्त जब वृत्ति शून्य होता है—परदे पर जब चित्रों का प्रवाह रुकता है तब दर्शक को अपनी याद आती है और वह अपने गृह लौटता है।

चित्त वृत्तियों के इस निरोध का नाम योग है। यह सधते ही सब सध जाता है।

रात्रि :
8 जून 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

11 जून 1962

प्रिय मां,

रात्रि घनी हो रही है। आकाश में थोड़े से तारे हैं और पश्चिम में खंडित चांद लटका हुआ है। बेला झूल गया है और उसकी गंध हवा में तैर रही है।

मैं एक महिला को द्वार तक छोड़कर वापिस लौटा हूं। मैं उन्हें जानता नहीं हूं। कोई दुःख उनके चित्त को घेरे हुए हैं।उसकी कालिमा उनके चारों ओर एक मंडल बनाकर खड़ी हो गई है।

यह दुःख-मंडल उनके आते ही मुझे अनुभव हुआ था। उन्होंने भी, बिना समय खोये, आते ही पूछा था कि क्या कोई दुःख मिटाया जा सकता है? मैं उन्हें देखता हूं। वे दुःख की एक प्रतिमा मालूम होती है।

एक क्षण सोच भी नहीं पाता हूं क्या कहूं—क्या तो दीखता है, शायद कैसे? नहीं दीख पाता है।

एक मौन अंतराल के बाद अपने को कहता हुआ सुनता हूं, चेतना की एक स्थिति में दुःख होता है। वह उस स्थिति का स्वरुप है। उस स्थिति के भीतर दुःख से छुटकारा नहीं है; कारण; वह स्थिति ही दुःख है। उसमें एक दुःख हटायें तो दूसरा आ जाता है। यह श्रृंखला चलती जाती है। इस दुःख से छूटें, उस दुःख से छूटें, पर दुःख से छूटना नहीं होता है। दुःख बना रहता है केवल निमित्त बदल जाते हैं। दुःख से मुक्ति पाने में नहीं, चेतना की स्थिति बदलने में दुःख-विरोध होता है, दुःख मुक्ति होती है। एक अंधेरी रात गौतम बुद्ध के पास एक युवक पहुंचा था। दुःखी, चिंतित, संतापग्रस्त। उसने जाकर कहा था, 'संसार कैसा दुःख है, संसार कैसी पीड़ा है।' गौतम बुद्ध बोले थे, ''मैं जहां हूं वहां आ जाओ, वहां दुःख नहीं है, वहां संताप नहीं है।''

एक चेतना है जहां दुःख नहीं है। हम चेतना के लिए ही कुछ बोले थे। 'जहां मैं हूं' मनुष्य की चेतना की दो स्थितियां हैं। अज्ञान की और ज्ञान की, पर तादात्म्य की ओर स्व-बोध की। मैं जब तक पर से तादात्म्य कर रहा हूं तब तक दुःख है। यह पर-बंधन ही दुःख है। पर से मुक्त होकर स्व को ध्यान कर और स्व में होना दुःख निरोध है। मैं अभी मैं नहीं हूं। हममें दुःख है मैं जब वस्तुतः मैं होता हूं तब दुःख मिटता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि :
14 जून 1962

प्रिय मां,

एक पूर्णिमा की रात्रि मधुशाला से कुछ लोग नदी तट पर नौका-विहार को गये थे। उन्होंने एक नौका को खेया—अर्धरात्रि से प्रभात तक वे अथक पतवार चलाते रहे थे। सुबह सूरज निकला—ठंडी हवायें बहीं तो उनकी मधु-मूर्च्छा टूटने लगी—उन्होंने सोचा कि अब वापिस लौटना उचित है। यह देखने को कि वे कहां तक चले आये हैं वे नौका से तट पर उतरे, पर तट पर उतरते ही उनकी हैरानी की सीमा न रही—क्योंकि उन्होंने पाया कि नौका वहीं खड़ी है जहां रात्रि उन्होंने उसे पाया था।

रात्रि में यह भूल ही गये थे कि पतवार चलाना भर पर्याप्त नहीं है—नौका को तट से खोलना भी पड़ता है।

संध्या आज यह कहानी कहा हूं। एक वृद्ध आये थे। वे कह रहे थे, 'मैं जीवन भर चलता रहा हूं लेकिन अब अंत में ऐसा लगता है कि जैसे कहीं पहुंचना नहीं हुआ है।' उनसे ही यह कहानी कहनी पड़ी है।

मनुष्य मूर्च्छित है। स्व-अज्ञात उसकी मूर्च्छा है। इस मूर्च्छा में उसका समस्त कर्म यांत्रिक है। इस विवेक-शून्य स्थिति में वह चलता है—जैसे कोई निद्रा में चलता हो—पर कहीं पहुंच नहीं जाता है। नाव की जंजीर जैसे तट से बंधी रह गई थी इस स्थिति में वह भी कहीं बंधा रह जाता है।

इस बंधन को धर्म ने वासना कहा है। वासना से बंधा मनुष्य आनंद के निकट पहुंचने के भ्रम में बना रहता है। पर उसकी दौड़ एक दिन मृग मरीचिका सिद्ध होती है। वह कितनी ही पतवार चलाये उसकी नाव अतृप्ति के तट को छोड़ती ही नहीं है। वह रिक्त और अपूर्व जीवन को खो देता है। वासना, स्वरुपतः दुष्पूर है। जीवन चूक जाता है—वह जीवन जिसमें दूसरा किनारा पाया जा सकता था—वह जीवन जिसमें यात्रा पूरी हो सकती थी—व्यर्थ हो जाता है और पाया जाता है कि नाव यहीं की यहीं खड़ी है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रत्येक नागरिक जानता है कि नाव को सागर में छोड़ने के पहले तट से खोलना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य को भी जानना चाहिए कि आनंद के, पूर्णता के, प्रकाश के सागर में भाव बढ़ने के पूर्व तट से वासना की जंजीरें उपलब्ध कर लेनी होती है। इसके बाद तो फिर शायद पतवार भी नहीं पकड़नी पड़ती है। श्री रामकृष्ण कहे हैं, "तू नाव तो छोड़–तू पाल तो खोल–प्रभु की हवायें तुझे ले जाने को प्रतिक्षण उत्सुक हैं।"

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

१७ जून १९६२

प्यारी मां,

पूर्णिमा है लेकिन आकाश बादलों से ढंका है। पानी की थोड़ी-सी फुहारें आई हैं और मौसम बहुत सुहावना और सोंदा हो गया है।

मैं राह से आया हूं। राह के किनारे खेत के एक ढेर पर कुछ बच्चे खेल रहे थे। उन्होंने रेत के घर बनाए थे और फिर उन पर से ही उनके बीच में झगड़ा हो गया था। पर झगड़ा थोड़ी ही देर में बड़ों तक पहुंच गया था और जो विषाक्त बातें एक दूसरे पर फेंकी गई वह सुनकर बड़ी हैरानी होती है।

मैं तो आश्चर्य से भर जाता हूं। यह सारे लोग मनुष्य हैं या कि क्या हैं?

जिब्रान की एक कहानी याद आती है, उसने लिखा है, "एक दिन मैंने खेत में खड़े एक काठ के पुतले से कहा, 'क्या तुम इस खेत में खड़े-खड़े उकता नहीं जाते हो?' उसने उत्तर दिया, 'पक्षियों को डराने का आनंद इतना अधिक है कि मैं इस व्यर्थ के जीवन से कभी नहीं उकताता हूं।'

मैंने क्षणभर सोचकर कहा, 'यह सत्य है क्योंकि मुझे भी इस आनंद का अनुभव है।"

वह पुतला बोला, 'हां, वही व्यक्ति जिनके शरीर में घास-फूस भरा है, इस आनंद से परिचित हो सकते हैं'।"

इस आनंद से तो सभी परिचित मालुम होते हैं! उस रेत के ढेर पर इस आनंद को ही देखकर आ रहा हूं!

मनुष्य जब तब जागता नहीं है तब तक वह घास-फूस से भरे पुतले से ज्यादा नहीं है। जार्ज गुरजिएफ ने एक बात कही है कि इस भ्रम को छोड़ दो कि प्रत्येक के पास आत्मा है। जो सोया है उसके पास आत्मा है या नहीं, इससे सच ही कोई अंतर नहीं पड़ता है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मां, मैं जिस प्रतीक्षा में था वह परिवर्तन क्रांति में घटित हो रहा है। उसे शांत देखना चाहता था, कामना पूरी हो रही है। उसने अब एक पत्र आपको लिखा है। वह इस पत्र के साथ भेज रहा हूं। आपका पत्र मिल गया है। मैं अब ठीक हूं। स्वास्थ में कोई विशेष बात नहीं थी, केवल सामान्यतः कुछ अस्वस्थ सा मालूम हो रहा था। वह अब ठीक हो गया है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

२१ जून १९६२

प्रिय मां,

कल प्रभात कुछ साध्वियां आईं थीं योग पर उनसे चर्चा हुई है। पूर्वीय संस्कृति ने विश्व को श्रेष्ठतम देन दी है, वह योग है। धर्म आते हैं, चले जाते हैं। संप्रदाय बनते हैं मिट जाते हैं पर योग सनातन है।

यह सनातन योग दो प्रकार है। शक्ति और शांति का। शक्ति का योग एकाग्रता से प्रारम्भ होता है। उससे मन की प्रसुप्त शक्तियां जागती हैं और मनुष्य को अपने भीतर सिद्धियों का नया आयाम उपलब्ध हो जाता है। यह योग विज्ञान का ही विस्तार है, विज्ञान जो बाहर करता है, शक्तियोग वही कार्य भीतर करता है। यह योग आध्यात्मिक नहीं है। दूसरा योग शांति योग है। इसकी साधना विचार-शून्यता की है। इसमें पाना नहीं, खोना है। इनको खो कर शून्य उपलब होता है। यह शून्य निर्वाण है। शांति योग ही वस्तुतः आध यात्मिक है।

शांति-योग की साधना कोई क्रिया, कोई अभ्यास नहीं है। समस्त क्रियायें और समस्त अभ्यास मन के हैं। शांतियोग तो मन के अतीत में चलता है। शक्ति चाहना वासना है। मन से जो भी उठता है, वह सब वासना है। शांति चाह नहीं है—जब कोई चाह नहीं होती, तब जो होता है वह शांति है। इसलिए, शांति को चाहा नहीं जाता है, साधा नहीं जाता है; वरन् मन की क्रियायें जब नहीं होती हैं तब अनायास उसे पा लिया जाता है, जब मन नहीं होता है, तब वह हो आती है।

शक्ति साधना है, शांति सहज उपलब्धि है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : श्री पारखजी और भीखमचंद जी का तार मिला है। मैं आ सकता तो प्रसन्न होता पर स्वास्थ्य एकदम ठीक नहीं है। उस दिन आपको पत्र लिखा तो

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

तबीयत एकदम ठीक थी फिर दूसरे दिन से कुछ गड़बड़ हो गई है। इस बार जो गड़बड़ी हुई उसका बड़ा मजेदार इतिहास है। आप जब आती हैं तब ही जान सकेंगी। मैं आशा कर रहा हूं कि आप भोपाल से लौटने में यहां होकर जावें— श्री भीखमचंद को भी लेती आवें। अरविंद को उनकी जो बीमारी बताई है तो उसका इलाज नहीं हो सकेगा! भोपाल से लौटने में आने की बात मैं माने ही ले रहा हूं। मैं स्वयं नहीं आ सक रहा हूं तो क्षमायाची तो हूं ही पर आप लौटकर देखेंगी तो खुद ही कहेंगी कि नहीं आये तो ठीक ही किया। शेष शुभ। श्री पारखजी बार-बार बुला रहे हैं और मैं नहीं आ पा रहा हूं सो उनका बहुत ऋणी होता जा रहा हूं। यहां कब पहुंचेंगी लिखें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक वर्ष हुआ। बीती बरसात में गुलजेवरी के फूल बोये थे। बरखा गई थी तो साथ ही फूल भी चले गये थे; फिर उनके सूखे पौधों को अलग कर दिया था। इस बार देखता हूं कि बरखा आई तो गुलजेवरी के कल्ले तो फिर अपने आप ही फूट रहे हैं। जगह-जगह भूमि को तोड़कर उसने झांकना शुरु किया हैं एक वर्ष तक, विगत वर्ष छूटे बीजों ने प्रतीक्षा की है और उनको पुनः जन्म पाते देखना आनंदपूर्ण है। भूमि के अंधेरे में सर्दी और गर्मी, वे प्रतीक्षा करते रहे हैं अब कहीं जाकर उन्हें पुनः प्रकाश पाने का अवसर मिला है। इस उपलब्धि पर उन नवजात पौधों में जो मंगल संगीत छाया हुआ है उसे मैं अनुभव करता हूं।

सदियों पूर्व किसी अमृत कंठ ने गाया था, ''तमसो मा ज्योतिर्गमय''। अंधेरे से प्रकाश पाने की वह आकांक्षा किसमें नहीं है? क्या मनुष्य में–क्या प्रत्येक प्राणी में ऐसे बीज नहीं छिपे हैं जो प्रकाश पाना चाहते हैं? क्या वहां भी जन्म-जन्मों से अवसर की प्रतीक्षा और प्रार्थना नहीं है?

प्रत्येक के भीतर छिपे हैं ये बीज और इन बीजों से ही पूर्ण होने की प्यास उठती है। प्रत्येक के भीतर छिपी हैं ये लपटें और ये लपटें सूरज को पाना चाहती हैं। इन बीजों को पौधों में बदले बिना कोई तृप्त नहीं हो पाता है। पूर्ण हुये बिना कोई मार्ग नहीं है। पूर्ण होना ही होता है, क्योंकि मूलता, बीजः प्रत्येक पूर्ण ही है।

प्रभात
24 जून 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : यह पत्र शायद भोपाल जाने के पूर्व न मिले। मिल जाये तो जानना कि मैं प्रतीक्षा में हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

कल कोई पूछता था, ''प्रभु को पाना है क्या करुं? कहां जाऊं कि उसे पा लूं? क्या हिमालय जाना ठीक है?''

मैं यह सब सुनता हूं और मुझे हंसी आती है। जो प्रतिक्षण यहां ही है उसे खोजने को भी क्या कहीं जाना होता है?

एक बार एक परिवार में गया था। उस परिवार की गृहणी बोली थीं, ''घर में बिल्कुल भी स्थान नहीं है। स्थान अब कहां से लायें।'' मैंने कहा था, ''स्थान तो बहुत है पर सब सामान से घिरा है। उस घर में सामान ही सामान दीखता था। घर क्या था कबाड़ी की दुकान मालूम होती थी। स्थान बहुत पर सब घिरा था। स्थान को कहीं ले जाना नहीं था केवल व्यर्थ का सामान अलग करने से ही स्थान उपलब्ध हो जाता था।

ऐसा ही मनुष्य है। उसमें ही प्रभु है पर व्यर्थता में घिरा है। उसमें ही मोक्ष है पर बंधन से दबा है। उसमें ही शांति है, मौन है पर विचारों की भीड़ से घिरी है। इसलिए कुछ पाना क्या है–कुछ निकालना ही है। स्थान पाने के लिए इस भीड़ को हटाना ही आवश्यक है और जगह तो कहीं बाहर से लानी नहीं है।

प्रभु को खोजने अज्ञानी जाते हैं जो जानते हैं वे केवल अपने को खाली–रिक्त–शून्य कर लेते हैं और इस भांति जो कहीं जाने से नहीं मिलता है वह यहीं उपलब्ध हो जाता है जहां जो है।

25 जून 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

27 जून 1962

प्रिय मां,

आकाश आज तारों से नहीं भरा है। काली बदलियां घिरी हैं और रह-रहकर बूंदें पड़ रही हैं।

रातरानी के फूल खिल गये हैं और हवायें सुवासित हो गई हैं।

मैं हूं ऐसा कि जैसे नहीं ही हूं और न होकर होना पूर्ण हो गया है। एक जगत् है जहां मृत्यु जीवन है और जहां खो जाना आ जाता है। एक दिन सोचा था बूंद को सागर में गिरा देना है। अब पाता हूं कि यह तो सागर ही बूंद में गिर आया है।

मनुष्य का होना ही उसका बंधन है। उसका शून्य होना मुक्ति है। पर होने की गंठ व्यर्थ ही भटकाती है और शून्य होने का भय पूर्ण होने से रोकता है। जब तक न कुछ होने की तैयारी नहीं है, तब तक मनुष्य न कुछ ही बना रहता है। मृत्यु में उतरने की जब तक आकांक्षा नहीं है, तब तक मृत्यु में ही भटकना होता है। जो मृत्यु लेने को तैयार हो जाता है। वह पाता है कि मृत्यु है ही नहीं और अमृत उसमें अवतरित हो जाता है।

ऐसा विरोध का नियम जीवन का नियम है। इस नियम को जानना होता है और ठीक से जान लेना उसके बाहर हो पाना है। विरोध के इस नियम का ज्ञान न होना ही भटकाता है। ज्ञान हो जाने से भटकन समाप्त हो जाती है। और वह उपलब्ध होता है जो कि यात्री का पड़ाव नहीं, यात्रा का अंत है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : पत्र मिला है। चिंता दूर हुई। मैं तो आपकी शुभकामनाओं से ठीक हो गया हूं। अब देखूं कि मेरी शुभकामनाएं आपको जल्दी ठीक करती है या नहीं। अच्छी हैं यह जानकर आनंदित हूं। भोपाल से ट्रेन और दिन सूचित कर दें।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात : 28.7.62

प्रिय मां,

एक जैन साधु कल आए थे। ध्यान की साधना पर उनसे बातें हुई हैं। ध्यान करने भी उन्हें बैठाया था। यह जानकर बहुत आश्चर्य होता है कि मन के स्वरुप के संबंध में कितनी भ्रान्त और मिथ्या धारणायें प्रचलित हैं। उसे शत्रु मानकर प्रारंभ करने से सब साधना ही गलत हो जाती है। न मन शत्रु है, न शरीर शत्रु है। वे तो मंत्र है और सहयोगी है। चेतना उनका जैसा उपयोग करना चाहे कर सकती है। प्रारंभ से ही शत्रुता और संघर्ष की वृद्धि दमन पैदा करती है और परिणाम स्वरुप सारा जीवन विषाक्त हो जाता है।

मनुष्य का मन स्वभावतः आंनदोन्मुख है। इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। यह तो उसका स्वरुप के प्रति आकर्षण है। यह न हो तो व्यक्ति कभी आत्मिक जीवन की ओर ही नहीं जा सकता है। यह मन आनंद की खोज संसार में करता है और फिर जब उसे वहां नहीं पाता है तो भीतर की ओर मुड़ता है।

आनंद केन्द्र है। संसार का भी–मोक्ष का भी। उसकी धुरी पर ही सारा लौकिक पारलौकिक जीवन घूमता है।

इस आनंद की झलक बाहर दीखती है। इससे बाहर दौड़ होती है। ध्यान से इस आनंद का वास्तविक स्रोत दीखने लगता है इससे दिशा वहां मुड़ जाती है। मन को जबरदस्ती भीतर नहीं मोड़ना है। इस दमन से ही वह शत्रु मालूम होने लगता है। आनंद का नया आयाम खोलना है। इस द्वार के खुलते ही मन अपने आप भीतर जाना पाया जाता है। वह तो आनंदोन्मुख है। जहां आनंद है वहां उसकी सहज गति है।

आनंद जीवन का लक्ष्य है। आनंद–अखंड आनंद जीवन का उद्देश्य है। संसार में उसकी कसक है–प्रतिफलन है। मोक्ष में उसका मूल स्रोत है। बाहर उसका प्रक्षेप है, भीतर उसका मूल है। परिधि पर उसकी छाया है, केन्द्र पर उसके प्राण है। इससे संसार मोक्ष का विरोध नहीं है। बाहर भीतर का शत्रु नहीं है। समस्त सत्ता एक संगीत है। इस तथ्य के दर्शन होते ही व्यक्ति बंधन के बाहर हो जाता है।

इस संगीत के अनुभव का नाम ही ईश्वर साक्षात् है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
29.7.62

प्रिय मां,

एक साधु आये थे। जीवन की लम्बी अवधि साधना में बिताई है। हिमालय पर कहीं आश्रम है। अमर कंटक होकर लौट रहे थे फिर किसी ने मेरी बात की होगी तो मिलने आये थे। सब तरह ऊपर से शांत है और सरल दीखते हैं। पर सरलता और शांति के भीतर कहीं कड़ापन है और अहंकार छिपा बैठा है। मैं देख रहा हूं कि जहां भी प्रयत्न है, वहीं अहंकार पुष्ट हो जाता है। ईश्वर को पाने का प्रयास भी अहं को ही भरता है। ईश्वर को पाने की बात ही व्यर्थ है। अपने को खोने की बात ही मुझे सार्थक दीखती है।

ईश्वर को क्या पता है? वह तो है ही। 'मैं' को ही खोना है क्योंकि उसके कारण ही जो 'है' वह नहीं दीख रहा है। इस 'मैं' को खोने के लिए प्रयास और अभ्यास की आवश्यकता नहीं है। संकल्प यहां व्यर्थ है। प्रतिज्ञा असंगत है। क्योंकि सब सकंल्प और सब प्रतिज्ञायें 'मैं' से ही आ जाती है और जो 'मैं' से पैदा होता है वह 'मैं' का अंत नहीं हो सकता है।

यह सब दीखे तो बिना कुछ किये मन उपलब्ध हो जाता है।

यह उपलब्धि किसी क्रिया के, किसी साधना के अंत में नहीं है, यह तो प्रारंभ में ही है। कोई क्रिया संकल्प नहीं हो जाती है, परन्तु विपरीततः जब सब क्रियायें, क्रिया मात्र शांति और शून्य होती है, तब उसका अवतरण होता है। खोदने से कंकड़-पत्थर मिलते हैं, जो सबसे बहुमूल्य है, जो अमूल्य है वह बिना खोदे ही मिल जाता है। कारण, वह खोया नहीं है, वह निरंतर है केवल हम उसे विस्मरण कर गये हैं। स्व-स्मृति की प्रकृति है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : पत्र मिल गया है। आप आनंदित हैं यह जानकर प्रसन्न हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

अर्धरात्रि :
30 जुलाई 62

प्रिय मां,

मैं शांति, आनंद और मुक्ति की बातें कर रहा हूं। जीवन की वही केन्द्रीय खोज है। वह पूरी न हो तो ज़ीवन व्यर्थ हो जाता है। कल यह कह रहा था कि एक युवक ने पूछा कि क्या सभी को मोक्ष मिल सकता है और यदि मिल सकता है तो फिर मिल क्यों नहीं जाता है?

एक कहानी उनसे मैंने कही। गौतम बुद्ध के पास एक प्रभात एक व्यक्ति ने भी यही पूछा था। उन्होंने कहा था कि जाओ और नगर में पूछ कर आओ कि जीवन में कौन क्या चाहता है? वह व्यक्ति घर-घर गया और संध्या को थका-मांदा एक फेहरिस्त लेकर लौटा था। कोई यश चाहता था, कोई पद चाहता था, कोई धन-वैभव-स्मृति, पर मुक्ति का आकांक्षी तो कोई भी नहीं था। बुद्ध बोले थे कि अब बोलो, अब पूछो, मोक्ष तो प्रत्येक को मिल सकता है। वह तो है ही पर तुम एक बार उस ओर देखो भी तो? हम तो उस ओर पीठ किये खड़े हैं!

यही उत्तर मेरा भी है। मोक्ष प्रत्येक को मिल सकता है जैसे कि प्रत्येक बीज पौधा हो सकता है। वह हमारी संभावना है। पर संभावना को वास्तविकता में बदलना है। इतना मैं जानता हूं कि यह बीज को वृक्ष बनाने का काम कठिन नहीं है। यह बहुत ही सरल है। बीज मिटने को राजी हो जाये तो अंकुर उसी क्षण आ जाता है। मैं मिटने को राजी हो जाऊं तो मुक्ति उसी क्षण आ जाती है। 'मैं' बंधन है; वह गया कि मोक्ष है।

'मैं' के साथ मैं संसार हूं। 'मैं' नहीं कि मैं ही मोक्ष हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

1 अगस्त 1962

प्रिय मां,

सुबह हो गई है। सूरज बदलियों में है और धीमी फुहार पड़ रही है। वर्षा ने सब गीला-गीला कर दिया है।

एक साधु पानी में भीगते हुए मिलने आये हैं। कोई 15-16 वर्ष हुए तब उन्होंने आत्म-उपलब्धि के लिए गृह-त्याग किया था। समाज और संबंध आत्म-लाभ में बाधा समझे जाते हैं। ऐसी मान्यता ने व्यर्थ ही अनेकों को जीवन से तोड़ दिया है।

एक कहानी उनसे में कहता हूं। एक पागल स्त्री थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि उसका शरीर स्थूल-भौतिक नहीं है। वह अपने शरीर को दिव्य-काया मानती थी। वह कहती थी कि उसकी काया से सुन्दर काया और दूसरा पृथ्वी पर नहीं है। एक दिन उस स्त्री को एक बड़े आदमकद आईने के सामने लाया गया था। उसने अपने शरीर को उस दर्पण में देखा और देखते ही उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने पास रखी कुर्सी को उठाकर दर्पण पर फेंका। दर्पण टुकड़े-टुकड़े हो गया था तो उसने सुख की सांस ली। दर्पण तोड़ने का कारण पूछने पर बोली थी कि वह मेरी शरीर को भौतिक किये दे रहा था। मेरे सौंदर्य को वह विकृत कर रहा था।

समाज और संबंध दर्पण से ज्यादा नहीं है। जो हममें होता है, वे केवल उसे ही प्रतिबिम्बित कर देते हैं। दर्पण तोड़ना जैसे व्यर्थ है, संबंध छोड़ना भी वैसे ही व्यर्थ है। दर्पण को नहीं, अपने को बदलना है। जो जहां है, वहीं यह बदल हो सकती है। यह क्रांति केन्द्र से शुरु होती है; परिधि पर काम करना व्यर्थ ही समय खोना है।

स्व पर सीधे ही काम शुरु कर देना है। समाज और संबंध कहीं भी बाधा नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मां, कैसी हो? लिखना ध्यान कैसा चल रहा है। ध्यान केन्द्र में यहां अब काफी लोग आये हैं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

4 अगस्त 1962

प्यारी मां,

सुबह है। आकाश शांत है। एक पक्षी के गीत को छोड़ और सब मौन है। इस मौन में न मालूम कौन चेतना में आ बसता है। न मालूम किस आयाम में स्वर खुल जाते हैं। न मालूम मनुष्य का कैसे अतिक्रमण हो जाता है।

मनुष्यता भी कैसी एक पतली सी सतह है। जरा डूबो और वह पीछे छूट जाती है।

मैं अब काम करता हूं। चलता हूं, उठता हूं, बैठता हूं, सोता हूं पर वह गहराई साथ नहीं छोड़ती है। एक शून्य है जो निरंतर साथ है। परिधि पर लहरें हैं और उन लहरों में घिरा केन्द्र पर एक अनंत शून्य है। जीवन की सब क्रियाओं के बीच में एक शून्य है। प्रतीत होता है कि बोल तो रहा हूं पर जैसे कोई और बोल रहा है। लिख तो रहा हूं पर जैसे कोई लिख रहा है। तब बहुत दूर कहीं हो रहा है और मैं और अलग कहीं और हूं।

यह भी दीखता है कि स्व की यह अलिप्तता, यह असंगता सदा ही ऐसी ही रही है। कल रात्रि अंधेरे में बैठा था। पर अंधेरा था। कक्ष अंधेरा था फिर प्रकाश किया तो वह प्रकाश से भर गया था। प्रकाश आया तो, अंधेरा था तो पर कक्ष तो वहीं है, वैसा ही है। ज्ञान हो अज्ञान हो सब तो वहीं है, वैसा ही है।

संसार है, पर कुछ है भीतर जो संसार के बाहर है। इस कुछ को जानना ही मुक्ति है।

रजनीश के प्रणाम।

(पुनश्च : पत्र नहीं, सो देना।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

अर्धरात्रि :
7 अगस्त 1962

प्रिय मां,

रात्रि आधी होने को है। आकाश आज बहुत दिन बाद खुला है। तारे बेतरतीब छितरे हैं। सब नहाया-नहाया मालूम होता है और आधा पीला सा चांद पश्चिम क्षितिज में डूबता जाता है।

संध्या आज केन्द्रीय कारागार में बोलता हूं। कोई डेढ़ हजार कैदी हैं। उनसे बातें करते-करते वे कैसे सरल हो जाते हैं। उनकी आंखों में कैसी पवित्रता झलकने लगती है– उसका स्मरण आ रहा है। आकाश में फैले तारे उनकी आंखों में झलक आये पवित्र आंसुओं से मालूम हो रहे हैं।

मैं वहां कहा हूं, ''प्रभु की दृष्टि में कोई पापी नहीं है। प्रकाश की दृष्टि में जैसे अंधेरा नहीं है। इसलिए, मैं तुमसे कुछ छोड़ने को नहीं कहता हूं। मैं मिट्टी छोड़ने को नहीं कहता हूं। मैं तो हीरे पाने को कहता हूं। हीरे पाले मिट्टी तो अपने आप ही छूट जाती है। जो तुमसे छोड़ने को कहते हैं वे नासमझ हैं। जगत में केवल पाया जाता है। एक नयी सीढ़ी पाते हैं तो पिछली सीढ़ी अपने आप छूट जाती है। छोड़ना नकारात्मक है। उसमें पीड़ा है, दुःख है, दमन है। पाना सत्ता लाना है। उसमें आतंक है। क्रिया में छोड़ना पहले दीखता है पर वस्तुतः पाना पहले है। पहले पहली सीढ़ी ही छूटती है पर उसके पूर्व ही दूसरी सीढ़ी पाली गई होती है। उसे पाकर ही, उसे पाया जानकर ही पहली सीढ़ी छूटती है। इससे, प्रभु को पाओ तो जो पाप जैसा दीखता है वह अनायास चला जाता है।

''सच ही, उस एक के पाने से सब पा लिया जाता है। उस सत्य के आते ही सब स्वप्न अपने से विलीन हो जाते हैं। स्वप्नों को छोड़ना नहीं है। जागना है। जो स्वप्नों को लड़ने में लाना है वह उन्हें मान लेता है। भारत स्वप्नों को मानता ही नहीं है। इससे ही यह कह सके हैं। अहम् ब्रम्हास्मि। 'मैं' ही ब्रहम हूं। यह जिनका उद्घोष है उनके लिए अंधेरे की कोई सत्ता ही नहीं है।''

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

''मित्र! इसे जानो। जानो कि अंधेरा है नहीं। जानो कि इसमें प्राण ही नहीं है। और जो इसे जान लेता है उसके लिए प्रकाश के द्वार खुल जाते हैं।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा पत्र मिल गया है, कितना प्रेम तुम उसमें भरती हो मां? फिर भी लगता है कि तुम्हें उसमें शायद ही तृप्ति होती होगी। मैं आनंद में हूं। सबको मेरे प्रणाम कहें। पत्र लिखा है 6 अगस्त को भेज रहा हूं आज 8 अगस्त को सो क्षमा करना।

दोपहर 8 अगस्त 1962)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

यात्रा से—
(नरसिंहपुर)
14 अगस्त 1962

प्रिय मां,

वर्षा के झोंकों में मधुकामिनी के फूल नीचे झर गये हैं। पानी जोर का पड़ रहा है और थोड़ी दूर के पार कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। स्टेशन पर भी इक्का-दुक्का यात्री है। जैसे प्लेटफार्म पर झांक कर देखा है और मधुकामिनी की गंध मुझ तक चली आई है। खिड़कियों के कांचों पर से पानी की बहती धारें बड़ी भली लग रही हैं।

मैं घर जा रहा हूं और दो-तीन दिन वहां रुकूंगा। ध्यान की कक्षायें आपने शुरु की हैं। यह जानकर बहुत प्रसन्न हूं। इस समय 8.00 बजे हैं और संभवतः आप बैठने को ही होंगी। यह स्मरण आते ही पत्र लिखने बैठ गया हूं। गाड़ी रुकी है और संभवतः पत्र पूरा होते-होते रुकी ही रहेगी! कक्षायें जारी रखियें फिर जब मैं आऊंगा तो परीक्षायें भी ली जा सकती हैं।

मैं पर्युषण व्याख्यान मालाओं में कलकत्ता-बम्बई और कानपुर बोल रहा हूं। 28 और 30 अगस्त को कलकत्ता बोलूंगा। 31 अगस्त को वायुयान से बम्बई पहुंचने को हूं। 1-2 और तीन सितम्बर का कार्यक्रम है। आपका स्वास्थ्य अब ठीक हो तो आप बम्बई पहुंचे। अच्छा हो कि हवाई अड्डे पर मुझे मिलें। मैं आशा करता हूं कि आप पहुंच रही हैं। श्री भीखचन्दजी एवं श्री भीखमचंदजी देशलहरा को भी मैं सूचित कर रहा हूं। आप भी इन्हें लिख दें। पर यदि स्वास्थ्य थोड़ा भी असुविधा दे रहा हो तो फिर पहुंचना नहीं है। जैसा भी हो लिखें। मैं आनंद में हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रणाम! कल संध्या घर से लौटा हूं और आते ही आपका पत्र मिला है। अध्यात्मिक जीवन की बढ़ती प्यास ध्यान का परिणाम है। ध्यान-साधना व्यक्ति को उस परिधि में ले जाती है जहां आत्मा का गुरुत्वाकर्षण प्रारंभ हो जाता है। एक बार ध्यान के शून्य में कूद जाने भर की बात है फिर शेष सब अपने आप हो जाता है। हमें केवल एक छलांग लेनी है और फिर शेष सब आकर्षण का आंतरिक केन्द्र अपने आप कर लेता है।

इससे ही मैं निरंतर कह रहा हूं कि एक ही कदम उठाना है और मंजिल पर पहुंचना हो जाता है। अप्रबुद्ध जीवन और प्रबुद्धता में बहुत फासला नहीं है। फासला केवल एक ही कदम का है। विचार प्रक्रिया से जागे कि छलांग लग जाती है।

और यह एक कदम कैसे आश्चर्य में पहुंचा देता है?

फिर जो प्रगट होता है वह शब्द के बाहर है।

दोपहर :
17 अगस्त 1962

रजनीश के प्रणाम!

(पुनश्च : बम्बई के लिए क्या विचार है? मैं कलकत्ता से वायुयान से 31 अगस्त को 9.00 बजे संध्या निकलूंगा और 10 बजे बम्बई पहुंचूंगा। उसके पूर्व ही अपको पहुंचना है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक मिट्टी का दीया जल रहा था। वह भी बुझ गया है। अंधेरे के सागर में डूब गया हूं। बिजली सांझ से ही नहीं है और दूर-दूर तक अंधेरे की मखमली चादर ने सब ढक लिया है।

किंतु, इस अंधेरे में भी भीतर प्रकाश है। आंख के बाहर अंधेरा है पर आंख बंद करते ही प्रकाश ही प्रकाश है

एक छोटा सा पलकों का परदा, पर फासला कितना है? कितनी सी दूरी पर कितनी दूरी है? आंख के बाहर काल और दिक् का जगत् है। भीतर दिक् और काल के बाहर हो जाते हैं।

और जब दिक् और काल के बाहर होते हैं, तभी होते हैं।

इन क्षणों में क्षण नहीं है और मैं हूं।

26.8.62

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मेरे पत्र तो मिल गये होंगे जिनमें मैं बम्बई 31 की रात्रि 10 बजे पहुंच रहा हूं इसकी सूचना दिया हूं? पर आपका कोई पत्र नहीं है। पत्र में आप कब पहुंच रही हैं। मैं कलकत्ता में वायुयान से सीधा बम्बई पहुंच रहा हूं। 1-2 और 3 सितम्बर बम्बई रुकना है। भाषण माटूंगा में है। दो भारत जैन महामंडल की व्याख्या माला में। पूना का भी निमंत्रण है पर अभी वहां का कोई निश्चय नहीं किया है। बम्बई पहुंचकर ही निर्णय लूंगा। शेष शुभ। सबको विनम्र प्रणाम। मैं सोचता हूं कि पारखजी भी बम्बई चल रहे हैं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक मंदिर में गया था। कृष्ण की मूर्ति के सामने नृत्य हो रहा था। जो थे वहां वे अपने को भूल गये थे।

एक दिन एक गांव में कुछ लोगों को शराब पिये देखा था। जो स्व को भूलने का आनंद उन्हें था, वही आज मंदिर में भी था।

स्व को भूलना मूर्च्छित होना है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है यह भूलना कैसे होता है। मनुष्य ने बहुत प्रकार की शराबें विकसित की हैं

स्व को भूलना नहीं है। स्व को पाना है। यह मूर्च्छा से नहीं, परिपूर्ण जागरुकता से होता है।

स्व निस्कृति इलाज नहीं प्रवंचना है। भक्ति को—पर में अपने को डुबा देने से—वह उपलब्ध नहीं होता है। पर में नहीं, स्व में ही गहरे चलने से वह पाया जाता है। ईश्वर को पाने में ईश्वर की समस्त पर-व्याखयाऐं बाधा है।

ईश्वर की धारणा मात्र बाधा है। जो है उसे पाने को समस्त धारणायें छोड़नी पड़ती हैं।

मैं जिस क्षण पर से मुक्त हूं, उसी क्षण चित्त से मुक्त हूं और जिस क्षण चित्त से मुक्त हूं उसी क्षण प्रभु को प्राप्त हूं।

27 अगस्त 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा पत्र मिल गया है। लिखा है कि बम्बई नहीं आ रही हैं—पर मैं तो मान रहा हूं कि आ रही हैं। मैं पहुंच कर राह देखूंगा।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रणाम! मैं कल बम्बई से लौटा हूं। श्री धनपतराय जी से आपका पत्र प्राप्त हो गया था। श्री भीखमचन्द जी कोठारी भी सपत्नीक पहुंच गये थे। बम्बई कार्यक्रम सफल हुए हैं। आपके स्वास्थ्य की चिंता जरुर हो गई थी। स्वास्थ्य अब कैसा है लिखें?

शेष शुभ है।

सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें। श्री कोठारी जी जी चांदा पहुंचने को हैं।

रात्रि :
5 सित. 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

आकाश बहुत दिनों बाद खुला है। तारे छिटके हैं और बारीश में चांदनी फैली है। झींगुरों के गीत को सुनता-सुनता अभी भीतर आया हूं।

दस बजे हैं। घंटा-घर की घड़ी घंटे बजा कर चुप हो गई है।

इस सन्नाटे को चीरकर अचानक एक बांसुरी बजने लगी है। उनके स्वर तैरते हुए शून्य में डूबते जाते हैं। शून्य से सब उठता है और फिर शून्य में खो जाता है। और जहां शून्य है, वहीं सत्य है।

कल यही कहीं कहा हूं। समस्त गति के पीछे शून्य है, समस्त क्रिया के पीछे शून्य है। परिधि पर क्रिया है, केन्द्र पर शून्य है। परिधि संसार हैं इसमें ही उलझकर जीवन बीत जाता है। पर प्ररिधि के प्रति जो जागता है वह शून्य को पा जाता है।

जागना शून्य को पा लेना है। यही कफन और अंतिम मुक्ति है।

रात्रि :
9 सित. 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : कल रात्रि तुम्हें देखा हूं। तबियत कैसी है? क्या एकाध दिन के लिए मैं आऊं?)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक कहानी पढ़ता था।

एक विश्रामालय में दो व्यक्ति आराम कुर्सियों में बैठे हुए थे। एक युवा था, एक वृद्ध। जो वृद्ध था वह आंखें बंद किये था पर बीच-बीच में मुस्कुरा रहा था। और कभी-कभी हाथ से और चेहरे से ऐसा इशारा करता था जैसे कुछ हटा रहा है। युवक से बिना बूझे ना रहा गया। वृद्ध ने एक बार आंखें खोलीं तो उसने पूछ ही लिया, 'इस अत्यंत कुरुप विश्राम गृह में ऐसा क्या है जो आपको मुस्कुराहट ला देता है?' वृद्ध बोला, 'मैं अपने से कुछ कहानियां कह रहा हूं। उनमें ही हंसी आ जाती है।' उस युवक ने पूछा, 'और हाथ से हटाते क्या है?' वृद्ध हंसने लगा, बोला, 'उन कहानियों को जिन्हें बहुत बार सुन चुका हूं।'

युवक ने कहा, 'आप भी क्या कहानियों से मन बहला रहे हैं?' वृद्ध उसे सुन बहुत जोर से हंसने लगा। बोला, 'एक दिन समझोगे कि पूरा जीवन ही कहानियों से अपने को समझा लेने का नाम है।'

निश्चित ही एक दिन ज्ञात होता है कि जिसे जीवन समझा था वह एक सपना था। कल यही एक जगह कहा हूं। इस कथा से, इस स्वप्न के पास जाना मुक्ति है।

14.9.1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र मिला है। कितना आने को मन कर रहा है। पर छुट्टियों की असुविधा है। आज तो टिकिट भी बुलाकर वापिस कर दिया है। स्वास्थ्य जब तक ठीक नहीं है, तब तक पत्र देती रहें। उनसे ही मन को समझा लूंगा!)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

२१.९.६२

प्रिय मां,

एक साधु आए थे। सत्य को खोज रहे हैं। सभी खोज में लगे हैं। कोई कुछ खोज रहा है, कोई कुछ पर खोज सभी रहे हैं। जो कुछ और खोज रहे हैं, वे पा भी लें पर जो सत्य को खोज रहा है वह तो उसे कभी भी नहीं पा सकता है। क्यों? क्योंकि सत्य तो यही है जो खोज रहा है! जो खोज रहा है उसे ही पाना है तो खोज छोड़ देनी आवश्यक है। जो खोज छोड़ देता है, वह उसे पा लेता है।

जीवन सत्य को पा लेने में पाने की आकांक्षा ही बाधा है। पाने की आकांक्षा ही मूल वासना है। संसार पाना छोड़ते हैं तो मोक्ष पाने में लग जाते हैं। वासना वहीं की वहीं बनी रहती है। और, सत्य तो यह है कि प्रयास मात्र वासना-जन्म हैं। वह वासना की सक्रिय अभिव्यक्ति है और वासना संसार है। मोक्ष की, सत्य की वासना भी संसार है।

ह्वांग-पो ने कहा है, ''खोज से ही तुम उसे खो देते हो।'' बुद्ध के द्वारा ही बुद्ध को पाने में लगे हो! मन से ही मन को बांधना चाहते हो! तुम यदि युग-युग भी प्रयास करो तो भी उसे पाओगे नहीं।''

एक क्षण सब छोड़ोः संसार भी, मोक्ष भी। असत्य भी सत्य भी। गृहस्थी भी, संन्यास भी। और फिर पाया जाता है—खोज छोड़ते ही पाया जाता है—कि जिये! जिसे खोजने दूर गये थे वह तो घर में ही बैठा था!

यही बस साधु से कहा हूं। पर उसने सुना नहीं। सुन सके ऐसे कान बहुत कम के पास हैं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

22.9.62

प्रिय मां,

"मैं साधक हूं। आध्यात्मिक साधना में लगा हूं। क्रमशः गति होती जा रही है। एक दिन मुक्ति भी हो जाने को है।"

एक साधु ने एक दिन मुझसे कहा था।

यह साधना भी बाधा है। जो है उसे पाने को अभ्यास क्या करता है। इसे पाना भी तो नहीं, यही जानना है कि वह खोया ही नहीं गया है। और साधना का उपक्रम इस सत्य को छिपा देता है। साधना का अर्थ है कुछ बदलना। 'मैं जो हूं' उसे बदलना है। 'अ' को 'ब' बताता है। समाज वासना के मूल में यही द्वंद्व होता है। यही द्वैत होता है। यह द्वैत ही जगत है और दुःख है। कुछ बदलना नहीं है। कुछ भी सुधारना नहीं है वरन् जो है उसके प्रति सम्यक् जाग्रति लानी है। कुछ करना नहीं, केवल जागना है। 'करने' का भ्रम ही बंधन है। वही अंहकार है।

बन्केई ने कहा है, "तुम जो हो उससे जरा भी कुछ और होने की आकांक्षा यदि है तो तुम 'जो है' उसके विपरीत जा रहे हो।" और 'जो है', यही मार्ग 'जो है' उसके प्रति जागते ही जीवन एक सहजता और सौंदर्य से भर जाता है। एक स्वतंत्रता और मुक्ति स्वांस- स्वांस में भर जाती है। यह सौंदर्य ज्ञान को कभी उपलब्ध नहीं होती है। उसमें एक हिंसा, एक दमन और कुछ होने की वासना के लक्षण सहजता को नष्ट कर देते हैं। इसलिए, एक कुरुपता समस्त तथाकथित साधुओं में होती है।

फिर क्या करें? **कुछ भी नहीं**। न करना—कुछ भी न करना—ध्यान में कर्म में स्व नहीं है, विचार में स्व नहीं है। कर्म और विचार के बाहर होते ही वह आविष्कृत हो जाता है। सब छोड़ दो—सब गिर जाने दो—सब विलीन हो जाने दो और फिर इस न कुछ में—इस शून्य में जो दीखता है वही सब कुछ है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : श्री कोठारी जी का पत्र आया है। उससे ज्ञात हुआ है कि स्वास्थ्य आपका अब ठीक है। तुम्हारे पत्र का तो मां, कोई पता ही नहीं है?)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

24.9.62

प्रिय मां,

एक चीनी अबोध कथा है।

एक युवक ने सेंग सान से पूछा था, 'मोक्ष की विधि क्या है?'

सेंग सान ने कहा, 'तुम्हें बांधा किससे है,'

वह युवक एक क्षण रुका फिर बोला, 'बांधा तो किसी से भी नहीं है।'

"तब", सेंग सान ने पूछा, 'फिर, मुक्ति क्यों खोजते हो?'

"मुक्ति क्यों खोजते हो?" यही प्रश्न मैंने भी एक युवक से पूछा है। यही प्रत्येक को अपने से पूछना है। बंधन है कहां? जो है उसके प्रति जागो। जो है उसे बदलने की फिक्र छोड़ो। आदर्श के पीछे मत दौड़ो। जो भविष्य में है, वह नहीं' जो वर्तमान है वही तुम हो। और वर्तमान में कोई बंधन नहीं है। वर्तमान के प्रति जागते ही बंधन नहीं पाये जाते हैं। आकांक्षा, कुछ होने और कुछ पाने की आकांक्षा ही बंधन है। आकांक्षा सदा भविष्य में है। आकांक्षा सदा फल है। वही बंधन है, वही तनाव है, वही दौड़ है, वही संसार है। यह आकांक्षा ही मोक्ष का भी निर्माण करती है। मोक्ष पाने के मूल में नहीं है। और बंधन मूल में हो तो परिणाम में मोक्ष कैसे हो सकता है? मोक्ष की शुरुआत मुक्त होने से करनी होती है। वह अंत ही नहीं, वही आरंभ भी है।

मोक्ष पाना नहीं है वरन् दर्शन करना है कि मैं मोक्ष में ही खड़ा हूं। मैं मुक्त हूं, यह बोध शांत जाग्रत चेतना में सहज ही उपलब्ध हो जाता है। प्रत्येक मुक्त है, केवल इस मध्य के प्रति जागना मात्र है।

मैं जैसे ही दौड़ जोड़ता हूं—कुछ होने की दौड़ जैसे ही जाती है कि मैं हो आता हूं। और 'हो आता'—पूरे अर्थों में हो आना ही मुक्ति है। तथाकथित धार्मिक व्यक्ति इस 'हो आने' को नहीं पा पाता है क्योंकि वह दौड़ में है—मोक्ष पाने की, आत्मा को पाने की, ईश्वर को पाने की। और जो दौड़ में है—चाहे उस दौड़ का रूप कुछ भी क्यों न हो—वह आने में नहीं है। धार्मिक होना आस्था की बात नहीं, किसी ध्यान की बात नहीं, किसी क्रिया की बात नहीं, धार्मिक होना तो अपने में होने की बात है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

और यह मुक्ति एक क्षण मात्र में आ सकती है। इस सत्य के प्रति सजग होते ही, जागते ही– कि बंधन दौड़ में है, आकांक्षा में है, आदर्श में है–अंधेरा नीर आज है और जो दीखता है उससे बंधन पाये ही नहीं जाते हैं।

लक्ष्य एक क्षण में क्रांति कर देता है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : स्वास्थ्य कैसा है? मुझ पर नाराज हैं। सोचता हूं, क्योंकि एक अरसे से पत्र जो नहीं है। कोठारी जी का पत्र आया है। आपको लिखे गये मेरे पत्रों की प्रति चाहते हैं। प्रति हो सके तो दे दें अथवा थोड़े दिनों बाद उनके प्रकाशन की ही कोई व्यवस्था की जा सकती है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

25.9.62

प्रिय मां,

''जीवन का आदर्श क्या है?''

एक युवक ने पूछा है।

रात्रि घनी हो गई है और नहाये-नहाये तारों से आकाश भरा है। हवाओं में आज सर्दी है। शायद कोई कहता था, कि कहीं ओले पड़े हैं। राह निर्जन है और वृक्षों के तले घना अंधेरा है।

और इस शांत-शून्य घिरी रात्रि में जीना कितना आनंद है। होना मात्र ही कैसा आनंद है। पर हम लोग ही भूल गये हैं। जीवन कितना आनंद है पर हम मात्र जीना नहीं चाहते हैं हम तो किसी आदर्श के लिए जीना चाहते हैं। जीवन को साधन बनाना चाहते हैं जो कि स्वयं साध्य है। यह आदर्श की दौड़ सब विषाक्त कर देती है। यह आदर्श का तनाव सब संगीत तोड़ देता है।

बादशाह अकबर ने एक बार तानसेन से पूछा था, 'तुम अपने गुरु जैसा क्यों नहीं गा पाते हो–उनमें कुछ अलौकिक दिव्यता है?' उत्तर में तानसेन ने कहा था, 'वे केवल गाते हैं–गाने के लिए गाते हैं और मैं–मेरे गाने में उद्देश्य है।'

किसी क्षण केवल जीकर देखो। केवल जिओ–जीवन से लड़ो मत। छीना-झपटी न करो। चुप होकर देखो क्या होता है। जो होता है उसे होने दो–'जो है' उसे होने दो। अपनी तरफ से सब तनाव छोड़ दो और जीवन को बहने दो–जीवन को घटित होने दो–और जो घटित होगा–मैं विश्वास दिलाता हूं–वह मुक्त कर देता है।

आदर्श का भ्रम सदियों पहले गये अंधविश्वासों में से एक है। जीवन किसी और के लिए नहीं, कुछ और के लिए नहीं, बस जीने के लिए है। जो किसी लिए जीता है, वह जीना ही नहीं है। जो केवल जीता है वही जीता है।

उस युवक की ओर देखता हूं उसके चेहरे पर एक अद्‌भुति शांति फैल गई है। वह कुछ बोलता नहीं है पर सब बोल देता है। कोई एक घंटा मौन और शांत बैठकर वह गया है। वह बदलकर गया है। जाते समय उसने कहा है, 'मैं दूसरा व्यक्ति होकर जा रहा हूं।'

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

27.9.62

प्रिय मां,

सूरज निकला है। सर्दियों की सुबह सी लग रही है। रात हवायें ठंडी थी और सुबह दूब पर ओस कण भी छाये हुये। अब तो किरणें उन्हें पी गई हैं और धूप भी गरमा गई है।

एक सुखद सुबह दिन का प्रारंभ कर रही है। पक्षियों के अर्थहीन गीत भी कितने अर्थपूर्ण मालूम हो रहे हैं—शायद, जीवन में कोई भी अर्थ नहीं है और अर्थ की कल्पना मनुष्य की अपनी है। अर्थ नहीं है शायद इससे ही जीवन में अनंत गहराई और विस्तार है। अर्थ तो सीमा है। जीवन, अस्तित्व है असीम, इससे अर्थ वहां कोई भी नहीं है। और जो अपने को इस असीम में असीम कर लेता है, इस विराट् अर्थहीन में अर्थहीन हो जाता है, वह उसे पा लेता है 'जो है'—वह अस्तित्व को पा लेता है। सब अर्थ क्षुद्र है और क्षुद्र का अर्थ अहं के बिंदु से देखा गया है। अहं ही अर्थ का केन्द्र है। उससे जो जगत् देखा जाता है वह वास्तविक जगत् नहीं है। जो भी 'मैं' से संबंधित है वह वास्तविक नहीं है। सत्य अखंड खाई हैं वह 'मैं' और 'न मैं' में विभाजित नहीं हे। सब अर्थ में 'जो है' इससे जो अखंड है, जो 'मैं' और 'न-मैं' के अतीत है वह अर्थ शून्य है। इसे कोई भी नाम देना गलत है। इसे ईश्वर भी कहना गलत है। ईश्वर भी 'मैं' के ही प्रसंग में है। वह भी 'मैं' की ही धारणा है। कहें कि जो भी सार्थक है, वह व्यर्थ है। सार्थकता की सीमा के बाहर हो जाना आध्यात्मिक होना है।

बोधिधर्म से सदियों पूर्व चीन में किसी ने पूछा था, 'निर्वाण की पवित्रता क्या है?' वह बोला था, 'पवित्रता कुछ भी नहीं, केवल शून्यता निर्वाण है।'

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मां स्वास्थ्य तुम्हारा क्या बिगड़ा है कि तुम मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रही हो! सुबह-शाम, सोते-जागते तुम दीख जाती हो अब तो रात बीतचीत भी कर गई हो—पर बीमारी में और भी अच्छी दीख रही थीं!)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं 6 अक्तूबर की संध्या जी.टी. से चांदा पहुंच रहा हूं। श्री पारखजी का पत्र भी मिला है। उदयपुर जाना स्थगित कर दिया है। वहां जाता तो आपके पास पहुंचने में देर होती, इसलिए! चांदा 13 तक रुकूंगा। 13 को दोपहर वर्धा जाकर दिग्रस जाना तय किया है। दिग्रस 14 को रुकूंगा और 15 को जबलपुर वापिस होना है। बम्बई से भी ताराचंद जी कोठारी मेरे पास 7 दिन के लिए आना चाहते थे। छुट्टियों में इतनी देर जबलपुर में नहीं रुकूंगा इसलिए उन्हें चांदा आने को लिखा है; यदि वहां असुविधा न हो तो उन्हें आने के लिए एक तार करो और पत्र भी लिख दें। फोन नं. भी उनका दे रहा हूं। संभव हो तो फोन कर ले। शेष शुभ है। मैं कल यहां आया हूं। आज बोलना है और कल जबलपुर वापिस लौटूंगा। मैं आशा करता हूं कि मैं जब पहुंचूंगा तो आप स्वस्थ मिलने को हैं।

सबको मेरे विनम्र प्रणाम।
29.9.62

रजनीश के प्रणाम

श्री ताराचंद संत, कोठारी,
162, मुम्बादेवी रोड़,
बम्बई-2
फोन : ऑफिस—324550
निवास—74432

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

12.10.62

मां,

एक उपदेश सुना है। सुनकर सोचता हूं कि क्या हमारा सारा धर्म सड़-गल नहीं गया है? जिस संस्कृति के सारे मसीहा और तीर्थंकर अतीत में हो चुके हों वह वस्तुतः मृत ही हो चुकी होती है। अतीत ही जिसका सब कुछ है ऐसे खंडहर हो चुके हैं।

समय प्रतिक्षण नया है। स्थिति प्रतिक्षण कुछ और ही है। जीवन की गंगा हर दिन नयी भूमि पर है–नई है। पर हम सब पुराने हैं। समस्यायें नई हैं पर समाधान नये नहीं है। स्थिति के प्रति जागरण से नहीं–स्मृति को जगाकर हम.... खोजते हैं।

और फिर यदि ये हल हल साबित न हों तो दोष किसका है? सच यह है कि कोई पुराना समाधान कभी भी सार्थक नहीं है। क्योंकि कोई स्थिति दुबारा नहीं आती है। जीवन पुनरुक्त नहीं होता है। पुनरुक्ति जड़ का स्वभाव है। जीवन है ही .... नहीं है। समस्याओं के समाधान के लिए–बने-बनाये उत्तर और क्रियायें नहीं; एक ऐसी मनःस्थिति चाहिए जो वर्तमान के प्रति जाग सके–'जो है' उसे समझ सके। इस 'समझ' के लिए अतीत-स्मृतियों के भार से मुक्ति आवश्यक है। अतीत से, अनुभव से, स्मृति से जितना मुक्त मन है। उतना ही निर्दोष है–उतना ही सरल है। ऐसी मनःस्थिति में धार्मिक कहता हूं।

धर्मग्रन्थों के यथाकथित ज्ञान से जो भारी हैं वे केवल बोझ ढो रहे हैं। ज्ञान भारहीन स्थिति में स्व-स्पंदित होता है। व्यर्थ भार के हटते ही ज्ञान के झरने स्वतः फूट पड़ते हैं। और फिर ऐसा ज्ञान बांधता नहीं, मुक्त करता है। जो बांधे वह ज्ञान नहीं है। बाहर से आया हुआ कुछ भी मुक्त नहीं करता है। वह सब बंधन और भार है। पर भीतर से कुछ आ सके इसके लिए बाहर से जो आया है उसे हरा देना आवश्यक है। उसके हटते ही एक सरलता–एक निर्दोषिता अवतरित होती है जो अलौकिक है–असृष्ट है–कालातीत है।

इस सरलता के आते ही जीवन में जी पाने योग्य है–सौंदर्य, सत्य, आनंद, शिवत्व–वह सब अनायास ही मिल जाता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक मुर्गा बोल रहा है, सुनता हूं।

एक गाड़ी मार्ग से जा रही है। देखता हूं।

सुनना है, देखना है और बीच में कोई शब्द नहीं। शब्द सत्ता से तोड़ देता है। शब्द सत्य के सम्बोध में है, सत्य नहीं है। सत्य तक शब्द से नहीं, शब्द खोकर पहुंचना होता है।

और शब्द खोना समाधि है। लेकिन केवल शब्द खोना मात्र समाधि नहीं है। शब्द तो मूर्च्छा में भी खो जाते हैं। सुशुप्ति में भी खो जाते हैं। शब्द खोकर भी जाग्रत, चेतन और प्रबुद्ध बने रहना समाधि है।

यह एक साधु से कह रहा हूं। ये तल्लीनता और मूर्च्छा को समाधि मानते रहे हैं। यह भ्रम बहुतों को रहा है। यह भ्रम बहुत घातक है। इस भ्रम में ही पूजा, भक्ति और मूर्च्छित होने के बहुत से उपाय प्रचलित हुए हैं। वे सब उपाय पलायन हैं और उनका उपयोग मादक द्रव्यों से भिन्न नहीं है। उनमें व्यक्ति अपने को भूल जाता है। इस भूलने, इस आत्म विस्मरण से आनंद का आभास पैदा होता है पर योग आत्म विस्मरण नहीं, पूर्ण आत्म स्मरण चाहता है।

मैं जब परिपूर्ण रुप से जागता हूं तब मैं परिपूर्ण रुप से हो पाता हूं। यह जागना शब्द से, विचार से, मन से मुक्त होने से होता है। इस जाग्रति में, हम शब्द शून्य चेतना में, 'मैं' से घिर जाता है पर मैं नहीं मिटता है। वरन् 'मैं' के मिट जाने पर, अहं बोध के मिट जाने पर मैं परिपूर्णता हो जाता हूं।

28.10.62

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : उस रात्रि सकुशल आ गया था। स्वास्थ्य अब आपका बिल्कुल ठीक होगा आशा करता हूं। सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

दोपहर शांत है। धूप भली लग रही है और हवाओं में कहीं से शहनाई के स्वर गूंजते आ रहे हैं।

एक व्यक्ति अभी-अभी गये हैं और एकांत हो गया है। जो गये हैं, उनके संबंध में सोच रहा हूं। उनका अध्ययन विशाल है पर भीतर सब खाली-खाली है। कितना वे जानते हैं पर कुछ भी तो नहीं जान पाए हैं। ज्ञान के नीचे कैसा अज्ञान डेरा डाल देता है। बुद्धि से जाना हुआ कभी भी ज्ञान नहीं बन जाता है। अध्ययन विस्तार देता है, गहराई नहीं और 'जो है' वह गहराई में है। इस गहराई में उतरने के लिए साहस चाहिए। सुरक्षा छोड़नी पड़ती है। आस्थायें और धारणायें छोड़नी पड़ती हैं। भ्रम छोड़ने पड़ते हैं। यह आंतरिक मानसिक अपरिग्रह न हो तो कोई अपने में नहीं उतर पाता है। यह साहस धार्मिक व्यक्ति का लक्षण है। ज्ञान को छोड़कर अज्ञान में कूदने का साहस धार्मिकता का प्राण है। ज्ञान सतह है। केन्द्र तो अज्ञान है। केन्द्र पर चलना है तो ज्ञान को छोड़ना अपरिहार्य है।

'मैं जानता हूं' यह भाव ज्ञान के आने में बाधा है। जानने पर तो जाना जाता है कि मैं हूं ही नहीं। यह 'मैं जानता हूं' बौद्धिक भ्रांति है। विचारों के, उधार और पराये और मृत विचारों के, संग्रह से यह भ्रांति पैदा हो जाती है। इस मृत ढेर को भी एक ओर उठाकर रख सकता है और धारणा शून्य, विचार शून्य और मुक्त खड़ा हो सकता है। सत्य उसमें अवतरित हो जाती हैं

सत्य को अपने में आने देने की शर्त शून्य होना है।

22.9.62

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मां, कैसी हो लिखना? मैं कल गाडरवारा जा रहा हूं और ३१ अक्तूबर तक वहां रुकूंगा। शेष शुभ, सबको प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं अंगुलियों पर गिनी जा सकें इतनी बातें कहता हूं।

एक–मन को **जानना** है–जो इतना निकट है फिर भी इतना अज्ञात है;

दो–मन को **बदलना** है–जो इतना हठी है पर परिवर्तित होने को इतना आतुर है;

और तीन–मन को **मुक्त** करना है, जो पूरा का पूरा बन्धन में है किन्तु अभी और यहीं मुक्त हो सकता है।

ये तीन बातें भी कहने की हैं करता तो केवल एक ही काम है। वह है मन को जानना। शेष दो उस एक के होने पर अपने आप हो जाती हैं। ज्ञान ही बदलाहट है, ज्ञान ही मुक्ति है।

यह कल कहता था कि किसी ने पूछा, 'यह जानना कैसे हो?'

यह जानना जागने से होता है। शरीर और मन दोनों की हमारी क्रियायें मूर्च्छित हैं। प्रत्येक क्रिया के प्रति जागना आवश्यक है। मैं चल रहा हूं। मैं बैठा हूं या मैं लेटा हुआ हूं। इसके प्रति सम्यक् स्मरण चाहिए। ये बैठना चाहता हूं। इस मनोभाव या इच्छा के प्रति भी जागना है। चित्त पर क्रोध है या क्रोध नहीं है; इस स्थिति को भी देखना है। विचार चल रहे हैं या नहीं चल रहे हैं इसके प्रति भी साक्षी होना है।

यह जागरण ध्यान हो या संघर्ष से नहीं हो सकता है। कोई निर्णय नहीं लेना है। सद्-असद् के बीच कोई चुनाव नहीं करना है। केवल जागना है। जब जागना है तो जागते ही मन का रहस्य खुल जाता है। मन जान लिया जाता है और केवल जानने से परिवर्तन हो जाता है और परिपूर्ण जानने से मुक्ति हो जाती है।

इससे मैं कहता हूं कि मन की बीमारी से मुक्ति आसान है क्योंकि यही निदान ही उपचार है!

प्रभात :
23.10.1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

गाडरवारा : 29.9.1962

प्रिय मां,

धूप में मंदिरों के कलश चमक रहे हैं। आकाश खुला है और राह पर लोगों की भीड़ बढ़ती जा जाती है। मैं राह चलते लोगों को देख रहा हूं—पर, न मालूम क्यों ऐसा लगता है कि वे जीवित हैं। जीवन का, अस्तित्व का बोध न हो तो किसी को जीवित कैसे कहा जा सकता है? जीवन आता है और कब व्यय हो जाता है यह जैसे ज्ञात ही नहीं हो पाता है। साधारणतः जब मृत्यु की घड़ियां आती हैं तब जीवन का बोध होता है। एक कहानी पढ़ी थी। एक व्यक्ति था—बिल्कुल भुल्लकड़! वह भूल ही गया था कि जीवित है फिर एक दिन सुबह वह उठा और उठते ही पाया कि वह मर गया है तब उसे ज्ञात हुआ कि वह जीवित भी था! यह कहानी बहुत सत्य है।

मैं इस कहानी का स्मरण बन रहा हूं। बहुत हंसी आती है कि मरकर किसी ने जाना कि वह जीवित था—पर फिर हंसी धीरे-धीरे उदासी में बदल जाती है। यह कैसी स्थिति है—यह कैसी दयनीय स्थिति है।

मैं यह सोच रही रहा हूं कि कुछ लोग आ गए हैं। उन्हें देखता हूं। उनकी बातें सुनता हूं। उनकी आंखों में झांकता हूं। जीवन उनमें कहीं भी नहीं है। वे तो जैसे छायाओं की तरह हैं। सारा जगत् छायाओं से भर गया है। अपने ही हाथों अधिक लोग प्रेत लोक में रह रहे हैं। और इस छायाओं के भीतर जीवित अगर है—जीवन है लेकिन उन्हें इसका पता ही नहीं है। इस छाया-जीवन के भीतर वास्तविक जीवन हों। इस प्रेत-जीवन के पार सत्य जीवन भी है और जिसे अभी और यहीं पाया जा सकता है।

और इसे पाने की शर्त कितनी छोटी है?
और इसे पाने का उपाय कितना सरल?
कल मैंने कहा है, दृष्टि को भीतर ले चलना है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं 24 को घर आया हूं। 31 तक को यहां रहूंगा। आज सुबह श्याम का ख्याल आया था। कैसा है? ध्यान कर रहा है या नहीं और प्रमिला भी। दोनों को मेरा स्नेह कहें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

गाडरवारा :
21.9.1962

प्रिय मां,

रात्रि अभी गई नहीं है और विदा होते तारों से आकाश भरा है। नदी एक पतली चांदी की धार जैसी मालूम होती है। रेत रात गिरी ओस से ठंडी हो गई है और हवाओं में बर्फीली ठंडक है।

एक गहरा सन्नाटा है और बीच-बीच में पक्षियों की आवाज उसे और गहरा देती है।

एक मित्र को साथ ले कुछ जल्दी ही इस एकांत में चला आया हूं। वे मित्र कह रहे हैं कि एकांत में भय मालूम होता है और सन्नाटा काटता सा लगता है। किसी भांति अपने को भरे रहें तो ठीक अन्यथा न मालूम कैसा संताप और उदासी घेर लेती है।

यह संताप प्रत्येक को घेरता है। कोई भी अपना साक्षात् नहीं करना चाहता है। स्व में झांकने से घबराहट होती है और एकांत स्वयं के साथ छोड़ देता है इसलिए एकांत भयभीत करता है। पर मैं उलझे हों तो स्व भूल जाता है। वह एक तरह की मूर्च्छा है और पलायन है। सारे जीवन मनुष्य इस पलायन में लगा रहता है पर यह पलायन अस्थायी है और मनुष्य किसी भी भांति अपने आपसे बच नहीं सकता है। बचाव के लिए की गई उसकी सब चेष्टाएं व्यर्थ हो जाती हैं क्योंकि वह जिससे बचना चाह रहा है वह स्वयं तो वही है। मनुष्य भीतर शून्य है। इस शून्य से भागना असंभव है। इस शून्य को भरने का विचार भ्रम है।

'फिर क्या करें?'

इस शून्य से परिचित हों—इस शून्य में चलें—और परिचित होते ही ज्ञात होता है कि जो संताप प्रतीत होता था वह संताप नहीं, जीवन था। वह दुःख नहीं, आनंद है। वह खोना नहीं, पाना है। धर्म इस शून्य से परिचित होने का विज्ञान है। किसी ने कहा है, मनुष्य एकांत में अपने साथ जो करता है वही धर्म है। कर्म शून्य में होना है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र आज मिला है। खूब लम्बा पत्र लिखा है। मैं तो पढ़ते-पढ़ते थक ही गया हूं। 31 की रात्रि जबलपुर पहुंच रहा हूं। यहां ध्यान का शिविर चल रहा है। कोई 100-120 लोग आ रहे हैं। लोगों की ध्यान के प्रति उत्सुकता बढ़ी है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

दोपहर ढल रही है। वृक्षों की छायायें फिर लम्बा गई हैं। एक शोक सभा से लौट रहा हूं। एक परिचित नहीं हो गये हैं। कल तक थे। अब नहीं है। कल तक एक क्षण को उन्होंने नहीं सोचा था कि कल नहीं होने को है। और आज जो वहां थे—वे भी यह नहीं सोच रहे थे। रोज मृत्यु घटित होती है पर शेष सबको वह एक बाह्य घटना है। कोई मरता है पर 'मैं मरूंगा' यह चेतना नहीं आती है। मृत्यु सदा बाह्य बनी रहती है। वह मेरी आंतरिक घटना नहीं बताती है। मैं अपने को मरता हुआ सोचूं तो भी वह तथ्य बाह्य ही है। 'मैं' मृत्यु को नहीं सोच सकता है क्योंकि मृत्यु उसकी ही होती है। और फिर एक प्रश्न बीच में उठ जा खड़ा होता है। 'जो मरता है क्या वह कभी जीवित भी था?' जीवन मृत्यु में कैसे परिणित हो सकता है? जो है, वह नहीं कैसे हो जायेगा? जो है, वह है और नहीं-नहीं हो सकता है। अर्थात्, केवल जो नहीं है, वही नहीं हो जाता है—जो जीवित नहीं है वही मरता है।

और इस सत्य का साक्षात मृत्यु के पूर्व भी करना संभव है। मृत्यु के पूर्व ही मृत्यु को जाना जा सकता है—जो हममें मृत है, जो नहीं है, उसे देखा जा सकता है। प्रकृति मृत्यु में इसे भी दिखा देती है—योग इसे कभी दिखा सकता है।

योग मृत्यु को अनुभव करना है—मृत्यु में से गुजरना है। इससे हा योग 'मैं' के पार उठने को कहता है। 'मैं' से अतीत होना मृत्यु को अनुभव करता है और मृत्यु को अनुभव करना—मृत्यु को जी लेना—मृत्यु से मुक्त हो जाना है।

इस मुक्ति पूर्व जीवन भी उपलब्ध नहीं होता है। यह विरोधाभासी दीखता है पर सत्य भी यही है कि जो मृत्यु को देख लेता है वही जीवन को उपलब्ध होता है।

1.11.62

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आज तुम्हारा पत्र मिला है। उसने तो बिल्कुल तुम्हें करीब ही ला खड़ा किया। तुम्हारी सांसें छू ही गई।) 2.11.62

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि : 4 नवम्बर 1962

प्रिय मां,

एक मित्र कुछ कागज के फूल भेंट कर गये हैं। उन फूलों को देखता हूं—जो दीख रहा है उसके पार उनमें कुछ भी नहीं है। उनमें सब कुछ दृश्य है; अदृश्य कुछ भी नहीं है और बाहर दहेलिया के फूल खिले हैं उनमें जो दीख रहा है उसके पार कुछ अनदिखा भी नहीं है और वह अदृश्य ही उनका प्राण है।

आधुनिक सभ्यता कागज के फूलों की सभ्यता है। दीखते—दृश्य पर वह समाप्त है और इसीलिए निष्प्राण भी है। अदृश्य से—अज्ञात से नाता टूट गया है और इसलिए मनुष्य जितना आज जड़ों से अलग हो गया है उतना इसके पूर्व कभी भी नहीं हुआ था।

वृक्ष-फूल-फल-पत्ते सब दृश्य हैं पर जड़ें भूमि में होती हैं—जड़ें अज्ञात और अदृश्य में होती हैं—और जो जड़ें देखी जा सकती हैं—जड़ें उन पर ही समाप्त नहीं हो जाती हैं—और भी जड़ें हैं जो देखी ही नहीं जा सकती हैं। प्राण जहां से स्वर प्राण से संयुक्त हैं वह केन्द्र अज्ञात ही नहीं अज्ञेय भी है।

इस अज्ञेय से संयुक्त मनुष्य वास्तविक जड़ों को पा जाता है। इस अज्ञेय को विचार से नहीं पाया जा सकता है। विचार की सीमा ज्ञेय पर समाप्त है। विचार स्वयं ज्ञेय और दृश्य है और जो दृश्य है वह अदृश्य को जानने का माध्यम नहीं बन सकता है। सत्ता विचार के पार है। अस्तित्व विचार के अतीत है।

अस्तित्व को इसीलिए जाना नहीं जाता है—छुआ जाता है। उससे पृथक्—दर्शक होकर परिचित नहीं होना होता वरन् उसमें एक होकर होना होता है।

विचार छोड़कर—शांत—शून्य होकर वह अद्वैत सध जाता है जो सत्य में—सत्ता में खड़ा कर देता है। कागज के फूल देखने में तो दूर से देखे जा सकते हैं—उनका दृष्टा हुआ जा सकता है पर असली फूल देखने हों तो फूल ही बन जाना जरुरी है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मां, आज संध्या से तुम्हारा स्मरण है। अभी घूम रहा था और तुम द्वार पर खड़ी मौन होकर जो बुलाने लगीं तो भीतर आकर पत्र लिखने बैठ गया हूं। कभी-कभी यह क्या करती हो?)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

९.११.६२

प्रिय मां,

एक लड़की रो रही है। उसकी गुड़िया टूट गई है।......और मैं सोचता हूं कि सब ऐसा क्या गुड़ियों के टूट जाने के लिए ही रोना नहीं है?

कल संध्या एक वृद्ध आये थे। उनसे जीवन में जो चाहा था, वह नहीं हो सका है। वे उदास थे और संताप ग्रस्त थे। एक महिला आज मिली थीं और बातें करते-करते आंसू पोंछ लेती थी। उसने स्वप्न देखे थे और वे सत्य नहीं हुए हैं। और जब यह लड़की रो रही है और क्या इस लड़की की आंखों में सब आंसुओं की बुनियादी झलक नहीं है और इसके सामने टूटी गुड़िया में क्या सब आंसुओं का मूल कारण साकार नहीं हुआ है? उसे कोई समझा रहा है कि आखिर गुड़िया ही तो है उसके लिए रोना क्या है? यह सुन मुझे हंसी आ गई। काश! मनुष्य इतना ही जानले तो क्या समस्त दुःख समाप्त नहीं हो जाता है?

गुड़िया, बस गुड़िया है यह जानना कितना क़ठिन है।

मनुष्य मुश्किल से इतना प्रौढ़ हो जाता है कि यह जान के। शरीर का प्रौढ़ होना एक बात है; मनुष्य का प्रौढ़ होना बिल्कुल दूसरी बात है। सम्यक् प्रौढ़ता पाने के पूर्व ही मर जाना बहुत सार्वजनिक है। प्रौढ़ता क्या है? मनुष्य की प्रौढ़ता मन से मुक्त होना हैं मन जब तक है तब तक गुड़िया बनाता रहता है। मन से मुक्त होते ही गुड़ियों से मुक्ति होती है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

पूर्णिमा
12 नव. 1962

प्रिय मां,

एक प्रवचन पढ़ रहा हूं। कोई साधु बोले हैं। क्रोध छोड़ने को, मोह छोड़ने को, वासनायें छोड़ने को कहा है। जैसे ये सब बातें छोड़ने की हों—किसी ने चाहा और छोड़ दिया—पढ़ सुनकर ऐसा ही प्रतीत होता है। इस उपदेशों को सुनकर ज्ञात होता है कि अज्ञान कितना घना है। मनुष्य के मन के संबंध में धार्मिकों की जानकारी कितनी कम है।

एक बच्चे से एक दिन मैंने कहा कि तुम अपनी बीमारी को छोड़ क्यों नहीं देते? वह बीमार बच्चा हंसने लगा और बोला था कि क्या बीमारी छोड़ना मेरे हाथ में है।

प्रत्येक व्यक्ति विकार और बीमारी को छोड़ना चाहता है पर विकार की जड़ों तक जाना आवश्यक है—वे जिस अचेतन गर्त से जाते हैं वहां तक जाना आवश्यक है—केवल चेतन मन के संकल्प से उनसे मुक्ति नहीं पाई जा सकती है।

एक कहानी फ्रॉयड ने कही है। एक ग्रामीण शहर के किसी होटल में ठहरा था। रात्रि उसने अपने कमरे के प्रकाश को बुझाने की बहुत कोशिश की पर असफल ही रहा—उसने प्रकाश को फूंक कर बुझाना चाहा, बहुत शक्ति से फेंका पर प्रकाश था कि अकम्पित ही जलता गया फिर उसने सुबह इसकी शिकायत की थी। शिकायत के उत्तर में उसे ज्ञात हुआ था कि वह प्रकाश दिये का नहीं था जो फूंकने से बुझ जाता—वह प्रकाश तो विद्युत् का था। उसे फूंकना नहीं होता है; उसे बुझाने को बटन होती है।

और मैं कहता हूं कि मनुष्य के विकारों को भी बुझाने की बटन होती है। वे मिट्टी के दीये नहीं हैं; वे विद्युत के दीये हैं! यह विधि अचेतन में छिपी हुई है। चेतन के सब संकल्प फूंकने की भांति व्यर्थ है। केवल, अचेतन में ध्यान के माध्यम से ही उनकी जड़ें टूटती हैं।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : पत्र मिला है। कोई चिंता में न पड़ें—जो छिन सकता है वह अपना नहीं है और भीतर एक बादशाहत भी है कि जिसे कोई भी नहीं छीन सकता है। केवल वही अपनी है। उस पर ही ध्यान रखना है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक मकड़ी ने पतंगा पकड़ लिया है। पतंगे के चारों ओर उसके पैर कसते गये हैं और.........और मैं देख रहा हूं कि मनुष्य के चारों ओर भी ऐसे ही घृणित और घिनौने पैर कसते जा रहे हैं। एक विषाक्त हिंसा चारों ओर फैलती जाती है। मनुष्य अपने ही हाथों–अपने अंधेपन और अपनी अचेतन घृणा और हिंसा से आत्मघात की ओर चल रहा है। इस आत्मघाती हिंसा के रुप अनेक हैं–और अक्सर रुप सुन्दर होते हैं और रुप शांति और प्रेम की चादर से ढंके होते हैं–स्वतंत्रता, समाजवाद, लोकतंत्र–पर पीछे, पीछे सबके पशु बैठा है।

मनुष्य का, व्यक्ति का पशु नहीं जाता है तो विश्व से पशुता नहीं जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अचेतन में आक्रमक और हिंसक वृत्तियों से भरा है। वे वृत्तियां स्वाभाविक हैं। उनका समग्र जोर राष्ट्रीय आक्रमण और हिंसा का रुप लेता है। व्यक्ति ही विस्तृत होकर राष्ट्र है। व्यक्ति का अहं ही जुड़कर राष्ट्र-अहं बन जाता है। यह राष्ट्रीय अहं ही समस्त युद्धों का मूल कारण है। इसका सीधा कोई उपचार नहीं है। व्यक्ति–इकाई से ही क्रांति करनी है। यह क्रांति व्यक्ति को अहं से मुक्त करती है और परिणाम में वह किसी राष्ट्रीय-अहं का अंग नहीं रह जाता है। जब तक ऐसे व्यक्तियों का जन्म नहीं होता है जो कि किसी राष्ट्र के न हों–जो केवल विश्व नागरिक हों– तब तक युद्ध से मुक्ति संभव नहीं है। राष्ट्र, धर्म और जाति की समस्त क्षुद्रतायें हिंसक हैं। किसी भी सीमा और संगठन में बंधना हिंसक होता है। संगठन मात्र हिंसात्मक है।

इस देश से विश्व को अहिंसा की आशा है लेकिन गांधीजी के बाद कोई अहिंसक नेतृत्व देश में नहीं रहा है। अहिंसा की कोई शिक्षा और तैयारी नहीं है। बातें अहिंसा की हैं; तैयारी और आस्था हिंसा की है। अहिंसा साहस की बात है और वह साहस इस बात से प्रारंभ होता है कि अहिंसा से ऊपर कोई मूल्य नहीं है। हिंसा किसी भी कारण वांछनीय नहीं है। समस्त विश्व जब हिंसा की आस्था से भरा है तब अगर कोई भी अहिंसा की दिशा में चलने को राजी नहीं है तो मानवता का भविष्य सुरक्षित नहीं कहा जा सकता है। पर, झूठी

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

अहिंसा काम नहीं आ सकती है। उसके फट जाने में देर नहीं लगती है। झूठी अहिंसा केवल सैद्धांतिक विश्वास से पैदा होती है। वह बौद्धिक आस्था मात्र है। वह चेतना में नहीं है। इसका पर्याप्त प्रमाण अभी मिल रहा है। मैं जिस अहिंसा की बात कर रहा हूं वह योग-साधना के परिणाम में उपलब्ध होती है। इस कारण मानवता को सार्वजनिक बनाना आवश्यक है। उसके अभाव में हम एक विश्व की नींव नहीं रख सकते हैं।

❖❖❖

आपका पत्र मिल गया है। उस संबंध में जब मिलूंगा तक विस्तार से बातें होंगी। मेरी धारणायें बहुत भिन्न हैं। शेष शुभ। सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें।

रात्रि :
18 नव. 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

फूल खिलते हैं पर उन्हें कोई देखता नहीं मालूम होता है—
पक्षी गीत गाते हैं पर उन्हें कोई सुनता नहीं मालूम होता है—
और इसलिए जीवन मिलता है पर उसे कोई जीता नहीं मालूम होता है।

आंखें हैं पर उनसे देखता शायद ही कोई है। ईसा ने एक दिन आंखवालों के बीच कहा था, 'जिनके पास आंखें हो वे देखें!' और किसी प्राचीन कवि ने कहा है, ''मैं अपने दोनों हाथ उठाकर चिल्ला रहा हूं पर मेरी कोई सुनता नहीं है।''

सुनना क्या इतना कठिन है?
देखना क्या इतना मुश्किल है?

एक धुंधली विचारों की मूर्च्छित धारा ने जब जटिल कर दिया है। मेरी आंखों और सत्ता के बीच विचार प्रवाह की दीवार है। इसने मुझे अपने में बंद कर दिया है। मैं कैदी हूं—विचारों का कैदी और बिना इस दीवार में सेंध बनाए बाहर निकलना असंभव है। और मजा यह है कि पत्थर की दीवार को तोड़ना आसान है पर विचार की दीवार को तोड़ना नहीं! क्यों? कल कोई पूछ रहा था क्यों? इसलिए कि विचार की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। वह केवल मेरी मूर्च्छा है। विचार है नहीं, इस अर्थ में कि उनसे लड़ा जा सके—वे नहीं है, जिस क्षण जाग्रति में यह जाना जाता है उसी क्षण उनसे मुक्ति हो जाती है।

एक साधु से किसी ने पूछा था : 'सत्य पथ का प्रवेश द्वार कहां है?'
वह साधु बोला : 'उस पहाड़ी झरने के गीत को सुन रहे हो?'
उस व्यक्ति ने कहा : 'हां, सुन रहा हूं।'
साधु बोला : 'यहीं है प्रवेश द्वार।'
शांत, विचारशून्य हम देख सकें सुन सकें, हो सकें और वही सत्य का प्रवेश द्वार है।

29 नव. 1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्यारी मां,

एक प्रवचन कल सुना है। उसका सार था, आत्म-दमन। प्रचलित रुढ़ि यही है। सोचा जाता है कि सबसे प्रेम करना है पर अपने से—अपने से घृणा करनी है। स्वयं अपने से शत्रुता पैदा करनी है तब कहीं आत्म-जय होती है। पर यह विचार जितना प्रचलित है उतना ही गलत भी है। इस मार्ग से व्यक्तित्व द्वैत में टूट जाता है और आत्म-हिंसा की शुरुआत होती है और हिंसा सब कुरुप कर देती है।

मनुष्य की वासनायें इस तरह दमन नहीं करनी हैं—ना की जा सकती हैं। पर हिंसा का मार्ग धर्म का मार्ग नहीं है। इसके परिणाम में ही शरीर को सताने के लिए कितने रुप विकसित हो गये हैं। उनमें दीखती है तपश्चर्या, पर है वस्तुतः हिंसा का रस—दमन और प्रतिशोध का सुख। यह तब नहीं, आत्म-वेदना है।

मनुष्य को अपने से लड़ना नहीं, अपने को जानना है। पर जानना अपने को प्रेम करने से शुरु होता है। अपने को सम्यक् रुपेण प्रेम करना है। न तो वासनाओं के पीछे अंधा होकर दौड़ने वाला अपने को प्रेम करता है—न वासनाओं से अंधा होकर लड़ने वाला अपने को प्रेम करता है। वे दोनों अंधे हैं और पहले अंधेपन की प्रतिक्रिया में दूसरे अंधेपन का जन्म हो जाता है। एक वासनाओं में अपने को नष्ट करता है, एक उनसे लड़कर अपने को नष्ट कर लेता है। वे दोनों अपने प्रति घृणा से भरे हैं। ज्ञान का प्रारंभ अपने को प्रेम करने से होता है।

मैं जो भी हूं उसे स्वीकार करना है—उसे प्रेम करना है और इस स्वीकृति और इस प्रेम में ही वह प्रकाश उपलब्ध होता है जिससे सहज सब कुछ परिवर्तित हो जाता है। इससे ही एक अभिनव सौंदर्य का व्यक्तित्व में उदय होता है—एक संगति का और एक शांति का और एक आनंद का—जिनके समग्रीमूल प्रभाव का नाम आध्यात्मिक जीवन है।

दोपहर : 24 मार्च 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र मिला है। उपवास कर रही हैं—पहले क्यों नहीं लिखा? इस डर से कि मैं रोकूंगा—झूठी बात है डर होता तो करती ही नहीं! पर अब किया ही है तो अच्छा है—स्वास्थ्य अच्छा हो यही प्रार्थना करता हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

आंख बंद किये बैठा था। आंखों से देखते-देखते मनुष्य आंखें बन्द करके देखना ही भूलता जा रहा है। जो आंख से दीखता है वह उसके समक्ष कुछ भी नहीं है जो आंख बन्द करके दीख जाता है। आंख का छोटा सा पर्दा दो दुनियाओं को अलग करता और जोड़ता है।

मैं आंखें बन्द किये बैठा था कि एक व्यक्ति आये हैं। पूछ रहे हैं कि मैं क्या कर रहा था? और जब मैं कहता हूं कि कुछ देख रहा था तो वे हैरान से हैं; शायद, इसलिए कि सोचते होंगे कि आंख बन्द करके देखना भी क्या देखना कहा जा सकता है।

आंख खोलता हूं तो सीमा में आ जाता हूं। आंख मोड़ता हूं तो असीम के द्वार खुल जाते हैं। इस ओर दृश्य दीखते हैं। उस ओर दृष्टा ही दीख आता है।

एक फकीर स्त्री थी। राबिआ! एक सुन्दर प्रभात में किसी ने उससे कहा था, 'रबिआ, भीतर झोपड़े में क्या कर रही हो यहां आओ बाहर; देखो, प्रभु ने कैसे मनोरम प्रभात को जन्म दिया है।' राबिआ ने भीतर से ही कहा था, 'तुम बाहर जिस प्रभात को देख रहे हो, मैं भीतर उसके ही बनाने वाले को देख रही हूं। मित्र तुम भी भीतर आ जाओ और जो वहां है उसके सौंदर्य के आगे बाहर के किसी सौंदर्य का कोई अर्थ नहीं है।'

पर कितने हैं जो आंख बंद करके भी बाहर ही नहीं बने रहेंगे? अकेले आंख बंद करने से ही आंख बन्द नहीं होती है। बांख बंद है पर चित्र बाहर के ही बहे जाते हैं। पलक बंद है पर दृश्य बाहर के ही उभरे जा रहे हैं। यह आंख का बंद होना नहीं है। आंख के बंद होने का अर्थ है, शून्यता। स्वप्नों से, विचारों से मुक्ति। विचार और दृश्य के विलीन होने से आंख बंद होती है और फिर जो प्रगट होता है यह शाश्वत चैतन्य है। वही है सत्, वही है चित्, वही है आनंद।

इन आंखों का सब खेल है। आंख बदली और सब बदल जाता है।

27.11.1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्यारी मां,

एक कहानी है। एक अविवाहित युवती को पुत्र उत्पन्न हो गया था उसके प्रियजन घबड़ा गये थे। उन्होंने उससे गर्भ का कारण पूछा था। वह बोली कि गांव के बाहर ठहरे हुए साधु ने उसका शील भंग किया है। उसके क्रोधित प्रियजनों ने साधु को घेरकर बहुत बुरा-भला कहा। उस साधु ने सब शांति से सुना और कहा, 'ऐसा है क्या?' वह केवल इतना ही बोला था और बच्चे को पालने का भार उसने अपने ऊपर ले लिया था। पर घर लौटकर उस लड़की को पश्चाताप हुआ और उसने यथार्थ बात कह दी। उसने बता दिया कि साधु को तो उसने इसके पूर्व कभी देखा ही नहीं था। लड़के के असली पिता को बचाने के लिए ही उसने झूठी बात कही थी। उसके परिवार के लोग बहुत दुःखी हुए। उन्होंने जाकर साधु से क्षमा मांगी। साधु ने सारी बातें शांति से सुनी और कहा 'ऐसा है क्या?'

जीवन में शांति आ जाये तो यह सारा जगत् और जीवन एक अभिनय से ज्यादा कुछ भी नहीं रह जाता है। मैं केवल एक अभिनेता हो जाता हूं। बाहर कहानी चलती जाती है और भीतर शून्य घिरा रहता है। इस स्थिति को पाकर ही संसार की दासता से मुक्ति होती है। मैं दास हूं क्योंकि जो भी बाहर से आता है मैं उनसे उद्विग्न होता हूं। कोई भी बाहर से मेरे भीतर को बदल सकता है। मैं इस भांति परतंत्र हूं। बाहर से मुक्ति हो जाये- बाहर कुछ भी हो पर मैं भीतर वही रह सकूं जो कि हूं तो स्व का और स्वतंत्रता का प्रारंभ होता है।

यह मुक्ति शून्य उपलब्धि से शुरु होती है। शून्य होता है। शून्य अनुभव करता है। उठते, बैठते, चलते, सोते जानना है कि मैं शून्य हूं और इसका स्मरण रखना है। शून्य को स्मरण रखते-रखते शून्य होना हो जाता है। स्वतंत्र स्वांस में शून्य भर जाता है। भीतर शून्य आता है तो बाहर सरलता आ जाती है। शून्यता ही साधुता है।

कल कोई साधु की परिभाषा पूछता था तो यह सब मैंने उसे कहा था।

30 नव. 1962

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : श्री शुक्लाजी वहां हों तो उन्हें कह दें कि उनके मित्र श्री रतिलाल चतुर्भुज जी गोसलीया का नंदरवार से निमंत्रण आया है और संभव हुआ तो दिसम्बर की छुट्टियों में, मैं दो दिन के लिये वहां बोलने का विचार कर रहा हूं पर यदि श्रीशुक्ला जी भी उन दिनों वहां पहुंच जायें तो बहुत सुखद होगा। सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें। आपका स्वास्थ्य अब कैसा है सो लिखें। बहुत दिनों से आपका कोई पत्र नहीं है।)

आचार्य रजनीश

दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

3 दिस. 62

प्रिय मां,

कल एक मंदिर के द्वार पर खड़ा था। धूप जल रही थी और वातावरण सुगंधित था। फिर पूजा की घंटी बजने लगी और आरती का दीप मूर्ति के सामने घूमने लगा। कुछ भक्तजन इकट्ठे थे। वह सब आयोजन सुन्दर था और एक सुखद तन्द्रा पैदा करता था लेकिन उस आयोजन का धर्म से कोई संबंध नहीं है।

किसी मंदिर, किसी मस्जिद, किसी तीरथों का धर्म से कोई संबंध नहीं है। किसी पूजा, किसी प्रार्थना का धर्म से कोई नाता नहीं है और सब मूर्तियां पत्थर हैं और सब प्रार्थनायें दीवालों से की गई बातचीत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

लेकिन इन सबसे सुख मिलता मालूम होता है और वही खतरा है; कारण, उसी के कारण प्रवंचना प्रारंभ होती है। उस सुख के भ्रम में ही सत्य होने का आभास पैदा होता है। सुख मिलता है मूर्च्छा से—अपने को भूल जाने और स्व की वास्तविकता से पलायन करने से। योन-सुख और मादक द्रव्यों का सुख भी ऐसे ही पलायन से मिलता है। धर्म के नाम पर मूर्च्छा के सब प्रयोग भी मादक द्रव्यों जैसा ही मिथ्या सुख लाते हैं।

फिर धर्म क्या है?

धर्म स्व से से पलायन नहीं, स्व के प्रति जागरण है। इस जागरण का किसी बाह्य आयोजन से कोई वास्ता नही है। यह तो भीतर पलते और चैतन्य को उपलब्ध करने से संबंधित है।

मैं जागूं और साक्षी बनूं—जो है उसके प्रति चेतन बनूं—बस धर्म इतने से ही संबंधित है।

धर्म अमूर्च्छा है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : श्री पारखजी का पत्र मिला है। छुट्टियों का अभी कुछ निश्चय नहीं है। निश्चय होने पर लिखूंगा।)

आचार्य रजनीश

दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

गौतम बुद्ध ने चार आर्य-सत्य कहे हैं, दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध और दुःख निरोधगामी मार्ग। जीवन में दुःख है, दुःख का कारण है, इस दुःख का निरोध हो सकता है और दुःख निरोध का मार्ग है।

मैं पांचवां आर्य-सत्य भी देखता हूं और यह पांचवां इन चारों के पूर्व है। वह है इसलिए ये चारों हैं, वह न हो तो ये चारों भी नहीं रह सकते हैं।

वह पांचवां या प्रथम आर्य सत्य क्या है?

यह सत्य है। दुःख के प्रति मूर्च्छा। दुःख है पर हम उसके प्रति मूर्च्छित हैं। इस मूर्च्छा से ही वह हमें दीखता नहीं है। इस मूर्च्छा से ही हम उसमें होते हैं पर वह हमें संतप्त नहीं करता है। इस धुंधली बेहोशी में—यह तन्द्रा में जीवन बीतता है और जो दुःख था वह भूल लिया जाता है।

इस मूर्च्छा में, अचेतना में जो है वह आंख में नहीं आता है और जो नहीं है उसके स्वप्न चलते रहते हैं। वर्तमान के प्रति अंधापन होता है और भविष्य में दृष्टि बनी रहती है। भविष्य के सुखद स्वप्नों के नशे में वर्तमान का दुःख डूबा रहा है। इस विधि से दुःख दीखता नहीं है और उसके पार उठने का प्रश्न भी नहीं उठता है।

एक कैदी को यदि कारागृह की दीवारों और जंजीरें न दीखें तो उसमें मुक्ति की आकांक्षा के पैदा होने का प्रश्न ही कहां है?

इससे इस सत्य को कि हम दुःख के प्रति मूर्च्छित हैं—'जीवन दुःख है' यह सत्य हमारी चेतना में नहीं है—मैं प्रथम आर्य सत्य कहता हूं। शेष चार बाद में आते हैं। दुःख के प्रति मेरे जागते ही उनका दर्शन होता है।

(यह एक बौद्ध भिक्षु से हुई बातचीत का एक अंश है।)

8.12.62

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : संभव है कि इस बार दिसम्बर की छुट्टियों में चांदा न आ पाऊं। बम्बई और नंदुरबार बोलने का सोच रहा हूं। जैसा निश्चित होगा शीघ्र लिखूंगा। शेष शुभ। आपका स्वास्थ अब कैसा है?)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक मंदिर में बोलने गया था। बोलने के बाद एक युवक ने कहा, ''क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं। वह प्रश्न मैं बहुतों से पूछ चुका हूं पर जो उत्तर पाये उससे तृप्ति नहीं होती है। समस्त दर्शन कहते हैं, अपने को जानो। मैं भी अपने को जानना चाहता हूं। यही मेरा प्रश्न है, 'मैं कौन हूं?' इसका ही उत्तर चाहता हूं।''

मैंने कहा, ''अभी आपने प्रश्न पूछा ही नहीं है तो उत्तर कैसे पाते? प्रश्न पूछना उतना आसान नहीं है?''

उस युवक ने एक क्षण हैरानी से मुझे देखा। प्रगट था कि मेरी बात का अर्थ उसे नहीं दीखा था। वह बोला, ''यह आप क्या कहते हैं! मैंने प्रश्न ही नहीं पूछा है?''

मैं बोला, ''रात्रि में आ जायें।'' वह रात्रि आया भी । सोचा होगा मैं कोई उत्तर दूंगा। उत्तर मैं दिया भी, पर जो मैं उत्तर दिया वह उसने नहीं सोचा था।

वह आया। बैठते ही मैंने प्रकाश बुझवा दिया। बोला, ''यह क्या कर रहे हैं, क्या उत्तर आप अंधेरे में देते हैं?''

मैंने कहा, ''उत्तर नहीं देता, केवल प्रश्न पूछना सिखाता हूं। आत्मिक जीवन और सत्य के संबंध में कोई उत्तर बाहर नहीं है। ज्ञान बाह्य लक्ष्य नहीं है। वह सूझता नहीं है; अतः उसे आपमें डाला नहीं जा सकता है। जैसे कुयें से पानी निकालते हैं ऐसे ही उसे भी भीतर से ही निकालना होता है। वह है—नित्य उस की उपस्थिति है; केवल अपना घड़ा उस तक पहुंचाना है। इस दुनिया में एक ही बात स्मरणीय है कि घड़ा खाली हो—घड़ा खाली हो तो भरकर लौट आता है तृप्ति हो जाती है।''

अंधेरे में थोड़ा सा समय चुपचपा सरका। वह बोला, ''अब मैं क्या करूं?'' मैंने कहा, ''घड़ा खाली कर लें। शांत हो जायें और पूछें, 'मैं कौन हूं?' एक बार, दो बार, तीन बार, पूछें—समग्र शांति से पूछें। मैं कौन हूं? ये प्रश्न पूरे अस्तित्व में गूंज उठे—और तब शांत हो जायें और मौन—विचार शून्य प्रतीक्षा करें—प्रश्न और फिर खामोश शून्य प्रतीक्षा यही विधि है।''

वह थोड़ी देर बार बोला, ''लेकिन मैं तो चुप नहीं हो पा रहा हूं। प्रश्न तो पूछ लिया पर शून्य प्रतीक्षा असंभव है और अब मैं देख पा रहा हूं कि मैंने वस्तुतः आज तक प्रश्न पूछा ही नहीं था।''

11.12.1962

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रणाम! मैं दिसम्बर में चांदा तो नहीं आ रहा हूं। श्री पारखजी से मेरी ओर से क्षमा याचना कर लेना। **पर आपको मेरे साथ यात्रा पर चलना है** मैं 22 दिसम्बर की संध्या कलकत्ता बम्बई मेल से मंदुरबार के लिए निकल रहा हूं। इस गाड़ी से 22 दिस. की सुबह 5 बजे भुसावल पहुंचूंगा और भुसावल से 8.00 बजे सुबह नंदुरबार के लिए सूरज पैसेन्जर से निकलना है। **आप मुझे भुसावल मिलें।** 22 दिस. की रात्रि आप किसी भी गाड़ी से भुसावल पहुंच जायें। 23 की दोपहर हम नंदुरबार पहुचेंगे और 23-24 और 25 की दोपहर तक वही रुकेंगे। 25 की दोपहर सूरत के लिए निकलेंगे और 5 घंटा सूरत रुककर 26 दिस. की सुबह देहरादून एक्सप्रेस से बम्बई पहुंचना है। बम्बई कार्यक्रम 26-27 और 28 हैं विशेषतया ध्यान के लिए आयोजन है। श्री पारखजी भी चलें तो अच्छा है लेकिन मैं उन्हें पर्यूषण के समय साथ ले जाना चाहता हूं। इस समय बम्बई कार्यक्रम कैसे होंगे नहीं कहा जा सकता है। श्री शुक्ला जी आजकल कहां हैं? नंदुबार से श्री रतिलाल जी गोमलीया का पत्र आया है कि यदि वे एक दिन मुझसे पूर्व नंदुरबार पहुंच जायें तो अच्छा है। श्री भीखमचंद जी कोठारी को भी पहुंचने के लिए लिख रहा हूं। स्वीकृति पत्र शीघ्र दें। 14 दिस. को मैं सतना जा रहा हूं। 14 की रात्रि सतना और 15-16 दिस. छतरपुर बोलना है। 17 को लौटने को हूं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

छतरपुर
15-12-62

प्रिय मां,

एक युवक ने कल रात्रि पूछा था, 'मैं अपने मन से लड़ रहा हूं पर शांति उपलब्ध नहीं होती है। मैं क्या करूं मन के साथ कि शांति पा लूं?''

मैंने कहा, 'अंधेरे के साथ कोई भी कुछ नहीं कर सकता है। वह है ही नहीं। वह केवल प्रकाश का न होना है। इसलिए, उससे लड़ना अज्ञान है। ऐसा ही मन है। वह भी नहीं है। उसकी भी कोई स्व-सत्ता नहीं है। वह आत्म-बोध का अभाव है। ध्यान का अभाव है। इसलिए उसके साथ भी कुछ नहीं किया जा सकता है। अंधेरा मिटाना हो तो प्रकाश लाना होता है और मन को हटाना हो तो ध्यान लाना होता है। मन को नियंत्रित नहीं करना है वरन् जानना है कि वह है ही नहीं। यह जानते ही इससे मुक्ति हो जाती है।''

उसने पूछा, ''यह जानना कैसे हो?''

''यह जानना साक्षी-चैतन्य से होता है। मन के साक्षी बनें। जो है उसके साक्षी बनें। कैसा होना चाहिए इसकी चिन्ता छोड़ दें। जो है–जैसा है उसके प्रति जागें–जागरुक हों। कोई निर्णय न लें–कोई नियंत्रण न करें–कोई संघर्ष में न पड़ें। बस, मौन होकर देखें। देखना ही–यह साक्षी होना ही मुक्ति बन जाता है। साक्षी बनते ही चेतना दृश्य को छोड़ दृष्टा पर स्थिर हो जाती है। जब स्थिति में अदृश्य प्रज्ञा की ज्योति उपलब्ध होती है और यही ज्योति मुक्ति है।''

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं कल रात्रि सतना बोलकर, सुबह यहां आया हूं। बम्बई और नंदुरबार मेरे साथ जाना है– मेरा पत्र तो मिल ही गया होगा। यही चिन्ता पत्र में है कि पता नहीं आपका स्वास्थ्य अब कैसा है? पत्र दें और भुसावल 25 तारीख को सुबह 5 बजे मुझसे मिलें।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि :
4 जनवरी 1963

प्रिय मां,

सत्य पर कुछ चर्चा चल रही थी कि मैं भी आ गया हूं। सुनता हूं। जो बात कर रहे हैं वे अध्ययनशील हैं। विभिन्न दर्शनों से परिचित हैं। कितने मत हैं और कितने विचार हैं। सब उन्हें ज्ञात मालूम होते हैं। बुद्धि उनकी भरी हुई है। सत्य से तो नहीं, सत्य के संबंध में औरों ने जो कहा है उससे। जैसे औरों ने जो कहा है उस उधार से भी सत्य जाना जा सकता है। सत्य जैसे कोई मत है–विचार है और कोई बौद्धिक-तार्किक निष्कर्ष है! विचार उनका गहरा होता जा रहा है और अब कोई भी किसी की सुनने की स्थिति में नहीं है। प्रत्येक बोल रहा है पर कोई सुन नहीं रहा है।

मैं चुप हूं। फिर, किसी को मेरा स्मरण आता है और वे मेरा मत भी जानना चाहते हैं। मेरा तो कोई मत नहीं है। मुझे तो दीखता है कि जहां तक मत है वहां तक सत्य नहीं है। विचार की जहां समाप्ति है सत्य का वहां प्रारंभ है।

मैं क्या कहूं? वे सभी सुनने को उत्सुक हैं। एक कहानी कहता हूं।

एक साधु था। बोधिधर्म। वह ईसा की छठवीं सदी में चीन गया था। कुछ वर्ष वहां रहा फिर उसने घर लौटना चाहा और अपने शिष्यों को इकट्ठा किया। वह जानना चाहता था कि सत्य में उसकी कितनी गति हुई है।

उसके उत्तर में डोकुकू ने कहा : 'मेरे मन में सत्य स्वीकार-अस्वीकार के अतीत हैं न कहा जा सकता है कि है, न कहा जा सकता है कि नहीं है क्योंकि ऐसा ही उसका स्वरुप है।'

बोधधर्म बोला : 'तेरे पास मेरी चमड़ी है।'

ओजी ने कहा : 'मेरे विचार में सत्य अर्न्तदृष्टि है–उसे एक बार पा लिया तो पा लिया। फिर उसका खोना नहीं है।'

बोधिधर्म बोला : 'तेरे पास मेरा मांस है।'

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

दोइक् ने कहा : 'मैं मानता हूं कि पंच महाभूत शून्य हैं और पंच स्कंध भी अवास्तविक हैं। यह शून्यता ही सत्य है।'

बोधिधर्म बोला : 'तेरे पास मेरी हड्डियां हैं।'

और अन्ततः, इका उठा। उसने गुरु के चरणों में सिर रख दिया और मौन रहा। वह चुप था और उसकी आंखें शून्य थीं।

बोधधर्म बोला : 'तेरे पास मेरी मज्जा है।—मेरी आत्मा है।'

और यही कहानी मेरा उत्तर है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : यात्रा कैसी हुई? राह में मैंने बताया भी नहीं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

'ईश्वर क्या है?'

यह प्रश्न कितनों के मनों में नहीं है। कल एक युवक पूछ रहे थे। और यह बात ऐसे पूछी जाती है जैसे कि ईश्वर कोई वस्तु है, खोजने वाले से अलग और भिन्न और उसे अन्य वस्तुओं की भांति पाया जा सकता है। ईश्वर को पाने की बात ही व्यर्थ है, और उसे समझने की भी क्योंकि वह मेरे आर-पार है। मैं उसमें हूं और ठीक से कहें तो 'मैं' है ही नहीं, केवल वही है।

ईश्वर 'जो है' उसका नाम है। वह सत्ता के भीतर कुछ नहीं है। स्वयं सत्ता है। उसका अस्तित्व नहीं है। वरन् अस्तित्व ही उसमें है। वह 'होने' का अस्तित्व का, अज्ञान का नाम है।

इससे उसे खोजा नहीं जाता है क्योंकि मैं भी उसी में हूं। उसमें तो खोया जाता है और खोते ही उसका पाना है।

एक हिन्दू कथा है। एक मछली सागर का नाम सुनते-सुनते थक गई थी। एक दिन उसने मछलियों की रानी से पूछा, 'मैं सदा से सागर का नाम सुनती आई हूं पर यह सागर है क्या? और कहां है?' उस रानी ने कहा, 'सागर में ही तुम्हारा जन्म है, जीवन है और जगत् है। सागर ही तुम्हारी सत्ता है। सागर ही तुममें है और तुम्हारे बाहर है। सागर से तुम बनी हो और सागर में ही तुम्हारा अंत है। सागर तुम्हें प्रतिक्षण घेरे हुए है।'

ईश्वर प्रत्येक को प्रतिक्षण घेरे हुए हैं। पर हम मूर्च्छित हैं इससे उसके दर्शन नहीं है। मूर्च्छा जगत् है, संसार है; अमूर्च्छा ईश्वर है।

प्रभात :

8 जनवरी 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : 1. तुम्हारा पत्र मिला है। यह जानकर कितना प्रसन्न हूं कि तुम्हें जीवन में

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

जिसकी खोज थी उसका पाना हो गया है। जो आनंद तुम पर उतर रहा है उसका साथी मैं भी हूं। वह दिन-दिन बढ़ता जायेगा। और जो होने में उसकी सार्थकता है उस अनुभूति का दर्शन होगा।

शांता के सुपुत्र को मेरे शुभाशीष।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक साधु कल कह रहे थे।

''मैं संसार की ओर प्रवृत्ति छोड़ दिया हूं अब तो प्रवृत्ति मोक्ष की ओर है। यही निवृत्ति है। संसार की ओर प्रवृत्ति मोक्ष के प्रति निवृत्ति है। मोक्ष के प्रति प्रकृति संसार की ओर निवृत्ति है।''

यह बात दीखने में कितनी ठीक और समझ भरी मालूम होती है! कहीं कोई चूक दिखाई नहीं देती है। बिलकुल बुद्धि और तर्क युक्त है पर उतनी ही व्यर्थ भी है। ऐसे ही शब्दों के खेल में कितने लोग प्रवंचना में पड़े रहते हैं। बुद्धि और तर्क आत्मिक जीवन के संबंध में कहीं भी ले जाते नहीं मालूम होते हैं।

मैं उनसे कहा, ''आप शब्दों में उलझ गये हैं। 'संसार की ओर प्रवृत्ति' का कोई अर्थ नहीं है। असल में, **प्रवृत्ति ही संसार है**। वह किस ओर है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। बस, उसका होना ही संसार है। वह धन की ओर हो तो वह धर्म की ओर हो तो—उसका स्वरुप एक ही है। प्रकृति मनुष्य को अपने से बाहर ले जाती है। वह वासना है। वह फलासक्ति है। वह कुछ होने की तृष्णा और दौड़ है। 'अ' 'ब' होना चाहता है—यह उसका रुप है और जब तक कुछ होने की वासना है। तब तक वह 'जो है' उसका होना नहीं हो पाता है। इस 'है' का उद्‌घाटन ही मोक्ष है। 'मोक्ष' कोई वस्तु नहीं है जिसे कि पाना है। वह वासना का कोई विषय नहीं है। इससे उसकी ओर 'प्रवृत्ति नहीं' हो सकती है। वह तो तब है जब कोई प्रवृत्ति नहीं होती है। वह प्रवृत्ति में नहीं, प्रवृत्ति-शून्यता में है। प्रवृत्ति बंधन है और जब कोई प्रवृत्ति नहीं होती—मोक्ष की भी नहीं—तब जो होता है उसका नाम ही मोक्ष है। प्रवृत्ति संसार है, प्रवृत्ति का न होना मोक्ष है। इससे, मोक्ष को पाना नहीं है; असल में पाना छोड़ना है और मोक्ष पा लिया जाता है।

10.1.1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक प्रोफेसर है। धर्म में उनकी अभिरुचि है। धर्मग्रन्थों के अध्ययन में जीवन लगाया है। धर्म की व्याखया में तो उनके विचार-प्रवाह अंत नहीं होता है। एक अंतहीन फीते की भांति उनके विचार निकलते और कितने उद्धरण और कितने सूत्र उन्हें याद हैं; कहना कठिन है। कोई भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है। वे एक चलते फिरते विश्वकोष है। ऐसी ही उनकी ख्याति है। कई बार मैं उनके विचार सुना हूं मैं मौन रहा हूं। एक बार उन्होंने मुझसे पूछा, ''मेरा उनके संबंध में क्या ख्याल है?' मैं जो सत्य था वो कहा। कहा कि 'ईश्वर के संबंध में विचार इकट्ठा करने में ईश्वर को गंवा दिया है।' वे कितने चौंक गये मालूम हुए थे। फिर बाद में आये भी। उसी संबंध में पूछने आये थे। और मननू से ही तो सत्य को पाया जा सकता है। और वो कोई मार्ग भी नहीं है।

यह आत्म विचार कितनों का नहीं है।

मैं ऐसे सारे लोगों से एक ही प्रश्न पूछता हूं। वही उससे भी पूछा था कि अध्ययन क्या है? आपके भीतर क्या हो जाता है? क्या कोई नयी सृष्टि का आभास पैदा होता है—क्या चेतना अपने स्तर पर पहुंच जाती है—क्या सत्ता में कोई क्रांति हो जाती है—क्या आप जो हैं उससे भिन्न और अन्यथा हो जाते हैं? या कि आप वहीं रहते हैं और केवल कुछ और विचार और सूचनाएं आपकी स्मृति का अंग बन जाती है? अध्ययन से केवल स्मृति प्रशिक्षित होती है मन की सतही पर्त पर विचार की धूल जम जाती है। इससे ज्यादा उससे कुछ भी नहीं हो सकता है। केन्द्र पर उससे कोई परिवर्तन नहीं होता है। चेतना वहीं की वहीं रहती है। आभास वहीं के वहीं रहते हैं। सत्य के संबंध में कुछ जानना और सत्य को जानना भिन्न बाते हैं। 'सत्य के संबंध में जानना' बुद्धिगत है। 'सत्य को जानना' चेतना को जानने के लिए चेतना की परिपूर्ण जाग्रति—उसकी अमूर्च्छा आवश्यक है। स्मृति के तथाकथित ज्ञान से यह नहीं हो सकता है। जो स्वयं नहीं जाना गया है, वह ज्ञान नहीं होता है अज्ञान सत्य के संबंध में जो बौद्धिक जानकारी है वह ज्ञान-आभास है। वह विचार है और विचार ज्ञान के मार्ग में बाधा है। असलियत में जो अज्ञात है उसे जानने का ज्ञान से कोई संबंध नहीं है। वह तो बिल्कुल नया है—वह तो ऐसा है जो पूर्व कभी नहीं जाना गया है; इसलिए उसे खो देने का उसकी प्रत्याभिज्ञा में भी समर्थ नहीं है। स्मृति केवल उसे ही दे

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

सकती है— प्रत्यभिज्ञा भी उससे आ सकती है जो कि पहले भी जाना गया है। वह ज्ञान की ही अनूभूति है, लेकिन जो नवीन है; एकदम अभिनव, अज्ञान और पूर्व-अपरिचित उसके आने के लिए विचारों को हट जाना होगा—स्मृति को, समस्त ज्ञान विचारों को हटना होगा ताकि नये का जन्म होना जो है। वह वैसा ही जाना जा सके जैसा कि है। मनुष्य की समस्त धारणाओं और पूर्व-पक्ष आने के लिए हटने आवश्यक हैं। विचार, स्मृति और धारणा शून्य मन ही अमूर्च्छा है। तथा इसके आने पर भी केन्द्र पर परिवर्तन होता है और सत्य का द्वार खुलता है। उसके पूर्व भटकन है और जीवन अपव्यय है।

16 जनवरी 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : कल पत्र और तार दोनों मिले हैं। शारदा के बच्चे के लिए शुभाशीष। आप भुसावल जा रही हैं। मैं तो नहीं जा सकूंगा। फकीरचद जी के दो पत्र जरुर आये हैं। बहुत आग्रह है पर मेरा भीड़-भाड़ में जाने का मन नहीं है। राजनगर से मैं ट्रेन से सीधा ही जा रहा हूं। 31 जन., 1 और 2 फर. वहीं रुकूंगा। 29 जन. की रात्रि इंदौर एक्सप्रेस से यहां से निकल रहा हूं। बम्बई से सुन्दरलाल और बहिन मेरे साथ यात्रा करने को है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं कल कहा हूं, "मिट्टी फूल बन जाती है और गंदगी खाद बन कर सुगंध में परिणित होती है। ऐसे ही मनुष्य के विकार हैं। वे शक्ति हैं। जो मनुष्य में पशु जैसा दिखता है वही दिशा परिवर्तित होने पर दिव्यता को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए, मनुष्य भी बीजरूप में दिव्य ही है। और तब, वस्तुतः अदिव्य कुछ भी नहीं है। समस्त जीवन दिव्यता है। सब कुछ दिव्य है। भेद केवल उस दिव्यता की अभिव्यक्ति के हैं। ऐसा देखने पर कुछ भी घृणा करने योग्य नहीं रह जाता है। जो एक छोर पर पशुता है वही दूसरे छोर पर प्रभु है। पशुता में और दिव्यता में विरोध नहीं, निकास है। ऐसी पृष्ठभूमि में चलने पर आत्म- दमन और उत्पीड़न व्यर्थ है। वह संघर्ष अवैज्ञानिक है। अपने को दमन में तोड़कर कोई कभी आत्म-शांति और ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता है। जो मैं ही हूं उसके एक अंश को नष्ट नहीं किया जा सकता है। वह दब सकता है। लेकिन जिसे दमन किया गया है जो निरंतर दमन करना होता है। जो हराया गया है उसे निरंतर ही हराना होता है। विजय उस मार्ग से कभी पूर्ण नहीं हो पाती है। विजय का पथ दूसरा है। वह दमन का नहीं ज्ञान का है। वह गंदगी को हराने का नहीं है क्योंकि गंदगी में भी मैं ही हूं। वह उसे खाद बनाने का है। इसे ही पुरानी अलकेमी में 'लोहे को स्वर्ण' बनाना कहा गया है।

21.1.63

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक युवक ने आकर कहा है, 'मैं नास्तिक हो गया हूं।'

मैं उसे देखता हूं। उसे पहले से जानता हूं। जीवन-सत्य को जानने की उसकी प्यास तीव्र थी। वह किसी भी मूल्य पर सत्य को अनुभव करना चाहता है। उसमें तीव्र प्रतिभा है और सतही आस्थायें उसे तृप्त नहीं करती हैं। संस्कार, परंपरा और रुढ़ियां उसे कुछ भी नहीं दे पा रही हैं। वह संदेहों और शंकाओं से घिर गया है। उसके सारे मानसिक सहारे और धारणायें खंडित हो गई हैं और वह एक घने नकार में डूब गया है।

मैं चुप हूं। वह दुबारा बोला है, 'ईश्वर पर से मेरी श्रद्धा हट गई है। कोई ईश्वर नहीं है, मैं अधार्मिक हो गया हूं।'

मैं उससे कहता हूं, कि 'यह मत कहो। नास्तिक होना, अधार्मिक होना नहीं है। वास्तविक आस्तिकता को पाने को नकार में से गुजरना ही होता है। वह अधार्मिक होने का नहीं, वस्तुतः धार्मिक होने का लक्षण हैं। संस्कारों से, शिक्षण से, विचारों से मिली आस्तिकता कोई आस्तिकता नहीं है। जो उससे तृप्त है वह भ्रांति में है। वह विपरीत विचारों में पलता तो उसका मन विपरीत निर्मित हो सकता था और फिर वह उससे ही तृप्त हो जाता। मन पर पड़े संस्कार परिधि ही सतह की घटना है। वह मृत पर्त है। वह उधार और प्यासी स्थिति है। कोई भी सचमुच आत्मिक जीवन के लिए प्यासा व्यक्ति इस काल्पनिक जल से अपनी प्यास नहीं बुझा सकता है। और इस अर्थ में वह व्यक्ति धन्यभागी है क्योंकि वास्तविक जगत को पाने की खोज इसी बेबुझी प्यास से प्रारंभ होती है। ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम ईश्वर की धारणा से सहमत नहीं हो क्योंकि यह असहमति ईश्वर के सत्य तक तुम्हें ले जा सकती है।'

मैं उस युवक के चेहरे पर प्रकाश फैलते देखता हूं। एक शांति और एक आश्वासन उसकी आंखों में आया है। जाते समय मैं उससे कहा हूं, 'इतना स्मरण रखना वास्तविकता धार्मिक जीवन की शुरुआत है। वह अंत नहीं है। वह पृष्ठभूमि है पर उस पर ही हमें नहीं

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

जाना है पर रात्रि है, उसमें ही डूब नहीं जाना है। उसके बाद ही उससे ही सुबह का जन्म होता है।

दि. 25.1.63

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा पत्र मिला है। शारदा का प्रीतिपूर्ण उपहार मुझे स्वीकार है। उसका नाम रखना है। परार्थ। शेष शुभ। मैं 27 जन. को उदयपुर के लिए निकल रहा हूं। बम्बई से सुन्दरलाल भाई, जया बहिन, इला और अन्य 25 तक पहुंच रहे हैं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

सुबह ही सुबह एक युवक आ गये हैं। उदास दीखते हैं और लगता है कि जैसे उन्हें किसी एकाकीपन ने घेर लिया है। कुछ जैसे खो गया है और आंखें उसे ढूंढती प्रतीत होती हैं। मेरे पास वे कोई वर्ष भर से आ रहे हैं और ऐसे ही एक दिन उनको मैं भली भांति जानता था। इसके पूर्व उनमें एक काल्पनिक आनंद था वह धीरे-धीरे वास्तविक हो गया है।

कुछ देर सन्नाटा सरकता रहा है। उसने आंखें बंद कर ली हैं और कुछ सोचते होते हैं। फिर, प्रगटतः बोले हैं, 'मैं अपनी आस्था खो दिया हूं। मैं एक स्वप्न था वह जैसे खंडित हो गया है। ईश्वर साथ मालूम होता था अब अकेला रह गया हूं, बहुत घबराहट होती है। इतना असहाय तो मैं कभी भी नहीं था। पीछे आना चाहता हूं पर वह भी संभव नहीं दीखता है। वह सेतु खंडहर हो गया है। क्या कर दिया है? मेरी आस्था–मेरा सहारा क्यों छीन लिया है?'

मैं कहता हूं, 'जो नहीं था। केवल वही छीना जा सकता है। जो है उसका छीनना संभव नहीं है। स्वप्न और कल्पना के साथी से एकाकीपन छीनना मूर्च्छा में दब जाता है। ईश्वर की कल्पना और मानसिक प्रक्रिया वास्तविक नहीं है। वह सदृश्य नहीं, भ्रातिं है और भ्रातियों से जितना जल्दी छुटकारा हो उतना ही अच्छा है। ईश्वर को वस्तुतः पाने के लिए इतनी वास्तविक धारणाओं को त्यागना पड़ता है। और उन वासनाओं में ईश्वर का कोई अपवाद नहीं है। वह भी छोड़नी पड़ती है। यही त्याग है और क्योंकि स्वप्नों को छोड़ने से अधिक कष्ट और किसी बात में नहीं है। स्वप्न और जागरणों के विसर्जन पर जो है वह आत्माभिव्यक्ति टूटती है और जागरण आता है। फिर जो पाना है वही पाना है, उसे कोई छीन नहीं सकता है। वह किसी और अनुभूति से खंडित नहीं हो सकता क्योंकि वह पर-अनुभूति नहीं है; स्वानुभूति है। वह किसी दृश्य का ही स्वयं शुद्ध दृष्टा का बोध है। वह ईश्वर का विचार नहीं; स्वयं ईश्वर है।"

उस युवक के चेहरे को देखता हूं जैसे एक स्याह पर्दा पड़ा था जो अभिव्यक्ति उसकी

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

आंखों में आ गई है और एक संकल्प जाग्रत हुआ मालूम होता है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : पत्र मिला है। मैं फरवरी के मध्य में दो दिन घर आने के लिए निकालूंगा। कब आ सकूंगा इसकी सूचना राजनगर से लौटकर दूंगा। टाइप राइटर की जल्दी नहीं है। भोपाल भेज दें वहां से आ जायेगा या कि मैं आता हूं तो साथ ले आऊंगा। शेष शुभ। सब को मेरे प्रणाम। मैं 3 फरवरी को रात्रि इंदौर-विलासपुर एक्सप्रेस से भोपाल होकर राजनगर से लौटूंगा यदि उसके पहिले श्री देशलहरा जी चांदा आते हैं तो उन्हें कह दें कि टाइप राइटर मुझे भोपाल स्टेशन पर पहुंचा दें। अन्यथा में चांदा आता हूं तब साथ ले जाऊंगा।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

मैं आज सुबह ही राजनगर (उदयपुर) से वापिस लौटा हूं। वहां से पत्र नहीं दे सका। क्षमाप्राथी हूं। राजनगर कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा हैं प्रतीक्षण आपका स्मरण वहां मन में था। आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथनल तथा अन्य अनेक साधुओं से बहुत सी वार्तायें हुई हैं। कोई 400 साधु-सांध्वियां वहां एकत्रित थे और कोई 15-20 हजार भावक। साधु और साध्वियों के अलग-अलग ध्यान के प्रयोग भी हुए हैं जिनके परिणाम आशातीत थे। श्रीमती जया बहिन तथा बम्बई से इला और अन्य काफी लोग पहुंच गये थे। क्रांति भी मेरे साथ गई थी। शेष मिलने पर ही उस संबंध में बातें होंगी। मैं आनंद में हूं। सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें। साधुओं से हुई चर्चाओं में श्री पारखजी की बार-बार याद आई थी।

4 फरवरी 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

6 फरवरी 1962

मां,

मैं यात्रा से लौटा हूं। साधु-साध्वियों से मिलना हुआ है। साधना योग के केन्द्र से कितनी भिन्न दिशा में चली गई है यह जानकर बहुत आश्चर्य होता है। यह विश्वास भी लाना कठिन होता है कि धर्म की आत्मा को छोड़कर इतने लोग उसकी लाश को ढो रहे हैं।

योग के अभाव में साधना केवल दमन हो जाती है। शरीर दमन, मन दमन और स्वयं अपने से सतत् संघर्ष। और संघर्ष भी अनंत। जीवन की समाप्ति है पर उसकी नहीं; क्योंकि जिसे दबाया है वह मरता नहीं है केवल और गहरे अचेतन स्तरों पर सरक जाता है। इस गहराई पर दमन से बनी ग्रन्थियां और रह-रह कर उनके उधार जीवन को नरक बना देते हैं।

एक ओर योग की पीड़ायें हैं। वासनाओं के अनुकरण और उनकी अनंत अतृप्ति की ज्वालायें हैं। तृष्णा की अपूर पर्व का दुःख है। और दूसरी ओर दमन और आत्म संघर्ष का नारकीय जीवन है। इन दोनों में कोई भी मार्ग नहीं है पर मनुष्य का अज्ञान ऐसा है कि एक को छोड़ते ही वह दूसरे को पकड़ लेता है। यह पकड़ना ही उसका अज्ञान है। इस पकड़ने से ही अज्ञान जीता है। वही उसका भोजन है।

कोई पूछता था फिर योग क्या है?

योग पकड़ को छोड़ना है। एक अति से दूसरी अति पर नहीं जाना है। एक भूल छोड़ दूसरी नहीं पकड़नी है। **पकड़ की भूल है**। उसे ही छोड़ना है। उसे छोड़ना ज्ञान से होता है। इस जकड़ के प्रति जागना है। इस पकड़ का निरीक्षण करना है। उसे देखते ही उससे मुक्ति है।

मैं कहता हूं, कुछ करने को मत पूछो। कोई क्रिया नहीं करनी है। वरन् क्रियाओं के प्रति जागना है। प्रत्येक क्रिया पकड़ लेनी है। प्रत्येक क्रिया बंधन है। धर्म एक नई क्रिया नहीं है। वह क्रियाओं के प्रति सम्यक् जागरण है। इस जागरण से निष्कर्म आत्मा का दर्शन होता है। महावीर ने कहा है, 'कर्म से कर्म का नाश नहीं होता है; कर्म का नाश अकर्म से होता है। इस कर्म-मुक्ति को 'जो है' वह उपलब्ध होता है और यही उपलब्धि मोक्ष है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात,
11 फर. 63

प्रिय मां,

मनुष्य के साथ क्या हो गया है?

मैं सुबह उठता हूं, देखता हूं गिलहरियों को दौड़ते। देखता हूं सूरज की किरणों में फूलों को खिलते। देखता हूं संगीत से भर गई प्रकृति को। रात्रि सोता हूं, देखता हूं तारों से झरते मौन को। देखता हूं सारी सृष्टि पर छा गया आनंद-निद्रा का और फिर, फिर अपने से पूछने लगता हूं कि मनुष्य को क्या हो गया है?

सब कुछ आनंद से तरंगीत है केवल मनुष्य को छोड़कर। सब कुछ संगीत से आंदोलित है केवल मनुष्य को छोड़कर। सब दिव्य शांति में विराजमान है केवल मनुष्य को छोड़कर।

क्या मनुष्य इस सबका भागीदार नहीं है? क्या मनुष्य कुछ पराया है। अजनबी है?

यह परायापन अपने हाथों लाया गया है। यह दूर अपने हाथों पैदा की गई है। स्मरण आती है बाईबिल की एक पुरानी कथा। मनुष्य 'ज्ञान का फल' खाकर आनंद के राज्य से बहिष्कृत हो गया है। यह कथा कितनी सत्य है। 'ज्ञान' ने, बुद्धि ने, मन ने मनुष्य को जीवन से तोड़ दिया है। वह सत्ता में होकर सत्ता के बाहर हो गया है।

'ज्ञान' को छोड़ते ही, मन से पीछे हटते ही एक नये लोक का उदय होता है। उसमें हम प्रकृति से एक हो जाते हैं। कुछ अलग नहीं होता है, कुछ भिन्न नहीं होता है। सब एक शांति के संगीत में स्पंदित होने लगता है।

यह अनुभूति ही 'ईश्वर' है।

कल एक सभा में यह कहा हूं। ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है ईश्वर की कोई अनुभूति नहीं होती है। वरन्, एक अनुभूति का नाम ही ईश्वर है। 'उसका' कोई साक्षात् नहीं है। वरन् एक साक्षात् का ही वह नाम है।

इस साक्षात् में मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। इस अनुभूति में वह अपने घर आ जाता है। इस प्रकाश में वह फूलों और पक्षियों के सहज स्फूर्त आनंद का साझीदार हो जाता है। इसमें एक ओर से वह मिट जाता है और दूसरी ओर से सत्ता को पा लेता है। यह उसकी मृत्यु भी है और उसका जीवन भी है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

17.2.63

प्रिय मां,

'साधुता क्या है?' कोई पूछता था।

यह प्रश्न अनेकों के मन हैं राजनगर में चार सौ साधु-साध्वियों के बीच था। वहां भी यह प्रश्न उठा था। वस्त्र और बाह्य रुप से साधुता का संबंध होता तो यह प्रश्न उठता ही नहीं। निश्चय ही साधुता बाह्य तथ्य नहीं है। कुछ आंतरिक सत्य है। यह आंतरिक सत्य क्या है?

साधुता अपने में होना है। साधारणतः मनुष्य अपने से बाहर है। एक क्षण भी वह अपने में नहीं है। सबके साथ है पर अपने साथ नहीं है। यह स्व से अलगाव ही असाधुता है। स्व में लौटना—स्वरुप में प्रतिष्ठित होना—स्वस्थ होना साधुता है। आध्यात्मिक अस्वास्थ्य असाधुता है। स्वास्थ्य साधुता है।

मैं बाहर हूं तो सोया हुआ हूं। बाह्य पर मूर्च्छा है। पर पकड़े हुए है। पर ही ध्यान में है। स्व ध्यान के बाहर है। यही निद्रा है। महावीर कहे हैं, 'सुत्ता सगुणी' (जो सोता है वो अ-मुक्ति है)। इस पर की परतंत्रता से स्व की स्वतंत्रता में जागना साधु होता है।

यह साधुता पहचानी कैसे जाती है?

यह साधुता शांति से, आनंद से, सम्यक् स्व से पहचानी जाती है।

एक साधु था, संत फ्रांसिस। वह अपने शिष्य लियो के साथ यात्रा पर था। वे सेंट मेरिनो जा रहे थे। राह में आंधी और वर्षा आई। वे भीग गये और कीचड़ से लथपथ हो गये। रात घिर आई थी और दिनभर की भूख और थकान ने उन्हें पकड़ लिया था। गांव अब भी दूर था और आधी रात के पूर्व पहुंचना संभव नहीं था। तभी फ्रांसिस ने कहा, 'लियो, वास्तविक साधु कौन है? वह नहीं जो अंधों को आंखें दे सकता है—बीमारों को स्वास्थ्य दे सकता है और मृतों को भी जिला सकता है। वह वास्तविक साधु नहीं है।' थोड़ी देर सन्नाटा रहा और फिर फ्रांसिस ने कहा, 'लियो वास्तविक साधु वह भी नहीं है जो पशुओं और पौधों को पत्थरों की भी भाषा समझा ले। सारे जगत् का ज्ञान भी उसे उपलब्ध हो; वह भी वास्तविक साधु नहीं है।' फिर थोड़ी देर सन्नाटा रहा। वे दोनों आंधी, पानी और अंधेरे में

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

चलते रहे। सेंट मेरिनो गांव के दिये दिखाई पड़ने लगे थे। संत फ्रांसिस ने फिर कहा, 'और वह भी वास्तविक साधु नहीं है जिसने अपना सब कुछ त्याग कर दिया है।' अब लियो से न रहा जा सका। उसने पूछा, 'फिर वास्तविक साधु कौन हैं?' संत फ्रांसिस ने कहा था, ''हम मेरिनों पहुंचने को है। सराय के द्वार को जाकर हम खटखटायेंगे। द्वारपाल पूछेगा, 'कौन हो?' और हम कहेंगे—'तुम्हारे ही दो बंधु—दो साधु।' और यदि वह कहे, 'भिखारियों—भिखमंगों—मुफ्तखोरों—यहां से भाग जाओ, यहां तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है।' और द्वार बंद कर ले। हम भूखे और थके और कीचड़ से भिड़े आधी रात को बाहर खड़ें रहें और फिर द्वार खटखटायें। वह अब की बार बाहर निकलकर लकड़ी से हम पर चोट करें और कहे, 'बदमाशों, हमें परेशान मत करो।' और यदि हमारे भीतर कुछ भी न हो—वहां सब शांत और आनंद बना रहे और द्वारपाल में भी हमे प्रभु दीखता रहे—तो यही वास्तविक साधुता है।''

निश्चय ही, सब परिस्थितियों में अखंडित शांति और सरलता को उपलब्ध कर लेना ही साधुता है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं नहीं आ सका। क्षमा करना। 2 और 3 मार्च दिल्ली बोल रहा हूं। । मार्च की रात्रि पंजाब मेल से वहां पहुंचूंगा। दिल्ली का पता नीचे दे रहा हूं। कोई परिचित तो उन्हें लिख दें।)

श्री सुन्दरलाल जी जैन, पो. बॉ. 1586
बंगलो रोड, जवाहर नगर, देहली—6
(फोन : 227655)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

महावीर ने पूछा है, 'किं भया पाणा समाउणो?' (श्रमणों, प्राणियों को भय क्या है?) कल कोई यही पूछता था। और कोई पूछे या न पूछे; प्रश्न तो यही प्रत्येक की आंखों में है। शायद यह सनातन प्रश्न है। शायद, यह अकेला ही प्रश्न है जो पूछना सार्थक भी है।

प्रत्येक भयभीत है। ज्ञान में, अज्ञान में भय सरक रहा है। उठते-बैठते, सोते-जागते, भय बना हुआ है। प्रत्येक क्रिया में, व्यहवार में, विचार में भय है। प्रेम में, घृणा में, पुण्य में, पाप में—सबमें भय है। जैसे, प्रभू अपनी पूरी चेतना ही भय से निर्मित है। हमारे विश्वास, धारणायें, धर्म और ईश्वर भय के अतिरिक्त और क्या है?

यह भय क्या है? भय के रुप अनेक हैं पर भय एक ही है। वह मृत्यु है। वह मूल भय है। मिटने की, न हो जाने की संभावना ही समस्त भय के मूल में है। भयग्रस्त न होने की, मिटने की आशंका। उस आशंका से बचने को पूरे जीवन प्रयास चलता है। सब प्रयास इस मूल असुरक्षा से बचने को है। पर पूरे जीवन दौड़कर भी 'होना' सुनिश्चित नहीं हो पाता है। दौड़ हो जाती है समाप्तः असुरक्षा वैसी ही बनी रहती है। जीवन हो जाता है पूरा और मृत्यु टल नहीं पाती है। उल्टे, जो जीवन दीखता था, वह पूरा होकर मृत्यु में परिणित हो जाता है। तब ज्ञात होता है कि जीवन जैसे था ही नहीं, केवल मृत्यु विकसित हो रहा थी। जन्म और मृत्यु जैसे मृत्यु के ही दो छोर हैं।

यह मृत्यु का भय क्यों है? मृत्यु तो अज्ञात है। वह तो अपरिचित है। उसका भय कैसे होगा? जो ज्ञात ही नहीं है, उससे संबंध भी क्या हो सकता है? वस्तुतः मृत्यु का भय जिसे हम कहते हैं वह मृत्यु का न होकर, जिसे हम जीवन जानते हैं, उसके खोने का डर है। जो ज्ञान है उसके खोने का भय है। जो ज्ञान है उससे हमारा तादात्म्य है। वही हमारा होना बन गया है। वही हमारी सत्ता बन गई है। मेरा शरीर, मेरी संपत्ति, मेरी प्रतिभा, मेरे संबंध, मेरे संस्कार, मेरे विश्वास, मेरे विचार—यही मेरे 'मैं' के प्राण बन गये हैं। यही 'मैं' हो गया हूं। मृत्यु इस 'मैं' को छीन लेगी। यही भय है। इस सबको इकट्ठा किया जाता है भय से बचने को, सुरक्षा पाने को और होता उल्टा है। इसे खोते ही आशंका ही भय बन जाती है। मनुष्य साधारणतः जो कुछ भी करता है वह सब जिसके लिए किया जाता है उसके विपरीत चला जाता है! अज्ञान में आनंद के लिए उठाये गये सब कदम दुःख में ले जाते हैं। अभय के लिए

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

चला गया रास्ता और भय में ले जाता है। जो 'स्व' की प्राप्ति मालूम होता है वह 'स्व' नहीं है। यदि इस सत्य के प्रति जागना हो जाये—यदि मैं यह जान सकूं कि जिसे मैंने 'मैं' जाना है वह मैं नहीं हूं और इस क्षण भी मेरे तादात्म्यों से मैं भिन्न और पृथक् हूं तो भय विसर्जित हो जाता है। मृत्यु में जो पर है वही खोना है।

इस हृदय को जानने को कोई क्रिया, कोई उपाय नहीं करना है। केवल उन-उन तथ्यों को जानना है—उन-उन तथ्यों के प्रति जागना है जिन्हें मैं समझता हूं कि मैं हूं। जिनसे मेरा तादात्म्य है। जागरण तादात्म्य तोड़ देता है। जागरण स्व और पर को पृथक् कर देता है। स्व पर का तादात्म्य भय है; पृथक् बोध भय-मुक्ति है, अभय है।

रात्रि :
23 फरवरी 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
देहली
2 मार्च, 1963

प्रिय मां,

कल कहा हूं, "मनुष्य जिसे जगत् कहता है, वह सत्ता की सीमा नहीं है वह केवल मनुष्य की इंद्रियों की सीमा है। इन इंद्रियों के पार असीम विस्तार है। इस असीम को इंद्रियों से कभी भी पूरा-पूरा नहीं पाया जा सकता है। क्योंकि इंद्रियां खंड को देखती है, अंश को देखती हैं और जो असीम है, अनंत है वह खंडित और विभाजित नहीं होता है। जो असीम है उसे मापने को कोई उचित साधन काम नहीं दे सकता है। जो असीम है वह केवल असीम से ही पकड़ा जा सकता है।

पर क्षुद्र और सीमित दीखते मनुष्य में असीम भी उपस्थित है। इंद्रियों पर उसकी परिसमाप्ति नहीं है। वह इंद्रियों में है पर इंद्रियां ही नहीं है। वह इंद्रियातीत आयाम में फैला हुआ है। वह जितना दीखता है। वहां उसकी समाप्ति सीमा नहीं, शुरुआत है। वह अदृश्य है। दृश्य के घेरे में अदृश्य बैठा है। इस जिसको वह अपने भीतर पा ले तो जगत् के समस्त अदृश्य को पा लेता है क्योंकि खंडित भाग और खंड दृश्य के हैं; अदृश्य अखंडित है। एक और अनेक वहां एक ही एक हैं और इसलिए एक को ही पा लेने से सब पा लिया जाता है। कहा है महावीर ने कहा है, 'जो संग जाणई, से सठसं जाणई।' एक को जाना कि सब जाना। यह एक दृश्य नहीं, दृष्टा है। इससे इसे पाने का मार्ग आंख नहीं है। आंख बंद करना इसका मार्ग है। आंख बंद करने का अर्थ है। दृश्य से मुक्ति। आंख बंद हो और भीतर दृश्य बहते हो तो भी आंख खुली ही है। दृश्य दृष्टि में न हो और आंख खुली हो तो भी आंख बंद है। दृश्य न हों और केवल दृष्टि—केवल दर्शन रह जाने को दृष्ट प्रगट हो जाता है। जिस दर्शन से दृष्टा दिखे वह सम्यक् दर्शन है। यह दर्शन जब तक नहीं तब तक मनुष्य अंधा होता है, आंख होते हुए भी आंख नहीं होती है। इस दर्शन से चक्षु मिलते है; वास्तविक चक्षु, इन्द्रियातीत चक्षु और सीमायें मिट जाती हैं; रेखायें मिट जाती हैं जो है—आदि-अंतहीन विस्तार—ब्रह्म—वह उपलब्ध होता है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

"यह उपलब्धि ही मुक्ति है क्योंकि प्रत्येक सीमा नीचे है। प्रत्येक सीमा परतंत्रता है। सीमा से ऊपर होना स्व-तंत्र होना है।"

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा पत्र मिल गया था। मेरे न आने से तुम कैसा अनुभव की हो सो न कहे भी ज्ञान है। पत्र में तो कुछ भी नहीं लिखा है पर यह न लिखना भी तो सब कुछ कह देता है। कल सांझ देहली आया हूं और 8 मार्च की सुबह यहां से वापिस होऊंगां श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का ध्यावर् से पत्र मिला था। लिखा था कि श्री पारख जी के गुरुजी भी मधुकर जी ध्यावर है और मुझसे मिलना चाहते हैं। श्री पारखजी ने उन्हें पत्र लिखा होगा। मई या जून में श्री पारख जी जब ठीक समझे मिलने जाया जा सकता है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

कोई पूछता था, "आत्मा को कैसे पाया जाये? ब्रह्म-उपलब्धि कैसे हो सकती है?"

आत्मा को पाने की बात ही मेरे देखे गलत है। वह उपलब्ध नहीं है। वह तो नित्य प्राप्त है। वह कोई वस्तु नहीं जिसे लाना है। वह कोई लक्ष्य नहीं जिसे साधना है। वह भविष्य में नहीं है कि अचानक पहुंचना है। वह है 'है' का ही वह नाम है। वह वर्तमान है। नित्य वर्तमान। उसमें अतीत और भविष्य नहीं है। उसमें 'होना' नहीं है। उसे न खोना संभव है और न पाने की बात ही सार्थक है। वह शुद्ध-नित्य-अस्तित्व है।

'फिर खोना किस स्तर पर हो गया है या खोने का आभास और पाने की प्यास कहां आ गई?'

'मैं' को समझा लें तो जो आत्मा खोई नहीं जा सकती है उसका खोना समझ में आ सकता है। 'मैं' अच्छा नहीं है। न 'स्व' आत्मा है, न 'पर' आत्मा है। यह द्वैत वैचारिक है। यह द्वैत मन में है। मन आभास सत्ता है। वह कभी वर्तमान में नहीं होता है। वह या तो अतीत है या भविष्य है। न अतीत की सत्ता है, न भविष्य की। एक न हो गया है; एक अभी हुआ नहीं हैं एक स्मृति में है, एक कल्पना में है। सत्ता में दोनों नहीं है। इस असत्ता से 'मैं' का जन्म होता है। 'मैं' विचार की उत्पत्ति है। काल भी विचार की उपलाब्ध है। विचार के कारण, 'मैं' के कारण आत्मा आवरण में है। वह है पर खोई मालूम होती है। फिर वहीं से 'मैं'–यही विचार-प्रवाह–इस तथाकथित खोई आत्मा को खोजने जाता है! यह खोज असंभव है क्योंकि इस खोज से 'मैं' और पुष्ट होता है, सशक्त होता है। 'मैं' के द्वारा नहीं, 'मैं' के विसर्जन से उसका पाना है। स्वप्न जाते ही जाग्रति है। 'मैं' के जाते ही आत्मा है। आत्मा शून्यता है क्योंकि पूर्णता है। उसमें 'स्व' 'पर' नहीं है। वह अद्वैत है। वह कालातीत है। विचार के, मन के जाते ही जाना जाता है कि उसे कभी खोया नहीं था।

इसलिए, उसे खोजना नहीं है। खोज छोड़नी है और खोजने वाले को छोड़ना है और खोज और खोजी के मिटते ही खोज पूरी हो जाती है। 'मैं; को खोकर उसे पा लिया जाता है।

दोपहर : 6 मार्च 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : कल दिल्ली से लौटा तो तुम्हारा पत्र मिला है। दिल्ली यात्रा आनंदपूर्ण हुई है। मैं स्वथ और प्रसन्न हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं कल कहा हूं।

सत्य को जानना चाहते हो तो विचार मत करो। शास्त्र और शब्द व्यर्थ है। उस भांति सत्य के संबंध में जाना जातकता है। लेकिन सत्य को जानने का वह मार्ग नहीं है।

शब्द से सत्ता नहीं आती है। सत्ता का वह द्वार शून्य है।

शब्द से निःशब्द में छलांग लगाने का साहस ही धार्मिकता है।

विचार पर को जानने का उपाय है। वह स्व को नहीं देता है। स्व उसके भी पीछे जो है। स्व सबके पूर्व है। स्व से हम सत्ता में संयुक्त हैं। विचार भी पर है। वह भी जब नहीं है जब वह 'जो है' होता है। उसके पूर्व में 'अहं' हूं उसमें 'ब्रह्म' हूं।

सत्य में–सत्ता में स्व-पर मिट जाता है। वह भेद भी विचार में और विचार का ही था।

चेतना के तीन रुप हैं–१. बाह्य-मूर्च्छित–अंतर मूर्च्छित २. बाह्य-जाग्रत–अंतर-मूर्च्छित और ३. बाह्य जाग्रत–अंतर जाग्रत। पहला रुप मूर्च्छा-अचेतना का है। वह जड़ता है। वह विचार-पूर्व स्थिति है। दूसरा रुप अर्ध मूर्च्छा-अर्धचेतना का है। वह जड़ और चेतन के बीच है। वह विचार की स्थिति है। तीसरा रुप अमूर्च्छा-पूर्ण चेतना का है। वह पूर्ण चैतन्य है और विचारातीत है।

सत्य को जानने को केवल विचाराभाव ही नहीं पाना है। वह तो जड़ता में, मूर्च्छा में जाना हैं धर्म के नाम से प्रचलित बहुत सी क्रियायें मूर्च्छा में ही ले जाती हैं। शराब, सेक्स और संगीत भी मूर्च्छा में ही ले जाते हैं। मूर्च्छा में पलायन है। वह उपलब्धि नहीं है।

सत्य को पाने को विचार-शून्यता+चैतन्य पाना होता है। उस स्थिति का नाम ही समाधि है।

रात्रि
12 मार्च 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रार्थना क्या है? आत्म-विस्मरण! नहीं, प्रार्थना आत्म-विस्मरण नहीं है। वह, जिसमें भूलना और डूबना और खोना है, मादकता का ही एक रुप है। वह उपाय प्रार्थना नहीं, पलायन हैं शब्द में, संगीत में खोया जा सकता हैं ध्वनि-सम्मोहन में, नृत्य में जो है उसका स्मरण हो सकता है। यह विस्मरण और बेहोशी सुखद भी मालूम हो सकती है पर यह प्रार्थना नहीं है। यह मूर्च्छा है जबकि प्रार्थना सम्यक् चेतना में जागरण का नाम है।

प्रार्थना क्या कोई क्रिया है? तथा कुछ करना प्रार्थना है? नहीं, प्रार्थना क्रिया नहीं, वरन् चेतना की एक स्थिति है। प्रार्थना की नहीं जाती है; प्रार्थना में हुआ जाता है। प्रार्थना मूलतः अक्रिया है। जब-सब क्रियायें शून्य हैं और केवल साक्षी चैतन्य शेष रह गया है; ऐसी स्थिति का नाम प्रार्थना है। प्रार्थना शब्द से करने की ध्वनि निकलती है। ध्यान शब्द से भी करने की ध्वनि निकलती है पर वे दोनों शब्द क्रियाओं के लिए नहीं, चेतना-स्थिति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। शून्य में, मौन में, निशब्द में, होना प्रार्थना है, ध्यान है।

एक प्रार्थना सभा में कल यह कहा है।

किसी ने बाद में पूछा, 'फिर हम क्या करें?'

मैं कहा, ''थोड़े समय को कुछ भी न करें। बिल्कुल विश्राम में अपने को छोड़ दें। शरीर और मन दोनों को चुप हो जाने दें। चुपचाप मन को देखते रहो वह अपने से शांत और शून्य हो जाता है। इसी शून्य में सत्ता का सान्निध्य उपलब्ध होता है। इसी शून्य में वह प्रगट होता है जो भीतर है और वह भी जो बाहर है। फिर बाहर और भीतर मिट जाते हैं और केवल वही रह जाता है जो है। इस शुद्ध 'है' की समग्रता का नाम ही ईश्वर है।''

18 मार्च 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं महावीर जयंती पर इंदौर और रतलाम बोल रहा हूं। बहुत दिन से पत्र नहीं। लिखना, स्वास्थ्य कैसा है? सबको प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

सुबह एक उपदेश सुना है। अनायास ही सुनने में आया। एक साधु बोलते थे। मैं उस राह से निकला तो सुन पड़ा। वे बोल रहे थे कि धार्मिक होने का अर्थ ईश्वर-भक्ति होना है। जो ईश्वर से डरता है वही धार्मिक है। भय ही उस पर प्रेम लाता है। 'भय बिन होई न प्रीति।' प्रेम भय के अभाव में असंभव है।

साधारणतः, जिन्हें धार्मिक कहा जाता है। वे शायद भय के कारण ही होते हैं। जिन्हें नैतिक कहा जाता है। उसके आधार में भी भय ही होता है।

भांट ने कहा है, ईश्वर न हो तो भी उसका मानना आवश्यक है। यह भी शायद इसीलिए ही कि उसका भय लोगों को शुभ बनाता है।

मैं इस बातों को सुनता हूं तो हंसे बिना नहीं रहा जाता है। इतनी भ्रांत और असत्य शायद और कोई बात नहीं हो सकती है।

धर्म का भय से कोई संबंध नहीं है। धर्म तो अभय से उत्पन्न होता है।

प्रेम भी भय के साथ असंभव है। भय प्रेम का दिखावा पैदा कर सकता है लेकिन अभिनय के पीछे अप्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है।

और यह धार्मिकता और नैतिकता जो भय पर आधारित होती है; सत्य नहीं, मिथ्या है। क्योंकि, भय पर कोई भी सत्य खड़ा नहीं हो सकता है।

ईश्वरानुभूति अभय-चेतना में उपलब्ध होती है। या कि ठीक हो यदि कहें कि अभय-चैतन्य ही ईश्वरानुभूति है। जिस क्षण समस्त भय-ग्रंथियां विसर्जित हो जाती हैं उस क्षण जो होता है वही सत्य-साक्षात् है।

अर्धरात्रि :
22.3.63

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा पत्र मिला है। कितनी खुशी हुई–कैसे कहूं? श्री शुक्ला को मेरे प्रणाम कहें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं माली को बीज बोते देखता हूं। फिर एक खाद देता है, पानी देता है। और फूलों के आने की प्रतीक्षा करता है। फूल खींचकर जबरदस्ती पौधों से नहीं निकाले जाते हैं। उनका तो विकास होता है। उनकी तो धीरज से प्रतीक्षा करनी होती है।

ऐसे ही प्रभु के बीज भी बोने होते हैं।

ऐसे ही दिव्य जीवन के फूलों के खिलने की भी राह देखनी पड़ती है।

जो इसके विपरीत चलता है और अधैर्य प्रगट है वह कहीं भी नहीं पहुंच पाता है। अधैर्य उस विकास के लिए अच्छी खाद नहीं है।

शांति से, धैर्य से और प्रीति से चलने पर किसी सुबह अनायास ही फूल खिल जाते हैं और उन की गंध जीवन के आंगन को सुवासित कर देती हैं

कल संध्या ध्यान-सभा में यह कहा हूं।

27 मार्च 63

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

'मैं ईश्वर-भीरू नहीं हूं।

मैं किसी अर्थ में श्रद्धालु भी नहीं हूं।

मैं किसी धर्म का अनुयायी भी नहीं हूं।'

कल जब मैं यह कहा तो किसी ने पूछा, 'फिर क्या आप नास्तिक हैं?'

'मैं न नास्तिक हूं, न आस्तिक हूं। वे भेद सतही और बौद्धिक हैं, सत्य से और सत्ता से उनका कोई संबंध नहीं है। सत्ता 'है' और 'न है' में विभक्त नहीं है। वह भेद मन का है। इसलिए, नास्तिकता आस्तिकता दोनों मानसिक हैं। आत्मिक को वे नहीं पहुंच पाती हैं। आत्मिक विधेय और नकार दोनों का अतिक्रमण कर जाता है। 'जो है' वह विधेय और नकार के अतीत है। या फिर, वहां दोनों एक हैं और उनमें कोई भेद देखा नहीं है।

'आस्तिक को आस्तिकता छोड़नी होती है, नास्तिक को नास्तिकता। तब कहीं ये सत्य में पहुंचते हैं। मन की कोई भी धारणा उस मुक्ति के जगत् में बंधन है।

'जो न आस्तिक हैं, न नास्तिक उसे मैं धार्मिक कहता हूं। धार्मिकता भेद से अभेद में छलांग है।

'विचार जहां नहीं, निर्विचार है; विकल्प जहां नहीं, निर्विकल्प है; शब्द जहां नहीं, शून्य है—वहां धर्म में प्रवेश है।'

प्रभात :
28 मार्च 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : जया बहिन ने लिखा है कि वे आपको दो पत्र दे चुकी लेकिन आपका कोई उत्तर नहीं है। उन्हें उत्तर दें। शेष शुभ। सबको प्रणाम।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

एक गांव में गया था। किसी ने कहा, 'धर्म त्याग है। त्याग बड़ी जटिल और कठोर साधना है।'

मैं सुनता था तो एक स्मरण हो आया। छोटा था। बहुत बचपन की बात होगी। कुछ लोगों के साथ नदी तट पर वन-भोज को गया था। नदी तो छोटी थी पर रेत बहुत थी और रेत में चमकीले रंगों भरे पत्थर बहुत थे। मैं तो जैसे खजाना पा गया था। सांझ तक इतने पत्थर बीन लिये थे कि उन्हें साथ लाना असंभव था। चलते सब जब उन्हें पीछे छोड़ना पड़ा तो मेरी आंखें भीग गई थी और साथ के लोगों की उस पत्थरों की ओर विरक्ति देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था। उस दिन वे मुझे बड़े त्यागी लगे थे।

और आज सोचता हूं जो दीखता है कि पत्थरों को पत्थर जान लेने पर त्याग का कोई प्रश्न ही नहीं है।

अज्ञान योग है। ज्ञान त्याग है।

त्याग क्रिया नहीं है। वह करना नहीं होता है। वह हो जाता है। वह ज्ञान का सहज परिणाम है। योग भी यांत्रिक है। वह भी कोई करता नहीं है। वह अज्ञान की सत्ता परिणति है।

फिर, त्याग के कठिन और कठोर होने की बात भी व्यर्थ है। एक तो वह क्रिया ही नहीं है। क्रियायें ही कठिन और कठोर हो सकती है। वह तो परिणाम है। फिर, उसमें जो छूटना मालूम होता है वह निर्मूल्य है और जो पाया जाता है वह अमूल्य होता है।

ए, हार्न ने कहा है, 'त्याग जैसी कोई वस्तु ही नहीं है; क्योंकि जो हम छोड़ते हैं, उससे बहुत श्रेय को पा लेते हैं।'

सच तो यह है कि हम केवल बंधनों को छोड़ते हैं और पाते हैं मुक्ति। छोड़ते हैं कौड़ियां और पाते हैं हीरे। छोड़ते हैं मृत्यु और पाते हैं अमृत। छोड़ते हैं अंधेरा और पा लेते हैं प्रकाश—शाश्वत और अनंत।

इसलिए, त्याग कहां है? न कुछ को छोड़कर सब कुछ पा लेना त्याग नहीं है।

और तब कहता हूं कि जो अपने जीवन को छोड़ता है वह जीवन को पा लेता है।

3 अप्रैल 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रणाम! मैं कल यहां आया हूं। रात्रि बोला। अच्छा सफल आयोजन था। इंदौर भी एक केन्द्र बन सकेगा। आज दो जगह और बोल रहा हूं। कल साजापुर बोलूंगा और परसों सुबह सबलपुर पहुंचूंगा। आपकी याद बनी है। कल में ही लिखने की सोच रहा हूं पर समय नहीं पा सका। अभी मुश्किल से इन चार लकीरों के लिए समय निकाल पाया हूं।

इंदौर
7 अप्रैल 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

दोपहर :
12 अप्रैल, 1963

प्रिय मां,

जीवन साधना में बीत गया है और फलित क्या है यह जानना अत्यंत अपरिहार्य है। प्रारंभ और परिणाम को पहचानना जरुरी है। कार्य और कारण को न जाने हुए जो चलता वह भूल करता है। चलना ही केवल पर्याप्त नहीं है। अकेले चलने से ही कोई कहीं पहुंचता है। दिशा और साधना-विधि का सम्यक् होना भी जरूरी है।

साधना में केन्द्रीय भी कुछ है; कुछ परिधिगत भी है। केन्द्र पर प्रयास हो तो परिधि अपने से सम्हल जाती है। उसे पृथक सम्हालने का कारण नहीं है। वह केन्द्र की ही अभिव्यक्ति है। वह फैला हुआ केन्द्र ही है। इससे परिधि पर प्रयास व्यर्थ होते हैं। अंग्रेजी में कहावत है, 'झाड़ी के अपसपास पीटना।' परिधि पर उलझना ऐसा ही है।

क्या है केन्द्र? क्या है परिधि?

ज्ञान केन्द्र है। शील परिध है। ज्ञान प्रारंभ है। शील परिणाम है। ज्ञान बीज है। शील फलित है। पर साधारणतः लोगों का चलना विपरीत है। शील से चलकर वे ज्ञान पर पहुंचना चाहते हैं। शील को वे ज्ञान में परिणीत करना चाहते हैं।

पर शील अज्ञान में पैदा नहीं किया जा सकता है। शील पैदा ही नहीं किया जा सकता है। पैदा किया हुआ शील शील नहीं है। वह मिथ्या आवरण है जिसके तले कुशील दब जाता है। लेकिन शील आत्म वंचना है। अंधेरे को दबाना-छिपाना नहीं है। उसे मिटाना है। कुशील पर शील के कागजी फूल नहीं चिपकाने हैं। और मिटाना है। जब वह नहीं है, तब जो आता है वह शील है। अज्ञान में जोर जबरदस्ती लाया गया शील घातक है क्योंकि उसमें जो नहीं है वह ज्ञान होता है। और इस भांति जिसे लाना है उसका आंख से ओझल हो जाना हो जाता है।

अज्ञान में सीधे शील लाने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि अज्ञान की अभिव्यक्ति ही कुशील है। कुशीलता अज्ञान ही है। किसी सूफी ने कहा है, 'अन्जान किं काही?' (जो अज्ञान में है वह क्या कर सकता है।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

शील नहीं, ज्ञान लाना है। ज्ञान ही शील बन जाता है।

आगम कहते हैं,

'जाणस्त सब्बस्स पगानणात, अण्णाण मोहस्ज विषगुणार।
रागस्थ दोसस्स य संखएणं, एगंतसोक्खं समुवेई भोलनं॥'

(ज्ञान सर्व को प्रकाशित करता है। उसके उदय से ही अज्ञान और मोह का नाश होता है। उससे ही राग और द्वेष का क्षय होता है उससे ही मुक्त दशा उपलब्ध होती है।)

ज्ञान केन्द्र है उसके आने से शेष सब अपने आप आ जाता है। और ज्ञान का अर्थ पर विचार संग्रह नहीं है। ज्ञान का अर्थ पांडित्य नहीं, प्रसार है। ज्ञान का अर्थ आत्मज्ञान है। मैं जिस क्षण शांत और शून्य हूं इस क्षण वह जो है प्रगट हो जाता है। जो शून्यता में भीतर से आता है वही ज्ञान है

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र इंदौर से लौटकर मिला। मैं इस माह तो नहीं आ सकूंगा। पारखजी से भी क्षमा मांग लें। राजस्थान जाना भी अभी संभव नहीं है। छुट्टियों के बाद मई में ही आऊंगा। शेष शुभ। सबको प्रणाम। मैं आनंद में हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

'समाधि क्या है?'

किसी ने कहा है, बूंद का सागर में मिल जाना।

किसी ने कहा है, सागर का बूंद में उतर जाना।

मैं कहता हूं, बूंद और सागर का मिट जाना। जहां न बूंद है, न सागर है, वहां समाधि है। जहां न एक है, न अनेक हैं, वहां समाधि है। जहां न सीमा है, न असीम है, वहां समाधि है।

समाधि सत्ता के साथ एक्य है।

समाधि सत्य है। समाधि चैतन्य है। समाधि शांति है।

'मैं' समाधि में नहीं होता हूं, वरन् जब 'मैं' नहीं होता है तब जो है वह समाधि है।

और शायद, यह मैं जो कि 'मैं' नहीं है वास्तविक मैं है।

'मैं' की दो सत्तायें हैं। अहम् और ब्रह्मा। अहम् वह है जो मैं नहीं हूं पर जो मैं जैसा मानता है। प्रश्न वह है जो मैं हूं लेकिन जो मैं जैसा प्रतीत नहीं होता है।

चेतना—शुद्ध चैतन्य ब्रह्म है।

मैं शुद्ध साक्षी-चैतन्य हूं पर विचार-प्रवाह से तादात्म्य के कारण यह दिखाई नहीं पड़ता है। विचार स्वयं चेतना नहीं है। विचार को जो जानता है वह चैतन्य है। विचार का भी जो दृष्टा है वह चैतन्य है। विचार विषम है; चेतना विषयी है। विषय से विषयी का तादात्म्य मूर्च्छा है। यही असमाधि है। यही प्रथम अवस्था है।

विचार—विषय के अभाव में जो शेष है वही चेतना है। इस शेष में ही होना समाधि है।

विचार शून्यता में जागरण सत्ता के द्वार खोल देता है। वही 'जो है' उसका साक्षात् है।

इसमें जागो—यही समस्त जाग्रत पुरुषों की वाणी का सार है।

अर्धरात्रि :
18 अप्रैल 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात
23 अप्रैल, 1963

प्रिय मां,

'ईश्वर है?' 'हमें ज्ञात नहीं।'

'आत्मा है?' 'हमें ज्ञात नहीं।'

'मृत्यु के बाद जीवन है?' 'हमें ज्ञात नहीं।'

'जीवन में कोई अर्थ है?' हमें ज्ञात नहीं।'

यह 'हमें ज्ञात नहीं' आज का पूरा जीवन-दर्शन है। इस तीन शब्दों में हमारा पूरा ज्ञान समा जाता है! पर के संबंध में, पदार्थ के सबंध में जानने की हमारी दौड़ का अंत नहीं है। स्व के, चैतन्य के संबंध में हम प्रतिदिन अंधेरे में डूबते जाते हैं।

बाहर प्रकाश मालूम होता है। भीतर घुप्प अंधेरा है। परिधि पर ज्ञान है, केन्द्र पर अज्ञान है।

और आश्चर्य यह है कि केन्द्र को प्रकाशित करने को कोई भी प्रयास नहीं करना है। वहां आंख भी पहुंच जाये और बस प्रकाशित हो जाता है।

'पर' पर आंख न हो तो वह 'स्व' पर खुल जाती है। बाहर उसे आधार न हो तो वह स्व पर आधार खोल देती है।

स्वाधार चैतन्य ही समाधि है।

और समाधि सत्ता का द्वार है। उसमें, यह नहीं कि सब प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं, वरन् सब प्रश्न ही मिट जाते हैं। प्रश्नों का परिणाम ही असली उत्तर है। जहां प्रश्न नहीं और केवल चैतन्य है—शुद्ध चैतन्य ही वही उत्तर है—वहीं ज्ञान है।

इस ज्ञान को पाये बिना जीवन निरर्थक है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

दोपहर : 16 मई 1963

प्रिय मां,

मनुष्य का सबसे बड़ा आविष्कार है। यह जानना कि 'वह' नहीं है। 'मैं' नहीं है। यह बोध सबसे बड़ा ज्ञान है। पर खोना दीखता है पर यही वास्तविक और एकमात्र पाना है।

'मैं' समस्त आकांक्षा-वासना का मूल है। यह संसार है। वही 'मोक्ष' 'निर्वाण' और 'ब्रह्म' पाने के पीछे भी होता है। और यही भूल हो जाती है। 'मैं' सत्य को नहीं पा सकता है। वरन् यही रुकावट है। उसका न होना मोक्ष है, निर्वाण है। उसे न भी नहीं किया जा सकता हैं कौन उसे न करेगा? क्या वही? फिर तो न करने में भी वही पुष्ट होता है। वह जीत भी उसी की जीत है। इसलिए, अहं-शून्यता लाई नहीं जा सकती है। उस दिशा में सब लाना–सब पाना–सब पैदा करना–आत्मवंचना है। अहं शून्यता आती है। 'मैं' के प्रति जागरण से–'मैं' के सूक्ष्म मार्गो से परिचित होने से–होश से वह आती है। 'मैं' को देखने से–द्वैनंदिन कार्यो में, इच्छाओं में, प्रतिक्रियाओं में, समस्त कार्यो में–व्यापारों में उसके प्रति विवेक-जागरण से वह गलता और गिर जाता है। उस की सत्ता नहीं है वह दीख आता है। यह स्थिति सबसे बड़ा उद्‌घाटन है। यह धार्मिक क्रांति है। 'मैं' से छलांग सत्ता में उतरना है।

इसलिए, धर्म के जगत् में कुछ पाने जैसा नहीं है। सीधा खींच लाने जैसा वहां कुछ भी नहीं है। क्योंकि वहां 'मैं' और उसके आक्रमण की कोई संभावना नहीं है।

'मैं' जब नहीं होता है तब 'जो है' वह उस रिक्तता में अपने आप उतर आता है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं सकुशल हूं। अब गाडरवारा जा रहा हूं और वहां एक सप्ताह रुकने का इरादा है। सबको मेरे प्रणाम कहें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

गाडरवारा,
दोपहर : 24 मई 1963

प्यारी मां,

कल रात्रि देर तक नदी के नट पर था। नदी की धार चांदी के फीते की भांति दूर तक चमकती चली गई है। एक मांझी डोंगी खेता हुआ आया था और देर से बोलते हुए जल-पक्षी चुप हो गए थे।

एक मित्र साथ थे। उन्होंने एक भजन गाया था और फिर बात ईश्वर पर चली गई थी। गीत में भी ईश्वर की खोज की बात थी। जिन्होंने इसे गाया था उनके जीवन के अनेक वर्ष ईश्वर की तलाश में ही गये हैं। मेरा परिचय उनसे कल ही हुआ था। विज्ञान के स्नातक हैं और फिर किसी दिन ईश्वर की धुन ने उन्हें पकड़ लिया था। तब से अनेक वर्ष उसी धुन में गये हैं पर कुछ उपलब्ध नहीं हुआ है।,

मैं भजन को सुनकर चुप था। उनकी आवाज मधुर थी और मन को छूती थी। फिर भजन के पीछे हृदय था और उस कारण गीत जीवित हो उठा था। मेरे मन में उस की प्रति ध्वनि गूंज रही थी पर उन्होंने इस मौन को तोड़ कर अनायास पूछा था कि 'यह ईश्वर की तलाश कहीं भ्रम ही तो नहीं है? पहले मैं आशा से भरा था पर फिर धीरे-धीरे निराश होता गया हूं।'

मैं फिर भी थोड़ी देर चुप रहा और बाद में कहा, 'ईश्वर की तलाश भ्रम ही है क्योंकि ईश्वर को खोजने का प्रश्न ही नहीं है। वह तो सदा ही उपस्थित है। पर हमारे पास उसे देख सकें ऐसी आंखें नहीं है इसलिए असली खोज सम्यक् दृष्टि को पाने की है। एक अंधा आदमी था। वह सूरज को खोजना चाहता था। वह खोज गलत थी। सूरत तो है ही। आंखें खोजनी हैं। आंख पाते ही सूरज मिल जाता है। साधारणतः ईश्वर का तलाशी सीधे ईश्वर को खोजने में लग जाता है। वह अपनी आंखों का विचार ही नहीं करता है। वह आधारभूत भूल परिणाम में निराशा लाती है। मेरा देखना विपरीत है। मैं देखता हूं कि असली प्रश्न मेरा है और मेरे परिवर्तन का है। मैं जैसा हूं, मेरी आंख जैसी है, वही मेरे ज्ञान की और मेरे दर्शन की सीमा है। मैं बदलूं, मेरी आंखें बदलें, मेरी चेतना बदले तो जो अभी अदृश्य हैं, वह दृश्य

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

हो जाता है। और फिर जो हम अभी देख रहे हैं उसकी ही गहराई में ईश्वर उपलब्ध हो जाता है। संसार में ही प्रभु उपलब्ध हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म ईश्वर को पाने का नहीं, वरन् नयी दृष्टि, नयी चेतना पाने का विज्ञान है। प्रभु तो है ही, हम इसमें ही खड़े हैं, उसमें ही जी रहे हैं–पर आंखें नहीं है इसलिए सूरज दिखाई नहीं देता है। सूरज को नहीं आंखों को खोजना है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : घर आया हूं। सो फुरसत ही फुरसत है। जबलपुर तो घिरा रहता हूं। यहां आकर पता लगा है कि तुम तो चौबीस घंटे साथ हो। वहां भी साथ रहती हो। मैं नहीं देख पाता हूं। पर यहां तो तुम ही तुम दीख रही हो। सोकर उठा हूं, स्मरण आया तो पत्र लिखने बैठ गया हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं परसों गाडरवारा से लौटा तो आपका पत्र मिला है। कल अचल का पत्र भी आया है। आप दोनों ने मिलकर द्रुग का कार्यक्रम जून के प्रारंभ में रखना चाहा है। पर मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है इसलिए जून के सारे कार्यक्रम स्थगित करने का सोचा है। कलकत्ता, जयपुर और छतरपुर स्वीकृतियां दी थीं। उन्हें अस्वीकृति लिख रहा हूं। द्रुग भी वर्षा में कभी रखें। व्यावर ही स्वास्थ्य कुछ गड़बड़ था, गाडरवारा जाकर गर्मी ने और खराब कर दिया है इसलिए जून विश्राम करने का ही मन है।

शेष शुभ है। सबको मेरे विनम्र प्रणाम कहें।

26.5.63

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

संध्या उतर आई है। आकाश में तारे फूट रहे हैं और सान्धय कुसुमों की गंध पड़ने लगी है।

एक कोयल दोपहर पर कूकती रही है और अब चुप हो गई है। वह गाती थी तो इतनी ख्याल में नहीं थी, अब मौन क्या हुई है कि और ख्याल में हो आई है। मैं उसके फिर से स्वर उठाने की प्रतीक्षा कर रहा हूं कि इसी बीच एक साधु का आगमन हुआ है। बाल-ब्रह्मचारी है। सूखी, कृश, अस्वस्थ सी देह है। चेहरा बुझा-बुझा, पीड़ा और निस्तेज। आंखों का पानी उड़ गया है। देख उन्हें, मुझे बहुत दया आई है। शरीर पर अनाचार किया है। यह मैं उनसे कहा हूं। वह तो कुछ चौंक से गये हैं। इसे ही त्याग मानते हैं। अस्वास्थ्य जैसे आध्यात्मिक है। कुरुपता और विकृति जैसे योग है। असौंदर्य में साधना ही साधना है। एक जर्मन दार्शनिक काउन्ट केसरलिंग ने कही लिखा है, 'स्वास्थ्य अध्यात्म-विरोधी आदर्श है।' उनकी इस पंक्ति में इसी अज्ञान की गूंज है। पर विचार प्रतिक्रिया जन्म है। कुछ है जो शरीर के पीछे है। शरीर ही उन्हें सब कुछ है। यह एक अति है फिर इसकी प्रतिक्रिया से दूसरी अति पैदा होती है। पर दोनों ही अतियां शरीरवादी हैं। शरीर का न तो उछालते फिरना है, न उसे तोड़ते फिरना है वह तो कुल जमा आवास है। उसका स्वस्थ और स्वच्छ होना आवश्यक है। आध्यात्मिक जीवन स्वास्थ्य विरोधी नहीं है। वह तो परिपूर्ण स्वास्थ्य है। वह तो एक, संगीतपूर्ण सौंदर्य की स्थिति का ही पर्यायवाची है।

शरीर-दमन अध्यात्म नहीं है। वह तो केवल भोगवादी वृत्तियों का शार्षागम है। वह तो योग की प्रतिक्रिया मात्र है। उसमें ज्ञान नहीं, अज्ञान और आत्महिंसा हैं वह वृत्ति हिंसक है। उससे कोई कहीं नहीं पहुंचता है। शरीर को दमन नहीं करना है। वह तो बेचारा केवल उपकरण है और अनुगामी है। वह तो मैं जैसा हूं वैसा ही जाता है। मैं वासना में हूं तो वह वहां साथ देता है। मैं साधना में हो जाऊं तो वह वहां साथी हो जाता है। वह मेरे पीछे है। परिवर्तन उसमें नहीं है, वह जिसके पीछे है उसमें करना हैं

3 जून 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

4 जून 1963

मां,

'एक सराय में एक रात्रि एक यात्री ठहरा था। वह जब पहुंचा तब कुछ यात्री विदा हो रहे थे। सुबह जब वह विदाई ले रहा था तो और यात्री आ रहे थे। सराय में अतिथि जाते और चले जाते लेकिन अतिश्रेय वहीं का वहीं था।'

एक साधु यह देखकर पूछता था कि क्या यही घटना मनुष्य के साथ प्रतिक्षण नहीं घट रही है?

मैं भी यही पूछता हूं और कहता हूं कि जीवन में अतिथि और आतिथेय को पहचान लेने से बड़ी और कोई बात नहीं है। शरीर मन एक सराय है। उसमें विचार के, वासनाओं के, विचारों के अतिथि आते हैं पर इन अतिथियों से पृथक् भी वहां कुछ है। आतिथेय भी है। यह आतिथेय कौन है?

यह 'कौन' कैसे जाना जाये? बुद्ध ने कहा है, 'रुक जाओ' और यह रुक जाना ही उसका जानना है। (बुद्ध का पूरा वचन है, कि 'यह पागल मन रुकता नहीं है, यदि यह रुक जाये तो वही बोधि है। वही निर्वाण है।) मन के रुकते ही आतिथेय प्रगट हो जाता है। यह शुद्ध, नित्य-बुद्ध, चैतन्य है। जो न कभी जन्मा, न मरा। न जो बद्ध है, न मुक्त होता है। जो केवल है और जिसका होना परम आनंद है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र मिला है। रोज उत्तर देने की सोचता हूं पर हाथ रुक जाता है। चांदा जाऊं, इससे ज्यादा सुखद और क्या है? पर गर्मियों का स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है इसलिए वर्धा में छुट्टियां लेकर चांदा आने की सोचता हूं। शारदा से मेरी ओर से क्षमा मांग लें। परार्थ को देखना है पर जब प्रभु की मर्जी हो तभी न?)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक सूफी गीत है।, "प्रेयसी के द्वार किसी ने दस्तक दी। भीतर से आवाज आई, 'बाहर कौन है?' जो द्वार के बाहर खड़ा था उसने कहा 'मैं हूं।' प्रत्युत्तर में उसे सुन पड़ा, 'यह गृह 'मैं' और 'तू' के दो को नहीं सम्हाल सकता है।' और बंद द्वार बंद ही रहा। प्रेमी वन में चला गया। उसने तप किया, उपवास किये। प्रार्थनायें कीं। और बहुत से चांदों के बाद वह लौटा और पुनः उसने वे ही द्वार खटखटाये। दुबारा वही प्रश्न, 'बाहर कौन है।' पर इस बार द्वार खुल गए क्योंकि उसका उत्तर था। उसने कहा, 'तू ही है।' "

यह उत्तर कि 'तू ही है' समस्त धर्म का सार है। जीवन के अनंत-असीम प्रवाह पर 'मैं' की गांठ ही बंधन है। 'मैं' व्यक्ति को सत्ता से तोड़ देता है। 'मैं' का बुदबुदा सत्ता-प्रवाह से अपने को भिन्न समझ बैठता है। बुदबुदे की अपनी कोई सत्ता नहीं है। उसका कोई केन्द्र और अपना जीवन नहीं है। वह सागर ही है। सागर ही उसका जीवन है। सागर में होकर ही उसका होना है। सागर से पृथक् सत्ता का बोध ही अज्ञान है। बुदबुदे के भीतर झांके तो सागर मिल जाता है। 'मैं' के भीतर झांकें तो ब्रह्म मिल जाता है।

'मैं' जहां नहीं है, वहां वस्तुतः 'तू' भी नहीं है। वहां केवल 'होना' है। केवल अस्तित्व है। शुद्ध सत्ता हैं इस शुद्ध सत्ता में जागना निर्वाण है।

12 जून 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं स्वस्थ हूं और आनंद में हूं। इस माह कहीं न जाने के निर्णय से स्वास्थ्य पर अच्छा परिणाम हुआ है। श्री पारख जी का पत्र मिला है। उनसे मेरी ओर से क्षमा मांग लें। श्री अधलखा जी से भी क्षमा मांग लें। उनकी पुत्री के विवाह का आमंत्रण मिला था। मैं उस शुभ अवसर पर आ सकता तो आनंद अनुभव करता; न आ सकने के कारण क्षमाप्रार्थी हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

14 जून 1963

मां,

मनुष्य का मन अद्‌भुत है। वही है रहस्य संसार का और मोक्ष का। पाप और पुण्य, बंधन और मुक्ति, स्वर्ग और नर्क–सब उसमें ही समाए हुए हैं। अंधेरा और प्रकाश–सब उसी का है। उसमें ही जन्म है।, उसमें ही मृत्यु है। वही है द्वार बाह्य जगत् का, वही है सीढ़ी अंतर की और उसका ही हो जाना दोनों के पार हो जाना हो जाता है।

मन सब कुछ है। सब उसकी ही लीला और कल्पना है। वह सो जाये तो सब लीला विलीन हो जाती है।

कल कहीं पर यह कहा था। कोई पूछने आया, 'मन तो बड़ा चंचल है, वह सोये कैसे? मन तो बड़ा गंदा है, वह निर्मल कैसे हो?'

मैं फिर एक कहानी कहा। बुद्ध जब वृद्ध हो गये थे तब एक दोपहर एक वन में एक वृक्ष तले विश्राम को रुके थे। उन्हें प्यास लगी तो आनंद पास के पहाड़ी नाले पर पानी लेने गया गया। पर नाले में से अभी-अभी गाड़ियां निकलीं थीं और पानी सब गंदा हो गया था। कीचड़ ही कीचड़ और बड़े पत्ते पर उभर कर ऊपर आ गये थे। आनंद उसका पानी लिये बिना ही वापिस लौट आया। उसने बुद्ध से कहा, 'नाले का पानी निर्मल नहीं है। मैं पीछे लौटकर नदी से पानी ले आता हूं। नदी बहुत दूर थी। बुद्ध ने उसे नाले का पानी ही लाने को वापिस लौटा दिया। आनंद थोड़ी देर में फिर खाली लौट आया। वह पानी उसे लाने जैसा नहीं लगा। यह तीन बार हुआ। पर बुद्ध उसे हर बार वापिस लौटा देते। और तीसरी बार आनंद नाले पर पहुंचा तो चकित हो गया। नाला अब तक निर्मल और शांत हो गया था। कीचड़ बैठ गई थी और जल बिल्कुल निर्मल था।

यह कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर है। यही स्थिति मन की भी है। वासना की गाड़ियां उसे विक्षुब्ध कर जाती हैं। पर कोई यदि शांति और धीरज से उसे बैठा देखता रहे तो कीचड़ अपने से नीचे बैठ जाती है और सहज निर्मलता का आगमन हो जाता है। मन की निर्मलता में जीवन नया हो जाता है। केवल धीरज की बात है और शांत प्रतीक्षा की ओर 'बिना कुछ किये' मन की कीचड़ बैठ सकती है। केवल साक्षी होना है और मन निर्मल हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

16 जून, 1963

मां,

एक अंधेरी राह घूमने निकला था। बहुत दिन हुए तब की बात है। गांव का ऊबड़-खाबड रास्ता था। साथ एक साधु थे। बहुत उन्होंने यात्रा की थी। शायद ही कोई तीर्थ था जहां वे नहीं हो आये थे। प्रभु को पाने का वे मार्ग खोज रहे थे।

उस रात्रि उन्होंने मुझसे भी पूछा था, 'प्रभु को पाने का मार्ग क्या है?' यह प्रश्न उन्होंने ओरों से भी पूछा था। मार्ग भी धीरे-धीरे उन्हें बहुत ज्ञात हो गये थे। पर प्रभु से दूरी जितनी थी वह उतनी ही बनी थी। ऐसा भी नहीं था कि इन मार्गों पर वे चले नहीं थे। यथाशक्ति प्रयास भी किया था। पर हाथ आया था केवल मलना ही, पहुंचना नहीं हुआ था। लेकिन अभी मार्गों से ऊबे नहीं थे नयों की तलाश चल रही थी।

मैं थोड़ी देर चुप ही रहा था। फिर कहा था, "जो निकट है—निकट ही नहीं जो स्वयं में ही हूं उसे पाने का कोई भी मार्ग नहीं है। मार्ग दूर को और पर को जाने को होते हैं। फिर, जिसे खोया ही नहीं है उसे पाने की बात ही कहां उठती है? जो कभी बंधन में ही नहीं पड़ा है उसे मुक्ति दिखाने का प्रश्न ही कहां उठता है? इसलिए **कुछ करने को नहीं है**। केवल जानना है और जानना ही पहुंचना है। जानना है कि 'मैं कौन हूं?' और यह ज्ञान ही प्रभु उपलब्धि है। एक दिन जब सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। और सारे मार्ग कहीं ले जाते हुए नहीं प्रतीत होते हैं। जब पाया जाता है कि **जो भी मैं कर सकता हूं** वह मुझे 'मैं' के रहस्य तक नहीं लाता है। **कोई क्रिया रास्ता तक नहीं लाती है**। तब अनायास ही समाधि उपलब्ध हो जाती है। तब बिना बुलाए ही प्रज्ञा का अवतरण हो जाता है। और इस प्रकाश में एक क्षण में ही सब बदल जाता है। जो संसार था वही मोक्ष हो जाता है। इस प्रभु के ऊपर उठना है कि क्रिया सत्ता तक ले जाती है। इस अज्ञान के ऊपर उठना है कि सत्य तक पहुंचने के लिए कोई मार्ग हो सकता है। कोई क्रिया उसे नहीं देगी क्योंकि वह क्रियाओं के भी पूर्व है। कोई मार्ग वहां के लिए नहीं है क्योंकि **वह तो यहीं है**।"

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा है। चिन्ता तो नहीं कर रही हैं न? पत्र देना। मैं प्रतीक्षा में हूं। और कोई इधर आता हो तो उसके साथ टाइप राइटर पहुंचा दें।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

विचार—विचार—और विचार। विचार की शृंखला ही मन है। मन केवल विचार प्रक्रिया है। विचार से और केवल विचार से ही वह निर्मित है। विचार के अतिरिक्त वहां कुछ और नहीं है। कुछ भी अन्यथा वहां सत्तावान् नहीं है। श्री रमण ने किसी से कहा था, 'विचारों को रोक ले और फिर मुझे बताओ कि मन कहां है?'

विचार-शून्यता में मन नहीं होता है। विचार-शून्यता और मन-मृत्यु एक ही घटना के दो नाम है। अनुभव से दीखता है कि जहां विचार नहीं है वहां जिसे हम 'मन' कहते हैं वैसा कुछ भी नहीं बचता है। लेकिन क्या कुछ भी नहीं बचता है? क्या मन के साथ जीवन की इति है? नहीं, वरन् विपरीत वहीं से साथ प्रारंभ है जिसे जीवन कहा जा सकता है। मन मिटता है पर कुछ खोता नहीं, वरन् पाया जाता है। मन के हटते ही उसका रिक्त स्थान चैतन्य से भर जाता है। वो ही खोकर हीरे उपलब्ध होते हैं। चैतन्य का अवतरण जीवन को एक नया आयाम दे देता है। इस प्रकाश में उसे जाना जाता है जो सत्य है, जो अमृत है, जो सत्ता है। विचार से इसे कभी नहीं जाना गया हैं विचार कभी सीमित को छोड़ असीम तक उड़ान नहीं ले सके हैं। विचार पर को छोड़ स्व तक पहुंचने के कभी साधन नहीं बने हैं। क्योंकि स्व तो उनके पूर्व और उनके पीछे जो है। विचार जहां है वह रूप और नाम का जगत् है। रुपातीत चैतन्य उस ढांचे में, उस जाल में नहीं फंसता है। उसे जानना है तो सब सीमायें और सब बंधन छोड़कर ऊपर उठना होता है। विचार के, मन के जाते ही यह शर्त पूरी हो जाती है। क्योंकि मन ही एकमात्र सीमा है। वह सब सीमाओं का जनक है। उसके हटते ही असीम का, अनंत का, अनादि का उद्घाटन है।

सुबह-सुबह आज यही कहा है। कहा हूं, 'मन को छोड़ो और सत्य को पा लो। और **यह सौदा बहुत सस्ता है**।'

20 जून 1963

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र मिला है। मैं स्वस्थ हूं और आनंद में हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
25 जून 1963

मां,

एक बैलगाड़ी निकलती है। उसके चाक देखता हूं। धुरी पर चाक घूमते हैं। जो स्वयं चिर है, उस पर चाकों का घूमना है। गति के पीछे स्थिर बंधा हुआ है। क्रिया के पीछे अक्रिया है। सत्ता के पीछे शून्यता का वास है।

ऐसे ही एक दिन देखा था धुल का एक बवंडर। धुल का गुब्बारा चक्कर खाता हुआ ऊपर उठ रहा था—पर बीच में एक केन्द्र था वहां सब शांत और चिर था।

क्या जगत् का मूल सत्य इन प्रतीकों में प्रगट नहीं है?

क्या प्रभात सत्ता के पीछे शून्य नहीं बैठा हुआ है?

क्या समस्त क्रिया के पीछे प्रक्रिया नहीं है?

शून्य ही सत्ता का केन्द्र और प्राण है। उसे ही जानना है। उसमें ही होना है क्योंकि वही हमारा वास्तविक होना है। जो प्रत्येक अपने केन्द्र पर है वही प्रत्येक को होना है। कहीं और नहीं, जो हम हैं, वही हमें चलना है।

यह होना कैसे हो?

उसे देखो तो 'देखता है' और शून्य में उतरना हो जाता है। 'दृश्य' से 'दृष्टा' की ओर चलना है। 'दृश्य' है रूप, क्रिया, सत्ता। 'दृष्टा' है अरुप, अक्रिया, शून्य। 'दृश्य' है पर, अनित्य, संसार, बंधन, अमुक्ति, आवागमन। 'दृष्टा' है स्व, नित्य, ब्रह्म, मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण। देखो—जो देखना है उसे देखो। यही समस्त योग है।

यह रोज कह रहा हूं या जो भी कह रहा हूं उसमें यही है।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
2 जुलाई 1993

मां,

ज्ञान और ज्ञान में भेद है। एक ज्ञान है केवल जानना, जानकारी, बौद्धिक समझ और एक ज्ञान है अनुभूति, प्रज्ञा, जीवन प्रतीति। एक मृत तथ्यों का संग्रह है यह जीवित सत्य का बोध। दोनों में बहुत अंतर है। भूमि और आकाश का। वस्तुतः बौद्धिक ज्ञान कोई ज्ञान ही नहीं है। वह केवल अज्ञान को छिपा लेना मात्र है। शब्दों के जाल में और विचारों के धुएं में जो अज्ञान है वह विस्तृत हो जाता है। यह स्थिति अज्ञान से भी घातक है। बाहर से आया ज्ञान अज्ञान पर पर्दा बन जाता है।

ज्ञान को भीतर से आना है। उसके लिए पर्दे हटाने नहीं होते हैं। और जब ज्ञान भीतर से आता है तो शांति हो जाती है। फिर आचरण उसके अनुसार ढालना नहीं होता है, वह अपने से ढ़ल जाता है।

एक कथा पढ़ी थी। दो मुनि वन से गुजर रहे थे। ये शरीर की सृष्टि से पिता-पुत्र थे। पुत्र आगे थे, पिता पीछे। मार्ग बीहड़ था और अचानक सिंह का गर्जन हुआ। पिता ने पुत्र से कहा, 'तुम पीछे आ जाओ खतरा है।' पुत्र हंसने लगा और आगे ही चलता रहा। पिता ने दुबारा कहा। सिंह सामने आ गया था। पुत्र बोला, 'पर मैं शरीर नहीं हूं तो खतरा कहां है? आप भी तो यही कहते हैं न? पिता ने कहा, 'पागल, पीछे आ जा।' पर पुत्र हंसता रहा और सिंह का सामना भी हो गया। वह गिर पड़ा था पर उसे दीख रहा था कि जो गिरा है वह 'मैं' नहीं हूं। शरीर वह नहीं है। वह आनंद से भरा था। जो पिता कहता था वह उसे दीख भी रहा था। और यह अंतर महान् है। पिता दुखी था और मोह ग्रस्त और वह स्वयं केवल दृष्टा रह गया था। उसे न दुःख था, न पीड़ा थी। वह अविचल और निर्विकार था क्योंकि जो भी हो रहा था वह उसके बाहर था।

इससे कहता हूं ज्ञान और ज्ञान में भेद है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपकी आज्ञानुसार गाडरवारा लिखा था। दद्दा चांदा आने का विचार कर रहे हैं। समय निकालकर वे पहुंचेंगे। ऐसा उनका पत्र आया है। शेष शुभ। मैं कल इलाहाबाद बोलने जा रहा हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

दोपहर :
4 जुलाई 1963

मां,

एक साधु बोल रहे थे। 'प्रभु को पुकारो।' उसका नाम स्मरण करो निरंतर बुलाने से वह अवश्य सुनता है।'

मैंने मन में कहा, 'क्या कबीर के शब्द इन तक नहीं पहुंचे हैं? कबीर ने कहा है, 'क्या ईश्वर बहरा हो गया है?'

फिर उन्हें पहले सुना, 'दस आदमी सो रहे हैं। किसी ने पुकारा, 'देवदत्त' तो देवदत्त उठ जाता है। ऐसा ही प्रभु के संबंध में भी है। उसका नाम पुकारों तो वह अवश्य सुनता है।'

यह सुन मुझे हंसी आने लगी। मैंने कहा, ''पहली बात तो यह कि प्रभु नहीं हम सो रहे हैं। वह तो नित्य जाग्रत है। उसे नहीं हमें ही जागना है। फिर सोये हुए जाग्रत को जगायें तो मजे की बात है। उसे पुकारना नहीं, उसकी ही पुकार हमें सुननी है। यह मौन से होगा। इसलिए, परिपूर्ण मौन ही एकमात्र प्रार्थना है। दूसरी बात यह कि उसका कोई नाम नहीं है। न कोई उसका रूप है। इसलिए उसे बुलाने और स्मरण करने का कोई उपाय नहीं है। सब नाम सब रुप मनुष्य काल्पित है। वे सब मिथ्या हैं। उनसे नहीं, उन्हें छोड़कर उस तक पहुंचना होता है।''

(प्रवास से
सच्चा बाबा आश्रम
अरैल : इलाहाबाद)

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

रात्रि : 16 जुलाई 1963

मां,

मैं तीन छोटे-छोटे शब्दों के केन्द्र पर मनुष्य की समग्र चेतना को घूमते हुए देखता हूं। वे तीन शब्द कौन से हैं?

वे शब्द हैं, 'विवेक, बुद्धि और वृत्ति।'

विवेक से श्रेष्ठतम चलते हैं। बुद्धि से वे जो मध्यम हैं। और वृत्ति चेतना की विस्ततम दिशा है।

वृत्ति पाशविक है। बुद्धि मानवीय है। विवेक दिव्य है।

वृत्ति सहज और अंधी है। वह निद्रा है। वह अचेतन का जगत है। वहां न शुभ है, न अशुभ। कोई भेद वहां नहीं है इससे कोई अन्तः संघर्ष भी नहीं है। वह अंधी वासनाओं का सहज प्रवाह है।

बुद्धि न निद्रा है। न जागरण। वह अर्ध-मूर्च्छा है। वह वृत्ति और विवेक के बीच संक्रमण है। वह वृहत्तीत है। उसमें एक मेरा चैतन्य हो गया है लेकिन शेष अचेतन है। इससे भेद-बोध है। शुभ-अशुभ का जन्म है। वासना भी है, विचार भी है।

विवेक पूर्ण जाग्रति है। वह शुद्ध चैतन्य है। वह केवल प्रकाश है। वहां भी कोई संघर्ष नहीं है। वह भी सहज है। वह शुभ का, सत् का, सौंदर्य का सहज प्रवाह है।

वृत्ति भी सहज, विवेक भी सहज। वृत्ति अंधी सहजता, विवेक सजग सहजता। बुद्धि भी असहज है। उसमें पीछे की ओर वृत्ति है आगे की ओर विवेक है। उसके शिखर की लौ विवेक की ओर और आधार की जड़ें वृत्ति में हैं सतह कुछ, तलहटी कुछ। यही खिंचाव है। पशु में डूबने का आकर्षण–प्रभु में उठने की चुनौती–दोनों एक साथ है।

इस चुनौती से डरकर जो पशु में डूबने का प्रयास करते हैं वे भ्रांति में है। जो अंश चैतन्य हो गया है वह भाव अचेतन नहीं हो सकता है। जगत् व्यवस्था में पीछे लौटने का कोई मार्ग ही नहीं है।

बस चुनौती को मानकर जो सतह पर शुभ-अशुभ का चुनाव करते हैं वे भी भ्रांति में

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

है। उस तरह का चुनाव और आचरण परिवर्तन सहज नहीं हो सकता है। वह केवल चेष्ठित अभिनय है। जो चेष्ठित है वह शुभ भी नहीं है। **प्रश्न सतह पर नहीं है। प्रश्न तलहटी में है।** वहां जो खोया है, उसे जगाना है। **अशुभ नहीं, मूर्च्छा छोड़नी है।**

अंधेरे में दिया जलाना है।

यह आज कहा हूं।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : आपका पत्र मिल गया है। इस समय तो यात्रा पर होंगी। मैं स्वस्थ हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

(प्रवास से :
नेपानगर
25 जुलाई 1963)

प्रिय मां,

एक संध्या की बात है। गेलिली की झील पर तूफान आया हुआ था। एक नौका डूबती-डूबती हो रही थी। बचाव का कोई उपाय नहीं दीखता था। यात्री और माझी घबड़ा गये थे। आंधियों के थपेड़े प्राणों को हिला रहे थे। पानी की लहरें भीतर आनी शुरु हो गई थी और किनारे पहुंच से बहुत दूर थे। पर इस गरज-तूफान में भी नौका के एक कोने में एक व्यक्ति सोया हुआ था। शांत और निश्चिंत। उसके साथियों ने उसे उठाया। सबकी आंखों में आसन्न मृत्यु की छाया थी।

उस व्यक्ति ने उठकर पूछा, 'इतने भयभीत क्यों हो?'' जैसे भय की बात ही न थी। उसके साथी अवाक् रह गये। उससे कुछ कहते भी तो नहीं बना। तभी उसने पुनः कहा, 'क्या अपने आप पर बिल्कुल भी आस्था नहीं है?'' इतना कहकर वह शांति और धीरज से उठा और नाव के एक किनारे पर गया। तूफान आखिरी चोंटें कर रहा था। उसने उस विक्षुब्ध झील से जाकर कहा, 'शांति! शांत हो जाओ।' (Peace, be still)

तूफान जैसे कोई नटवरी बच्चा था ऐसे ही उसने कहा था, ''शांत हो जाओ!''

यात्री समझे होंगे कि यह क्या पागलपन है। तूफान क्या किसी की मानेगा! लेकिन उनकी आंखों के सामने ही तूफान सो गया था झील ऐसी शांत हो गई थी कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं है।

उस व्यक्ति की बात मान ली गई थी।

यह व्यक्ति था, जीसस क्राइस्ट। और यह बात है दो हजार वर्ष पुरानी। पर मुझे यह घटना रोज ही घटती हुई मालूम होती है।

क्या हम सब ही निरंतर एक तूफान—एक अंशांति से नहीं घिरे हुए हैं। क्या हमारी आंखों में भी निरंतर आसन्न मृत्यु की छाया नहीं है? क्या हमारे भीतर चित्त की झील बिल्कुल नहीं है? क्या हमारी जीवन-नौका भी प्रतिक्षण डूबती-डूबती नहीं मालूम होती है?

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

तब क्या उचित नहीं है कि हम अपने से पूछें, "इतने भयभीत क्यों हो? क्या अपने आप पर बिल्कुल भी आस्था नहीं है?" और फिर अपने भीतर झील पर जाकर उन्हें, "शांति! शांत हो जाओ।'

मैं यह उठकर देखा हूं और पाया है कि तूफान सो जाता है। केवल शांत होने के भाव करने की ही बात है और शांति आ जाती है। अपने भाव से प्रत्येक अशांत है। अपने भाव से शांत भी हो सकता है। शांति उपलब्ध करना अभ्यास की बात नहीं है। केवल सद्भाव ही पर्याप्त है। शांति तो हमारा स्वरुप है। घनी अशांति के बीच भी एक केन्द्र पर हम शांत है। एक व्यक्ति वहां तूफान के बीच भी निश्चित सोया हुआ है। शांत, निश्चल, निश्चिंत केन्द्र पर ही हमारा वास्तविक होना है। उसके होते हुए भी हम अशांत हो सके हैं यही आश्चर्य है! उसे वापस पा लेने में तो कोई आश्चर्य नहीं है।

शांत होना चाहते हो उसी क्षण—अभी और यहीं—शांत हो सकते हो। अभ्यास भविष्य में फल लाता है। सद्भाव वर्तमान में हीन सद्भाव अकेला वास्तविक परिवर्तन है।

❖❖❖

(कल यात्रा में एक अपरिचित सहयोगी से हुई बातचीत का एक टुकड़ा)

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : तुम्हारा पत्र मिल गया था, यथासमय। मैं 4 अगस्त को नागपुर बोल रहा हूं। 3 अगस्त की रात्रि वहां पहुंचूंगा। किस समय यह जबलपुर पहुंच कर लिखूंगा। तुम्हें पहुंचना है। मुझे बस स्टैंड पर मिलना। 4 की संध्या मीटिंग है। सुबह चाहो तो पाटिल जी का अन्य लोगों से मिलने का कार्यक्रम रख सकती हो। 5 अग. की सुबह मैं वापिस लौटूंगा। नागपुर का पता है।)

श्री प्रफुल्ल चन्द्र,
मंत्री, जैन सेवा मंडल, महावीर भवन,
नागपुर-2

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकोशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

दोपहर :
11 अगस्त 1963

मां,

"मै उपदेशक नहीं हूं। कोई उपदेश, कोई शिक्षा मैं नहीं देना चाहता हूं। अपना कोई विचार तुम्हारे मनों में डालने की मेरी कोई आकांक्षा नहीं है।

सब विचार व्यर्थ हैं। और धूलि कणों की भांति वे तुम्हारी सत्ता को ढंक लेते हैं।

सह विचार बाह्य है। और वस्त्रों की भांति वे तुम्हें आच्छादित कर लेते हैं। और फिर वो तुम नहीं हो वैसे दिखाई पड़ने लगते हो और जो तुम नहीं जानते हो वह ज्ञान-सा मालूम होने लगता है।

और, यह बहुत आत्म-घातक है।

विचारों से अज्ञान मिटता नहीं, केवल छिप जाता है।

ज्ञान में जागने के लिए अज्ञान को उसकी पूरी नग्नता में जानना जरुरी है। इससे विचारों के वस्त्रों में अपने को मत ढांको। वस्त्रों और आवरणों को अलग कर दो ताकि तुम अपनी नग्नता और रिक्तता से परिचित हो सको।

वह परिचय ही तुम्हें अज्ञान के पार ले जाने वाला सेतु बनेगा।

इससे मैं तुम्हें ढांकना नहीं, उघाड़ना चाहता हूं। जरा देखो! तुमने कितनी अंधी श्रद्धाओं और धारणाओं और कल्पनाओं में अपने को छिपा लिया है। और इन कागजी सुरक्षाओं में तुम अपने को सुरक्षित समझ रहे हो! यह सुरक्षा नहीं, आत्म-वंचना है।

मैं तुम्हारी इस निद्रा को तोड़ना चाहता हूं। स्वप्न नहीं, केवल सत्य ही एकमात्र सुरक्षा है।

और यदि तुम स्वप्नों को छोड़ने का साहस करो तो सत्ता को पाने के अधिकारी हो जाते हो।

सच तो यह है कि स्वप्नों के विसर्जित होते ही वह जो उनका दृष्टा है प्रगट हो जाता है। वही है सत्य। दृश्य है स्वप्न। दृष्ट है सत्य। इसे पा लो तो समझो कि जीवन जीत लिया है।"

❖❖❖

(सुबह-सुबह ही किसी से हुई बातचीत का टुकड़ा)

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

मैंने सुना है,

''एक फकीर भीख मांगने निकला था। वह बूढ़ा हो गया था और आंख से उसे कम दीखता था। उसने एक मस्जिद के सामने आवाज लगाई थी। किसी ने उससे कहा, ''आगे बढ़! यह ऐसे आदमी का मकान नहीं है जो तुझे कुछ दे सके।'' फकीर ने कहा, ''आखिर इस मकान का मालिक कौन है जो किसी को कुछ नहीं देता?'' वह आदमी बोला, ''पागल! तुझे यह भी पता नहीं है कि यह मस्जिद है। इस घर का मालिक स्वयं परम पिता परमात्मा है।''

फकीर ने सिर उठाकर मस्जिद पर एक नजर डाली और उसका हृदय एक जलती हुई प्यास से भर गया। फिर कोई उसके भीतर बोला, ''अफसोस है कि इस दरवाजे से आगे बढ़ना। आखिरी दरवाजा आ गया। इसके आगे और दरवाजा कहां है?''

उसके भीतर एक संकल्प घना हो गया। अडिग चट्टान की भांति उसके हृदय ने कहा, ''यहां से खाली हाथ नहीं लौटूंगा। जो यहां से खाली हाथ लौट गये उनके भरे हाथों का क्या मूल्य है!''

वह उन्हीं सीढ़ियों के पास रुक गया। उसने अपने खाली हाथों को आकाश की तरफ फैला दिया। वह प्यासा था और प्यास ही प्रार्थना है।

दिन आये और गये। माह आए और गये। ग्रीष्म बीती, वर्षा बीती, सर्दियां भी बीत चलीं। एक वर्ष पूरा हो रहा था। उस बूढ़े के जीवन की मियाद भी पूरी हो गई थी। पर अंतिम क्षणों में लोगों ने उसे नाचते देखा था।

उसकी आंखें एक अलौकिक दीप्ति से भर गई थीं। उसके वृद्ध शरीर से प्रकाश झर रहा था।

उसने मरने के पूर्व एक व्यक्ति से कहा था, ''जो मांगता है उसे मिल जाता है। केवल अपने को समर्पित करने का साहस चाहिए।''

अपने को समर्पित करने का साहस!

अपने को मिटा देने का साहस!

शून्य होने का साहस!

जो मिटने को रहती है वह पूरा हो जाता है। जो भरने को राजी है वह जीवन पा जाता है।

15 अगस्त 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं तुम्हें देखता हूं। तुम्हारे पार जो है उसे भी देखता हूं। यह तुम्हारी देह कैसी पारदर्शी हो गई है!

सच ही देह कितनी ही ठोस क्यों न हो उसे तो नारी ही छिपा पाती है जो पीछे है।

पर हम आंखें ही न खोलें तो बात दूसरी है। फिर तो सूरज भी नहीं है। सब खेल आंखों का है। तर्क और विचार से कोई प्रकाश को नहीं जानता है। वास्तविक आंखों की पूर्ति किसी अन्य साधन से नहीं हो सकती है।

आंखें चाहिए। आत्मिक को देखने के लिए दृष्टि जगानी होती है।

और जो दूसरे की देह के पार की सत्ता को देखना चाहे तो उसे पहले अपनी देह के पीछे झांकना होता है।

जहां तक मैं अपने गहरे में देखता हूं वहीं तक अन्य देहें भी पारदर्शी हो जाती हैं। जितनी दूर तक मैं अपनी जड़ता में चैतन्य का आविष्कार कर लेता हूं उतनी ही दूर तक समस्त जड़ जगत् मेरे लिए चैतन्य से भर जाता है। जिस दिन मैं एकाग्रता में अपने चैतन्य को, अपने आत्म को जानूंगा उसी दिन जगत नहीं रह जाता है। जो है सब आत्म हो जाता है।

इससे रोज कह रहा हूं। इससे हर एक से कह रहा हूं, 'एक बार देखो कौन तुम्हारे भीतर बैठा है? इस हड्डी-मांस की देह में कौन आच्छादित है? कौन है आबद्ध तुम्हारे इस बाह्य रूप में?'

इस क्षुद्र में कौन विराट खेल खेल रहा है

कौन है यह चैतन्य? क्या है यह चैतन्य?

पूछो! मैं कौन हूं? पूछो और पूछो। पूछो कि यह प्रश्न चेतना के रन्ध्र-रन्ध्र में गूंज उठे। प्राण स्पंदित हो जायें। श्वांस-श्वांस यही पूछने लगे। एक ही प्रश्न जल उठे प्राणों में। प्रश्न ही रह जाये और कुछ नहीं। सब जल जायें प्रश्न में—विचार, वासना, ज्ञान, अस्तित्व।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

तुम मिट जाओ और रह जाये केवल प्रश्न, केवल प्यास; दिये की अंकपित लौ की भांति।

और फिर प्रश्न भी बुझ जाता है। जैसे सारे तेल-बाती को जलाकर लौ स्वयं बुझ जाती है। प्रश्न की राख से उत्तर उठता है। प्रश्न का बुझ जाना ही उत्तर है।

और तब दीखता है, अदेही, अमृत, नित्य, बुद्ध स्वरुप। फिर स्वयं में सब और सब में स्वयं हो जाता है।

(प्रवास से : इंदौर
रात्रि : 18 अगस्त 1963)

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रवास से :
दमोह : 28 अगस्त 1963

मां,

एक राजा ने एक सामान्यतः स्वस्थ और संतुलित व्यक्ति को कैद कर लिया था। एकाकीपन का मनुष्य पर बड़ा प्रभाव होता है इस अध्ययन के लिए। वह व्यक्ति कुछ समय तक चीखता-चिल्लाता रहा बाहर जाने के लिए। रोता था, सिर फोड़ता था। उसकी सारी सत्ता जो बाहर थी। सारा जीवन तो पर से, अन्य से बंधा था। अपने में तो वह कुछ भी नहीं था। अकेला होना न होने के ही बराबर था।

और सच ही वह धीरे-धीरे टूटने लगा। उसके भीतर कुछ विलीन होने लगा। चुप्पी जगाया। सदित भी चला गया। आंसू भी सूख गये और आंखें ऐसे देखने लगीं जैसे पत्थर की हों। वह देखता हुआ भी लगता कि जैसे नहीं देख रहा हो।

दिन बीते, माह बीते, वर्ष बीत गया। उसकी सुख-सुविधा की सब व्यवस्था थी। जो उसे बाहर उपलब्ध नहीं था, वह सब कैद में उपलब्ध था। शाही आतिथ्य था।

लेकिन वर्ष पूरा होने पर विशेषज्ञों ने कहा, 'वह पागल हो गया है।'

बाहर से वह वैसा ही था। शायद ज्यादा ही स्वस्थ था। लेकिन भीतर?

भीतर? एक अर्थ में वह मर ही गया था।

❖❖❖

मैं पूछता हूं, क्या एकाकीपन किसी को पागल कर सकता है? एकाकीपन कैसे पागल करेगा? वस्तुतः **वह तो पूर्व से ही है।** बाह्य संबंध उसे छिपाये थे। एकाकीपन उसे घनाभूत कर देता है।

मनुष्य की अपने को भीड़ में खोने की अकुलाहट उससे बचने के लिए ही है।

प्रत्येक व्यक्ति इसीलिए स्वयं से पलायन किये हुए हैं।

पर यह पलायन स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता है। तथ्य को न देखना, उससे मुक्त होना नहीं है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपर (म.प्र.)

जो नितांत एकाकीपन में स्वस्थ और संतुलित नहीं है वह धोखे में है। यह आत्मवंचना कभी न कभी खंडित करेगी ही और वह जो भीतर है उसे उसकी परिपूर्ण नग्नता में जानना होगा। यह अपने आप अनायास हो जाये तो अस्तित्व छिन्न-भिन्न और विक्षिप्त हो जाता है। जो दमित है वह कभी न कभी विस्फोट को भी उपलब्ध होता है।

धर्म इस एकाकीपन में स्वयं लेकर उतरने का विज्ञान है। क्रमशः एक-एक पर्त उघाड़ने पर अद्‌भुत सत्य का साक्षात्‌ होता है। धीरे-धीरे ज्ञात होता है कि वस्तुतः हम अकेले ही हैं। गहराई में, आंतरिकता के केन्द्र पर प्रत्येक एकाकी है। और अब एकाकीपन से परिचित न होने के कारण भय मालूम होता है। अपरिचित और अज्ञात भय देता है। परिचित होते ही भय की जगह अभयऔर आनंद आ लेता है। **एकाकीपन के घेरे में स्वयं सच्चिदानंद विराजमान हैं।**

अपने में उतरकर स्वयं प्रभु को पा लिया जाता हैं इससे कहा हूं. अकेलेपन से, अपने से भागो मत वरन्‌ अपने में डूबो। सागर में डूबकर ही मोती पाये जाते हैं।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय शारदा,

स्नेह और आशीष। मैं कल ही बम्बई से लौटा हूं तो मां का पत्र मिला है। तू चाहती थी कि मैं 22 अगस्त को चांदा आता पर मुझे सूचना ही नहीं मिल सकी। यह जानकर प्रसन्न हूं कि उपवास सानंद सम्पन्न हो गये हैं। प्रभु प्रतिदिन और अधिक शांति और प्रकाश दे यही कामना है।

मैं १ सितम्बर को सुबह भोपाल पहुंच रहा हूं। उसी दिन रात्रि को बोलकर वापिस भी लौटूंगा। यदि इस समय श्री भीखमचन्द ही देशलहरा को देखने भोपाल आ रही हों तो अच्छा है। फिर ३ सित. की संध्या जयपुर जा रहा हूं। 5 और 6 सित. जयपुर बोलूंगा। ८ सित. इंदौर। शेष शुभ। बम्बई और इंदौर कार्यक्रम अच्छा हुआ है। श्री भीखमचन्द जी कोठारी पहुंच गये थे।

परार्थ को आशीष। सबको प्रणाम।

संध्या
26 अगस्त 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

1963

प्रिय मां,

एक झोपड़े में बैठा हूं। छप्पर की रन्ध्रों से सूरज का प्रकाश गोल चकतों में फर्श पर पड़ रहा है। उनमें उड़ते धूलि-कण दीख रहे हैं। प्रकाश के वे अंग नहीं है। उसका वे स्वरुप नहीं है। वे विजातीय हैं।

प्रकाश आतिथेय है, वे अतिथि हैं।

ऐसा ही मनुष्य की चेतना के साथ भी है। उसमें ही बहुत से विजातीयं धूलि-कण अतिथि बन गये हैं। इन धूलि-कणों में उसका जो स्वरुप है वह छिप गया है।

इन धूलि-कणों में, इन अतिथियों में आतिथेय को पहचानना आवश्यक है।

यह पहचान ही आत्म-ज्ञान है।

प्रकाश धूलि-कणों से अशुद्ध नहीं होता है। आत्मा भी अशुद्ध नहीं होती है। केवल विस्मरण हो जाता है।

आत्मा के प्रकाश पर कौन-सी धूल है?

यह धूल मन की है। मन ही फूल है। विचार धूलि-कण हैं। विचार की धूल बैठ जाये तो चैतन्य का शुद्ध प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। अतिथि हट जायें तो आतिथेय प्रगट हो जाता है।

और, आतिथेय को पा लेना वास्तविक संपदा को पा लेना है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : मैं उस रात्रि सकुशल आ गया था। अब तक तो आप भी पहुंच गई होंगी। पत्र दें। शेष शुभ। सबको प्रणाम)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

15.9.63

मां,

कोई कह रहा था, 'सत्य को जानने के पूर्व ज्ञान आवश्यक है।'

यह भ्रांति अनेकों को है। ऐसा ज्ञान शब्द संग्रह से अधिक और क्या होगा? संग्रह अहं तृप्ति देता है। लगता है मैं हूं। 'मैं' सबल होता है। और 'मैं' ही तो सत्य के आगमन में बाधा है।

फिर, शब्द ज्ञान नहीं है। मृत शब्द ज्ञान कैसे होंगे? शब्द सूचनायें हैं। इन्हें ज्ञान का समझ लेना आत्म-वंचना है।

ज्ञान संपादित नहीं होता है। कोई दूसरा उसे किसी दूसरे को नहीं दे सकता है। वह अहस्तांतरणीय है। उसे स्वं ही सीधा साक्षात् करना होता है।

वह अनुभूति परोक्ष नहीं है। उसमें कोई माध्यम नहीं हो सकता है वह है अ-परोक्ष। स्वयं में, और स्वयं के द्वारा होती है।

इससे शब्द का कोई प्रश्न ही नहीं है। शास्त्र उस तक पहुंचाते नहीं, शायद, बाधा ही बनते हैं। इसलिए, सत्य के पूर्व की कोई संभावना नहीं है।

सत्य और ज्ञान युग्पत् घटित होते हैं। सत्य के सामने होना ही ज्ञान है।

❖❖❖

मैं आनंद में हूं। पत्र मिला है। 2 अक्टूबर तो आना मुश्किल है। मैं अक्टूबर के अंत में ही आऊंगा। 29 सित. की संध्या कलकत्ता मेल से निकलूंगा। .... का अभी तय नहीं हुआ है। तय होते ही लिखूंगा।

सबको प्रेम और प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रभात :
19 नवम्बर 1963

मां,

कुछ करने की मन की आदत है। शारीरिक हो या मानसिक पर कुछ करने को होना चाहिए। संसार नहीं तो उसकी क्रिया का लक्ष्य बन जाता है।

इसलिए, अब मैं कहता हूं कि मन की निस्तरंग स्थिति, अक्रिय स्थिति ध्यान है तो लोग पूछते हैं कि मन को अक्रिय कैसे करें?

कल यही किसी से कह रहा था। वे बोले, 'बात तो समझ में आती है पर करें कैसे?' मैंने कहा, 'समझ में आती, दीखती है आती नहीं है अन्यथा 'कैसे करें' का प्रश्न ही नहीं था। मन की सतत् क्रिया को समझना और उसके प्रति जाग्रत हो जाना ही पर्याप्त है। इसी जागरण के प्रकाश में मन निस्तरंग हो जाता है।

और, मन जहां निस्तरंग है वहां है ही नहीं।

'अ-मन' को पा लेना 'आत्मा' को पा लेना है।

❖❖❖

वस्तुतः 'मन सक्रिय है' ऐसा कहना ठीक नहीं है। कहना चाहिए कि सक्रियता ही मन है। सक्रियता के पीछे सत्ता छिप जाती है।

उस क्रिया का, व्यस्तता का धुआं नहीं है वही सत्ता का उद्‌घाटन है।

निर्धूम चित्त को पा लेना ही सब कुछ है।

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : चि. अरविंद की सगाई श्री मस्ते जी की सुपुत्री रमा से हो गई है। इस संबंध में मस्तेजी बहुत प्रसन्न हुये हैं और आपको याद कर रहे थे। विवाह संभवतः संत तारण तरण जयंती के समारोह (23-25 दिसम्बर) पर रखने का विचार है। उस समय तो आपको आना ही है। शेष शुभ।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

करनी :
9.11.63

मां,

मैं देखता हूं, कुछ लोग संसार में व्यस्त हैं, कुछ लोग मोक्ष में व्यस्त हैं। पर व्यस्तता ही संसार है यह जैसे उन्हें ज्ञात नहीं हो पाता है। व्यस्तता है अपने से बाहर होना। उसमें स्व में न होना निहित ही है फिर इससे कोई भेद नहीं पड़ता है कि वह स्व-से बाहर-होना किस कारण से हो रहा है। स्व-बाह्य होने की दृष्टि से सब कारण समान है। मोक्ष-लोलुप उतना ही वासनाग्रस्त है जितना किसी और कामना से पीड़ित व्यक्ति। मोक्ष अन्य वासनाओं की शृंखला का अंग नहीं है। वस्तुतः, जब कोई वासना नहीं है चित्त की उस स्थिति का ज्ञान मोक्ष है। इसलिए, मोक्ष चाहा नहीं जा सकता है। चाह ही तो अमुक्ति है। फिर जो चाहा नहीं जा सकता है उसके लिए अव्यस्तता कैसी? व्यस्तता तनाव है। अव्यस्तता शांति है।

चित्त की अव्यस्त स्थिति को मैं समाधि कहता हूं।

एक साधु से यह कहा था। वह बोले, 'इस स्थिति को कैसे पायें?' मैंने कहा, 'पाने की पूछते हैं तो फिर समझे नहीं। वह तो पुनः व्यस्त होने की आकांक्षा है। 'कैसे' का प्रश्न नहीं है। 'क्या' का प्रश्न है। व्यस्तता क्या है। इसे समझें। उसकी समझ ही उससे मुक्ति है। अव्यवस्तता लानी नहीं होती है। वह आती है और जो व्यस्तता से मुक्ति की चेष्टा में लग जायेगा वह कभी उस सरल शांत स्थिति को नहीं पा सकेगा। व्यस्तता से बचने की व्यस्तता में व्यस्त-चित्त को समझा ही नहीं जा पाता है। 'कैसे' की खोज 'जो है' उससे पलायन है। 'जो है' उसे जानें और 'जो होना चाहिए' उसकी चिंता न करें तो एक अद्‌भुत क्रांति घटित हो जाती है। अनायास पाया जाता है कि 'जो है' उसके ज्ञान की उष्णता में 'जो नहीं होना चाहिए था' वह बर्फ की भांति पिघल कर बह गया है और 'जो होना चाहिए' वह अनायास द्वार पर आ गया है।'

❖❖❖

मैं आनंद में हूं। आज रात्रि कटनी से वापिस हो रहा हूं। सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

सत्य क्रमिक उद्घाटन नहीं है। सत्य का विस्फोट होता है।

विकास नहीं क्रांति घटित होती है। ज्ञान क्रमिक है। इसलिए, ज्ञान सत्य में नहीं ले जाता है। ज्ञान वस्तुतः दर्शन में बाधा है। ज्ञान की शृंखला में सत्य का आगमन नहीं होता है, वरन् उस शृंखला के विछिन्न होने पर होता है।

विचार की शृंखला ही मन है। इस शृंखला का जहां अभाव है वहीं सत्य का आर्विभाव है।

सत्य को पाने न चलें। कभी रुकें और देखें।

किसी बिल्कुल अनअपेक्षित क्षण में कोई अपरिचित द्वार खुल जाता है।

केवल स्वयं को देखना है। जैसे हम हैं वैसा ही देखना है। आदर्श बीच में न आयें। शुभ-अशुभ की धारणायें बाधा न बनें। स्वयं की न कोई निन्दा हो, न प्रशंसा हो, इसे मैं तटस्थ दर्शन कहता हूं।

जो है उसे बिना विचार को बीच में लाये देखते ही एक अभिनव मुक्ति का बोध होता है।

जैसे एक भार गिर जाता है।

इस भारमुक्त स्थिति में ही सत्य का विस्फोट होता है।

❖❖

मैं आनंद में हूं। आपका कोई पत्र नहीं है। कल अचल आये तो समाचार ज्ञात हुये। वहां सब कुशल है यह जानकर प्रसन्नता हुई।

सबको मेरे प्रणाम कहें, सुशीला को स्नेह।

29.11.63

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक विश्वधर्म समारोह से लौटा हूं। वहां जो सुना तो बहुत आश्चर्य हुआ है। सत्य के संबंध में समस्त विचार और धारणायें व्यर्थ हैं यह कहने वाले लोग भी चर्चा तो धारणाओं की ही करते हैं। और, इन बौद्धिक विचारणाओं में मताग्रह होता है।

सत्य यदि बुद्धि अतीत है तो सत्य का कोई संप्रदाय नहीं हो सकता है।

अविक्षिप्त चित्त में सत्यसाक्षात होता है। विचार तो अशांत, विक्षिप्त चित्त की ही उत्पत्ति है। विचार तो विकार ही हैं। उन पर आग्रह अज्ञान है। उनमें सत्यासत्य का निर्णय व्यर्थ हैं उनमें नहीं, उनके अतिक्रमण पर सत्यानुभूति अवतरित होती है।

इसलिये, सत्य के लिये कोई विवाद संभव नहीं है। कोई तर्क संभव नहीं है। कोई प्रमाण संभव नहीं है। प्रकाश के लिये क्या प्रमाण है। सिवाय आंख के, सत्य के लिये भी कोई प्रमाण नहीं है सिवाय प्रज्ञा के। इस बुद्धि की लहरों के पीछे जो गहराई है उसी का नाम है। वहां विचार नहीं केवल विवेक है। विचारणाओं के धुयें के पार जो निर्धूम ज्ञानाग्नि है वही प्रज्ञा है।

इस गहराई की अनुभूति धर्म है।

इस गहराई में पर, विजातीय, अन्य कुछ भी नहीं है। केवल स्वभाव है, स्वभाव धर्म है। स्वभाव की चर्चा अर्थहीन है। सार्थकता है उसमें उतरने में, डूबने में, धर्म प्रत्येक को बुलाता है, जैसे सागर सरिताओं को पुकारता है। जो स्वयं को उसमें खोने का साहस करते हैं। वे सतह पर अपने को खोकर एक ऐसी गहराई में स्वयं को पा लेते हैं जहां फिर किसी भांति का खोना संभव नहीं है। उसे पाना है जो खोया न जा सके। जो खो सकता है वह मैं नहीं हूं!

❖❖❖

सबको मेरे प्रणाम

1 दिसम्बर 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश

दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं बाहर था। गुना और रायपुर होकर कल ही लौआ हूं। इस बीच पत्र लिखना चाहा लेकिन समय नहीं पा सका। 23 दिसम्बर अरविंद का आदर्श विवाह हो रहा है। श्री मस्तेजी रुढ़ि-परंपरा मुक्त विवाह के लिए कठिनाई से अभी-अभी राजी हुए हैं। इसलिए उस संबंध में भी आपको जल्दी नहीं लिखा जा सका। आप तो जा ही रही हैं तो पारख जी, शारदा और यशोदा बाई को भी ले जायें तो कृपा हो। मै उसके बाद ही 25 दिस. की संध्या बम्बई जा रहा हूं। वहां 26-27-28 का धर्म आयोजित किया है।

पत्र मिलने पर मैं आशा करता हूं कि सब लोग आ रहे हैं। कब आप यहां पहुंचेंगी सो शीघ्र सूचित कर दें। विवाह 25 की संध्या जयंती समारोह के बाद ही आयोजित किया है।

प्रभात :
16.12.63

रजनीश के प्रणाम

प्रिय मां,

अरविंद की शादी में आप सबको लेकर अवश्य जाने का कष्ट करेंगी। आशा है कि आप हम लोगों को निराश न करेंगी। मेरी तरफ से आप पारखजी, बहिन शारदा व यशोदा बाई से भी आने की प्रार्थना करेंगी। सबको साथ लेकर आयें हम लोग आप सबके आने की राह देख रहे हैं।

आचार्य रजनीश

दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

मैं मंदिर गया था। पूजा हो रही थी। मूर्तियों के सामने सिर झुकाये जा रहे थे। कुछ वृद्ध साथ थे; बोले, 'धर्म में लोगों की अब श्रद्धा न रही।' मैंने पूछा, 'धर्म ही कहां है?'

मनुष्य भी कैसा आत्मवंचक है। अपने ही हाथों से बनाई मूर्तियों को भगवान समझकर स्वयं को धोखा दे लेता है। मन से रचित शास्त्रों को सत्य समझकर तृप्ति कर लेता है।

मनुष्य के हाथों और मनुष्य के मन से जो भी रचित है वह धर्म नहीं है। मंदिरों में बैठी मूर्तियां भगवान की नहीं, मनुष्य की ही है और शास्त्रों में लिखा हुआ मनुष्य ही अभिलाषाओं और विचारणाओं का प्रतिफलन है। सत्य का अन्र्तदर्शन नहीं। सत्य को धर्म में बांधना संभव नहीं है। वह असीम, अनंत और अमूर्त है। उसकी न कोई मूर्ति है, न कोई धारणा है, न कोई रुप है, न कोई नाम है।

सत्य पाने के लिए सब मूर्तियां और सब मूर्त धारणायें छोड़ देनी पड़ती हैं। मन निर्मित कल्पनाओं के सारे जाल तोड़ देने पड़ते हैं। वह अदृश्य तब प्रगट होता है जब चेतना मनुष्य सृष्टकारों से मुक्त हो जाती है।

वस्तुतः, उसे पाने को मंदिर बनाने नहीं, मिटाने पड़ते हैं। मूर्तियां गढ़नी नहीं, भंजन करनी पड़ती है। मन को मूर्तियों के हटते ही वह अमूर्त प्रगट हो जाता है। वह तो था ही। केवल मूर्तियों में दब गया था। जैसे किसी कक्ष में सामान रख देने से 'खाली भवन' दब जाता है। समान हटाओ और वह जहां था वहीं है। ऐसी ही है सत्य—मन को खाली करो और वह है।

❖❖❖

मैं आनंद में हूं। मुल्लाई आ रही है। यह कल्पना सुख दे रही है।

दोपहर :
7 दिस. 1963

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

मैं एक सभा से लौट रहा था। किसी ने पूछा, 'स्वर्ग और नरक क्या हैं? वे हैं या कि सब कल्पना में हैं?

मैं उनकी तरफ देखा। सुशिक्षित युवक थे। स्वर्ग और नरक पर उनकी आंखों में कोई श्रद्धा नहीं थी। शायद अपनी श्रद्धा के समर्थन के लिए ही उन्होंने पूछा था। हम पूछने के पहले ही बंधे होते हैं। श्रद्धा से, या अश्रद्धा से। और तब पूछना सार्थक नहीं रह जाता है। हम तब जानना चाहे न उसे केवल किसी पूर्वाग्रह का समर्थन चाहते हैं।

यह उनसे कहा और एक कहानी भी कहा,

एक व्यक्ति ने किसी साधु से यही प्रश्न पूछा था। साधु ने कहा, आप कौन हैं, यह तो बतावें? वह व्यक्ति सैनिक था। उसने बताया, साधु सुनकर बोला, सैनिक? मुखमुद्रा से तुम भिखमंगे मालूम होते हैं।

सैनिक को ऐसे अभद्र व्यवहार की स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो म्कती थी। वह क्रोध से भर गया। उसकी आंखों में अपमान के प्रतिशोध के लिए उत्तेजना घनी हो गई। अनायास ही उसके हाथ तलवार पर चले गये। तलवार देखकर साधु बहुत हंसने लगा। बोला, इसे आप तलवार समझते हैं क्या? इस बोथली चीज से तो किसी मुर्दे की गर्दन भी कटने को नहीं। सैनिक ने बचा होश भी खो दिया। वह अब अपने में नहीं था। उसकी नंगी तलवार साधु की गर्दन के ऊपर थी और तभी साधु ने कहा, मित्र, यह नरक का द्वार खुल गया। देखो यह नरक है।

जैसे किसी ने अंधेरे में अचानक प्रकाश कर दिया हो, ऐसा वह युवक मूर्च्छा से जाग गया। उसने देखा वह क्या कर रहा था। उसने देखा कि वह होश में नहीं था। एक अद्‌भुत प्रत्यक्ष हुआ था। उसकी आंखें एक नई समझ और ज्योति से भर गई। क्रोध अब कहीं भी नहीं था। तलवार म्यान में चली गई थी। उसके चेहरे पर एक अलौकिक आभा प्रकाशित हो रही थी।

साधु ने कहा, 'मित्र, स्वर्ग का द्वार भी आ गया। वे दोनों कितने निकट हैं। केवल जरा जुड़ने की ही तो बात है।

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

❖❖❖

स्वर्ग और नरक स्थान नहीं, स्थितियां हैं। शांत मन स्वर्ग है। अशांति मन नरक है।

वे शब्द धार्मिक नहीं, मनोवैज्ञानिक हैं। उन्हें जानने को सिद्धांत नहीं, स्वयं का निरीक्षण आवश्यक है।

प्रभात :
21.2.64

रजनीश
के
प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

एक पुरानी कथा है। लाओत्से के पास एक वृद्ध भिक्षु सत्यसाक्षात की खोज में गया था। लाओत्से ने द्वार पर उसका स्वागत किया और उससे कहा, अपने अनुयायिओं और बोझ को बाहर ही छोड़ दो, क्यों उनके बिना भीतर प्रवेश मिल सकता है। पर उस भिक्षु के पास न तो कोई बोझ था और न कोई अनुयायी ही थे। फिर भिक्षु ने इस बात को समझा और अपने बोझ और अनुयायिओं को बाहर छोड़कर भीतर गया। पर भीतर जाने की उन्हें जरुरत न थी। जो मिलना था वह बोझ छोड़ते ही मिल गया था।

सत्य की खोज पर्वतारोहण जैसी है। सब बोझ पीछे ही छोड़ चलना होता है।

सत्य को पाना नहीं है। केवल कुछ बाधायें भर अलग करना है।

और अज्ञान नहीं, तथाकथित ज्ञान हमारी बाधा में है। ज्ञान का प्रत्येक पर बोझ है और वही अनुगमन कर रहा है।

काश, हम अपने ज्ञान को छोड़ सकें। काश, हम अपने अज्ञान को स्वीकार कर सके और उसमें झांककर मन में झांकते ही ज्ञान के द्वार खुल जाते हैं।

कुछ भूलना है और उसे भूलते ही जो सत्य भूला हुआ है वह स्मरण आ जाता है।

5.1.1964

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

सत्य की ओर जाते दो द्वार मालूम होते हैं। एक विचार का द्वार है, एक दर्शन का। एक जाता बहुत दूर तक है पर कहीं पहुंचता नहीं है। दूसरा जरा भी दूर नहीं जाता है, पर पहुंचा देता है।

विचार का द्वार आभास द्वार है। वह है नहीं, केवल प्रतीत होता है। विचार, विचार और विचार का अन्ततः निष्कर्ष कोई भी नहीं। उस दिशा में बढ़ते-बढ़ते एक क्षण केवल अराजकता ही हाथ लगती है। आभास खंडित हो जाता है और सब तथाकथित सूत्र बिखर जाते हैं। जो उस मार्ग पर श्रम करते हैं, वे केवल आकाशकुसुम ही संचित कर पाते हैं। उस मार्ग सा बंधा मार्ग नहीं है। पर उसकी भी एक उपयोगिता है जिसे विचार की व्यर्थता दीख आये वह दूसरे दर्शन के द्वार में अनायास प्रवेश पा जाता है।

दर्शन सोचता नहीं, देखता है। उस सीमा तक देखता है, जब तक कि केवल शुद्ध देखना होना शेष नहीं रह जाता है। विचार के विलीन होने पर शुद्ध दर्शन शेष बचता है। दृश्य कोई नहीं बचता है। दृश्य का होना विचार का ही होना है। दृष्टा भी नहीं बचती है। वह भी विचार है। केवल दर्शन बच रहता है, केवल ज्ञान बच रहता है। सब सीमायें खो जाती हैं, केवल तटहीन सागर रह जाता है। यह जानना नहीं है, होना है। वस्तुतः, सत्य जाना नहीं जाता है, सत्य हुआ जाता है।

विचार द्वैत है। दर्शन अद्वैत है। विचार संबंध है, दर्शन सत्ता है।

प्रभात :
31.1.1964

रजनीश के प्रणाम

(पुनश्च : कल संध्या तुम्हारा पत्र मिला है। लगाकि जैसे वर्षों बाद लिखा हो। मैं आनंद में हूं।)

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

मां,

मैं कल ही बाहर से लौटा हूं। श्री रंगाबाद अहिंसा सम्मेलन में बोलने गया था। सम्मेलन कल हुआ। वहां सोचा आप आप होतीं तो अच्छा था। महाराष्ट्र के मुख्य मन्त्री ने उद्घाटन किया था। बहुत आये थे। अहिंसा के संबंध में नये विचार दिया हूं। इस बीच चाहकर भी पत्र नहीं दे पाया। कुछ अजीब सा लगा। मैं घिर गया लगता हूं। सुबह से शाम तक लोग आते ही चले जाते हैं। कितने ही पत्र लिखकर भी सभी पत्रों के उत्तर नहीं दे पाता हूं। बोलने के लिये भी अनेक स्थानों के आग्रहों को मानना संभव नहीं हो पाता ही था कि कुछ लिखना कर सकूं, वह भी इन हालातों में संभव नहीं दीखता है।

प्रभा का विवाह आनन्द से सम्पन्न हो गया होगा। शायद कोठारी जी भी पहुंचे होंगे। मैं वहां भी नहीं पहुंच सकूंगा। उन दिनों मुझे अखिल विश्व जैन मिशन के वार्षिक अधिवेशन में अलीगंज जाना होगा। उनसे मेरी ओर से क्षमा मांग लेना। शेष शुभ है। वहां सबको मेरे प्रणाम कहें। अब आप पत्र लिखना शुरु कर दें। पत्र देर-सबेर पहुंचे तब भी आप तो लिखती ही रहें।

रजनीश के प्रणाम

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवास:
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

तुम्हारा पत्र मिला है। मैं आनंद में हूं। बम्बई प्रवास सुखद रहा। पर हर प्रवास में तुम्हारी याद बहुत घेरती है।

........................साधना शिविर की रिपोर्ट, साधना पथ, भेजी है, ...
.... और १२ फरवरी आयोजित ....
................हां है न। पारख जी का पत्र मिला है। १३ फर. को उनको वहां पहुंच जाना है।

शेष शुभ। वहां सबको प्रणाम कहें। शारदा, सुशीला को स्नेह

रजनीश के प्रणाम
१७.१.१९६४

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

प्रणाम। हम कल यहां सकुशल और समय पर पहुंच गये। लौटती यात्रा अच्छी हुई। ऐसा जरुर लगता रहा कि चांदा रहना नहीं हो पाया, और साथ ही आपके स्वास्थ्य की चिन्ता भी मन को घेरे रही। मुझे आपका स्वास्थ्य जैसा आप लिखती हैं, वैसा ठीक नहीं लगा। उसके लिए थोड़ा सचेत होना जरुरी है, और कार्य के भार से भी मुक्ति आवश्यक है। साथ ही पारखजी का भी स्वास्थ्य गिरा हुआ लगा, इससे और भी चिन्ता हुई है। इस संबंध में कुछ सोचिये और व्यवस्था करिये। लापरवाही के परिणाम कभी भी सुखद नहीं होते हैं। मैं आज संध्या बम्बई जा रहा हूं। लौटकर आपका पत्र पाने की प्रतीक्षा करुंगा। शारदा, सुशीला को स्नेह। श्री पारख जी को प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

29.1.1964

आचार्य रजनीश
दर्शन विभाग
महाकौशल महाविद्यालय

निवासः
115, योगेश भवन, नेपियर टाउन
जबलपुर (म.प्र.)

प्रिय मां,

मैं बाहर से लौटा तो तुम्हारा पत्र मिला है। शायद, इस पत्र के पहुंचते-पहुंचते तुम घर पहुंच जाओगी। मैं 5 सितम्बर की संध्या कलकत्ता मेल से पूना जा रहा हूं। 7 सित. को सुबह वहां बोलकर दोपहर अहमदाबाद चला जाऊंगा, 8 सित. बम्बई बोलूंगा और 9 को सुबह गुजरात मेल से बम्बई आ जाऊंगा। 9 और 10 सित. बम्बई बोलूंगा। श्री पारखजी ने बम्बई का पता पूछा है, वह मैं नीचे दे रहा हूं। वे बम्बई उस समय आ जायें तो बहुत अच्छा है। आप तो आ नहीं सकेंगी, नहीं तो बहुत आनंदपूर्ण हुआ होता। 11 सित. संभवतः अहमदनगर बोलूं और 12 सित. को जबलपुर वापिस लौटूंगा। उसके बाद जल्दी ही चांदा आने के लिए सोच रहा हूं।

गाड़ी के संबंध में आपने पूछा है। वह ठीक काम दे रही है, और उससे बहुत सुविधा हुई है। अभी नागपुर उससे ही होकर आया हूं।

वहां सबको प्रणाम कहें, और लिखें कि वापसी यात्रा ने स्वास्थ्य को कोई हानि तो नहीं पहुंचाई है। वैल्लू के अनुमान से तो लगता है कि बहुत डरने की कोई बात नहीं है, यद्यपि बहुत ध्यान रखने की बात अवश्य है।

शेष शुभ।

रजनीश के प्रणाम
27.8.1964

बम्बई का पता
श्री रमणलाल सी. शाहा,
77/ए. वालकेश्वर रोड, फर्स्ट फ्लोर, ब्लाक 4
बम्बई—6

स्वामी ज्ञानभेद

द्वारा रचित

हिन्दी भाषा में ओशो की प्रामाणिक जीवनी

कथा-उपन्यास की रोचक शैली में पहली बार प्रस्तुत

एक फक्कड़ मसीहा

ओशो

(नौ खण्डों में)

सद्गुरु ओशो के जीवन की प्रत्येक घटना एक सिखावन और प्रेरणास्रोत है आपके मर्म को स्पर्श कर जाए, तो उनकी एक जीवन घटना ही आपका रूपान्तरण कर सकती है

- यह ध्यान और प्रेम में डूबने का आमन्त्रण देती है।
- यह रूढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों और संस्कारों से मुक्त करती है।
- यह आपको अपने होने की प्रतीति के प्रति जागरूक करती है।
- यह आपको जीवन के उत्सव आनंद मे डूबने का आमंत्रण देती है।

यह सद्ग्रन्थ ओशो के ही संन्यासी स्वामी ज्ञानभेद ने ओशो के ही हजारों प्रवचनों में बताई घटनाओं को कालक्रम में पिरोकर उनके परिवार के सदस्यों, पुराने बचपन के मित्रों, व सहयोगियों से साक्षात्कार लेकर एवं युक्रांत, ज्योतिशिखा, आनंदिनी, संन्यास, भगवान श्री रजनीश तथा ओशो टाइम्स की पुरानी फाइलों का स्वाध्याय कर, जो अनुपम माला गूंथी है, उसका नाम है

एक फक्कड़ मसीहा-ओशो

जिसके सम्पूर्ण 9 खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

डायमंड पाकेट बुक्स

X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-110020

फोन : 011-6386289, 8611861, फैक्स : 011-8611866.

डायमंड पाकेट बुक्स

प्रस्तुत करते हैं *ओशो* का आध्यात्मिक चिन्तन

पुस्तक	मूल्य
समाधि के नृत्य गीत (संत सुंदरदास की वाणी)	100.00
मौलिक क्रान्ति	100.00
जीवन अमृत	100.00
मौन संगीत	60.00
आत्मपूजा उपनिषद्-भाग-I	150.00
आत्मपूजा उपनिषद्-भाग-II	150.00
प्रेम-रंग, रस ओढ़ चदरिया	100.00
सन्तो मगन भया मन मेरा (संत रज्जब की वाणी)	100.00
समाधि की सुराही (संत रज्जब की वाणी)	100.00
गुरु परताप साध की संगति (भीखा वाणी)	100.00
झरत दसहूँ दिस मोती (संत गुलाल की वाणी)	100.00
मन मधुकर खेलत वसन्त (संत गुलाल की वाणी)	100.00
अजहूं चेत गंवार (संत पलटूदास की वाणी)	100.00
अवसर बीता जाए	120.00
सद्गुरु समर्पण (Take it easy)	100.00
स्वामी ज्ञानभेद	
एक फक्कड़ मसीहा : ओशो (भाग- 3, 4, 5, 7, 8) (प्रत्येक)	125.00
भाग- 6	100.00
भाग-1, 9, 2 (प्रत्येक)	150.00
ध्यान और प्रेम के मसीहा ओशो	100.00
ओशो ही ओशो	150.00
सू. एपलटन	
दिया अमृत पाया जहर	25.00
स्वामी प्रेम निशीथ	
ओशो को समर्पित उसी की ये शराब	40.00
हर आईना हैरान है	40.00
स्वामी योग प्रीतम	
ओशो के रस रंग में	40.00
स्वामी अगेह भारती	
डायरी के पन्ने	60.00
ओशो के आसपास	100.00
ओशो के संग! कुछ अनमोल क्षण	35.00
अनजाने ओशो	40.00
एक ओशो शिष्य की डायरी	30.00
ओशो गाथा	30.00
विचारों के फूल	30.00
ओशो की मधुशाला में बच्चन	30.00
मेरी रजनीशपुरम यात्रा	30.00
एक ओशो शिष्य की अन्तर्यात्रा	35.00
स्पंदन (काव्य संग्रह) (यंत्रस्थ)	30.00
अंधकार से प्रकाश की ओर	40.00
ओशो : एक महाप्रारम्भ	60.00
बातें जो याद हैं	50.00
उर्मिला	
शांति की खोज	30.00
मा धर्म ज्योति	
दस हजार बुद्धों के लिए एक सौ गाथाएं	50.00
स्वामी राजा भारती	
ओशो प्रेम घटा बरसी	50.00
ओशो-साहित्य गुजराती	
साधना पथ	15.00
भारत के जलते प्रश्न	15.00
ओशो-साहित्य पंजाबी	
संभोग से समाधि की ओर	25.00
ओशो-उर्दू साहित्य	
मेरी रहगुजर कि सफेद अम्बर की रहगुजर	60.00
सुये फना (सम्भोग से समाधि की ओर)	20.00
सत्य की खोज	50.00
ओशो-बंगाली साहित्य	
मौलिक मानवीय अधिकार	25.00
संभोग से समाधि की ओर	25.00
भारत के जलते प्रश्न	25.00
धर्म और राजनीति	25.00
मिट्टी के दीये	25.00

डायमंड पाकेट बुक्स

X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-110020

फोन : 011-8611861, 6386289 फैक्स : 011-8611866.

E-mail : mverma@nde.vsnl.net.in Website : www.diamondpocketbooks.com

डायमंड पाकेट बुक्स

प्रस्तुत करते हैं *ओशो* का आध्यात्मिक चिन्तन

पुस्तक	मूल्य
पिया मिलन की आस	40.00
मेरा मुझमें कुछ नहीं	40.00
लाली मेरे लाल की	40.00
जीवित क्रांति	30.00
जीवन मन्दिर	35.00
सहज जीवन के स्वर	35.00
क्रांति सूत्र-साक्षी भाव	35.00
सतगुरु मिलें त ऊबरे	35.00
हसिबा, खेलिबा, धरिबा, ध्यानम्	35.00
चल हंसा उस देश (प्रश्नोत्तर)	30.00
कहा कहूँ उस देश की (प्रश्नोत्तर)	30.00
गहरे पानी पैठ	30.00
मैं कहता आंखन देखी	35.00
ध्यान सूत्र : अन्तिम यात्रा	35.00
ध्यान सूत्र : एक अपूर्व अभियान	35.00
चेति सकै तो चेति	30.00
बहुतेरे हैं घाट (प्रश्नोत्तर)	35.00
दिया बले अगम का	35.00
नये भारत की खोज	30.00
मैं मृत्यु सिखाता हूं	150.00
एक ओंकार सतनाम	150.00
ओशो ध्यान योग	60.00
ध्यान क्या है (What is Meditation)	30.00
भारत एक सनातन यात्रा	100.00
होनी होय सो होय (कबीर वाणी)	50.00
भगति-भजन हरिनाम (कबीर वाणी)	50.00
बूझे बिरला कोई (कबीर वाणी)	50.00
निरगुन का बिसराम (कबीर वाणी)	50.00
गुरु गोविन्द दोऊ खड़े (कबीर वाणी)	50.00
लिखा लिखी की है नहीं (कबीर वाणी)	50.00
मन लागो यार फकीरी में (कबीर वाणी)	60.00
बोले शेख फरीद (कबीर वाणी)	50.00
क्या मेरा क्या तेरा (कबीर वाणी)	60.00
हीरा पायो गांठ गठियाओ (कबीर वाणी)	50.00
तेरा साईं तुझ में (कबीर वाणी)	50.00
नहीं जोग नहीं जाप (कबीर वाणी)	50.00
क्रान्ति सूत्र	60.00
ऐसी भक्ति करे रैदासा (रैदास वाणी)	30.00
मीरा के प्रभु गिरधर नागर (मीरा वाणी)	60.00
राम नाम रस पीजे (मीरा वाणी)	60.00
मेरे तो गिरधर गोपाल (मीरा वाणी)	50.00
प्रभु की पगडंडिया	60.00
हँसे खेलें न करे मन भंग (गोरख वाणी)	50.00
जीवन संगीत (गोरख वाणी)	50.00
साधना पथ	50.00
शून्यता है महामुक्ति	50.00
प्रेम है द्वार सत्य का	50.00
भारत एक अनूठी संपदा	50.00
एक मात्र उपाय जागो	50.00
नव संन्यास क्या	60.00
ध्यान की कला	50.00
ध्यान और प्रेम	50.00
मुक्त गगन के पंछी	50.00
दरिया झूठ सो झूठ हैं (दरिया वाणी)	50.00
जित देखूं तित तू (फरीद वाणी)	50.00
दादू सहजे देखिये (दादू वाणी)	50.00
राम नाम निज औषधि (दादू वाणी)	50.00
सत्य की पहली किरण	50.00
सुमिरन मेरा हरि करे (प्रश्नोत्तर)	100.00
उड़ियो पंख पसार (प्रश्नोत्तर)	100.00
राम दुवारे जो मरे (बाबा मलूकदास की वाणी)	100.00
पाथेय (पत्र संकलन)	50.00
अथातो भक्ति जिज्ञासा (शांडिल्य सूत्र)	100.00
भक्ति विराट से मैत्री (शांडिल्य सूत्र)	100.00
भक्ति परम क्रान्ति (शांडिल्य सूत्र)	100.00
भक्ति ध्यान की मधुशाला (शांडिल्य सूत्र)	100.00
धर्म का परम विज्ञान (महावीर वाणी)	100.00
आत्मशुद्धि का सूत्र (महावीर वाणी)	100.00
संकल्प साधना (महावीर वाणी)	100.00
सत्य और साहस (महावीर वाणी)	100.00
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया (पंच महाव्रत)	100.00
जस पनिहार धरे सिर गागर (धनी धरमदास की वाणी)	100.00
का सोवे दिन रैन (धनी धरमदास की वाणी)	100.00
नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन साहब की वाणी)	100.00
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन साहब की वाणी)	100.00

डायमंड पाकेट बुक्स

प्रस्तुत करते हैं *ओशो* का आध्यात्मिक चिन्तन

पुस्तक	मूल्य
संभोग से समाधि की ओर (सम्पूर्ण संस्करण)	150.00
मिट्टी के दीये (बोध कथा)	35.00
गीता : विज्ञान, कला, अध्यात्म	35.00
गीता : समस्त योगों का सार	35.00
गीता : मनोविज्ञान का परम शास्त्र	35.00
गीता : कृष्ण योग विज्ञान	35.00
साक्षी कृष्ण और रासलीला	35.00
कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि	35.00
कृष्ण साधना सहित सिद्धि	35.00
कृष्ण और हंसता हुआ धर्म	35.00
कृष्ण गुरु भी सखा भी	35.00
शिव साधना	35.00
शिव दर्शन	35.00
सम्बोधि के क्षण	35.00
राम खुमारी	35.00
अभिनव धर्म	30.00
करुणा और क्रान्ति	35.00
मुक्ति बोध	35.00
साधना सूत्र : आत्मा का कमल	35.00
साधना सूत्र : हेरत हेरत हे सखी	35.00
साधना सूत्र : हृदय संगीत	35.00
अमृत की दिशा	35.00
शून्य का दर्शन	35.00
प्रार्थना के बीज	35.00
नये समाज की खोज	35.00
कुंडलिनी यात्रा	35.00
कुंडलिनी और तंत्र	35.00
कुंडलिनी जागरण और शक्तिपात	35.00
कुंडलिनी और सात शरीर	35.00

पुस्तक	मूल्य
अष्टावक्र महागीता भाग-1 से 12 (प्रत्येक)	75.00
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं (प्रश्नोत्तर)	35.00
योग सूत्र : एक वैज्ञानिक दृष्टि	35.00
योग सूत्र : आन्तरिक अनुशासन	35.00
योग सूत्र : सतगुरु को समर्पण	35.00
योग सूत्र : प्रज्ञा और समाधि	35.00
योग सूत्र : नींद, स्वप्न और बोध	35.00
योग सूत्र : अहंकार और समर्पण	35.00

पुस्तक	मूल्य
योग सूत्र : बुद्धों का मनोविज्ञान	40.00
योग सूत्र : समाधि के दो रूप	30.00
शून्य समाधि	35.00
सहजे रहिबा	35.00
एक एक कदम	35.00
शिक्षा और विद्रोह	35.00
शिक्षा में क्रांति	35.00
शिक्षा और जागरण	30.00
शिक्षा : नये प्रयोग	35.00
ध्यान : एक शून्य गगन	35.00
भीतर का दीया	35.00
उपनिषद शून्य संवाद	35.00
नारद भक्ति सूत्र	
भक्ति : विराट का अनुभव	30.00
भक्ति : निराकार से एकाकार	30.00
भक्ति : जीवन रूपांतरण की कला	30.00
भक्ति : शून्य की झील में प्रेम का कमल	30.00
परम प्रेम रूपा भक्ति	30.00
सहज योग : साक्षी और प्रेम	35.00
सहज योग : ध्यान और प्रेम	35.00
सहज योग : प्रार्थना और आनंद	35.00
सहज योग : महाक्रान्ति	35.00
सहज योग : अभी और यहीं	30.00
साधना के आयाम	35.00
भारत के जलते प्रश्न	35.00
स्वर्णिम भारत	35.00
धर्म और राजनीति	35.00
अस्वीकृति में उठा हाथ	35.00
नयी क्रान्ति की रूपरेखा	35.00
विचार क्रान्ति	35.00
गांधी पर पुनर्विचार	35.00
हरि ओऽम् तत्सत्	35.00
ओऽम् शांतिः शांतिः शांतिः	35.00
ओऽम् मणि पद्म हूं	35.00
एक महान चुनौती : मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य	35.00
ध्यान दर्शन	35.00
झुक आई बदरिया सावन की	

भावना के भोजपत्रों पर

पुत्र के पत्र मां के नाम

'भावना के भोजपत्रों पर ओशो' पत्रावली शिल्प में गढा एक उपनिषद है। कहने को तो ये एक पुत्र के मां के नाम लिखे पत्र हैं परंतु इनमें कृष्ण-अर्जुन संवाद की सुगंध है और जनक-अष्टावक्र वार्तालाप की सारगर्भिता है। आप इन पत्रों को पढ़ेंगे तो कभी अपने हृदय मंदिर से निकाल नहीं पायेंगे।

इन पत्रों के केंद्र में एक दिव्यता है, एक साधना है और एक सिद्धि है। मां आनंदमयी के रूप में ओशो को एक ऐसी प्रेरणा मिली थी जिसने पूरे जगत को आलोकित कर दिया।

ओशो की लेखनी इन पत्रों में व्यक्तित्व और कृतित्व की उस पराकाष्ठा को छू जाती है जो बिरले ही देखने को मिलती है। भावनाओं की इस अखंडित और अक्षत श्रृंखला में व्यक्ति को अपने भीतर लुप्त संभावनाओं की आहट सुनाई देगी।

डा. विकल गौतम ओशो के परम भक्तों में गिने जाते हैं। ओशो के इन पत्रों को बरसों तक संजोकर रखने और उन्हें प्रकाशित करवाने के लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। इसके लिए ओशो साहित्य के लाखों पाठक सदा उनके ऋणी रहेंगे।

डायमंड पाकेट बुक्स

Rs. 150/-

ISBN :81-288-0149-X

A.H.W. Sameer Series